राम:

चित चोखा ओखा नहीं,
पोखा ज्ञान भगत्त ।
मन सोखा दोखा तज्यां,
वे रामसनेही सत्त ।
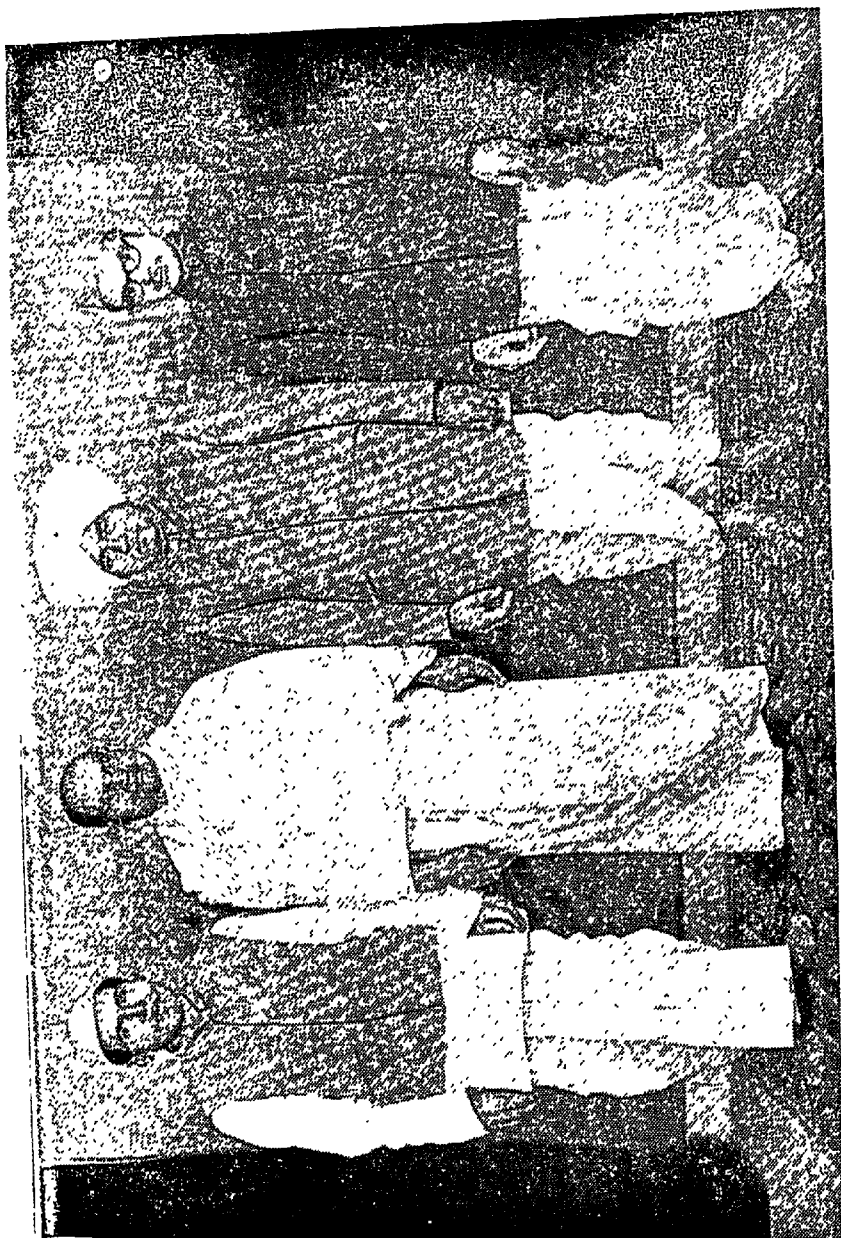
संपादक मण्डल : बाएं से दायें— पं० अक्षयचन्द्र शर्मा, एम० ए०, साहित्यरत्न; स्वामी रामनिवास
वैद्य केवलराम स्वामी, भिषग्रत्न; वैद्य पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

प्रकाशकीय

राजस्थान की धरित्री वीर-प्रसविनी है, इसे तो सभी जानते हैं; पर, यह सन्तों की साधना-स्थली भी रही है, इसकी पूरी जानकारी अभी अपेक्षित है। यहाँ हजारों ही सन्त और साधक हुए हैं, जिनकी अपरोक्षानुभूति से भरी वाणियों का अभी पूर्णरूप से अवगाहन नहीं हो पाया है। अधिकांश सन्तों की ऐसी वाणियाँ अभी तक रामद्वारों, उपाश्रयों, मन्दिरों व मठों में बिखरी पड़ी हैं। यदि शीघ्र ही इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो यह हमारी सांस्कृतिक धरोहर विनष्ट हो जायगी।

राजस्थान में बहुत से संत सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ है, जैसे—निरञ्जन पन्थ, दादूपन्थ, गूदड़ पन्थ, चरणदासी, लाल पन्थ, जसनाथी सिद्ध, विश्नोई, जयहरि आदि आदि।

श्री रामस्नेही सम्प्रदाय का प्रचलन भी तीन अलग अलग स्थानों से तीन भिन्न गुरु-परम्पराओं के आधार पर हुआ है। इस कारण ये तीनों ही एक दूसरे से अलग हैं। पर, नाम-साम्य से जन साधारण को ही नहीं, विद्वानों तक को एक सम्प्रदाय होने की भ्रांति हो जाती है। ये तीनों इस प्रकार से हैं—(१) शाहपुरा (२) सींथल-खेड़ापा (३) रैंण।

उपर्युक्त सभी सन्त सम्प्रदायों के आचार्यों तथा सन्तों की वाणियों का विशाल भाण्डार है, जिसका प्रकाशन होना चाहिये। भारतीय संस्कृति को ऊँचा उठाने में सभी सन्तों की अनमोल देन रही है, अतः हमारे लिए ये सभी वन्दनीय हैं।

मेरी बहुत दिनों से यह उत्कट इच्छा थी कि अपने सम्प्रदाय के सन्तों की वाणियों के साहित्य व इतिहास का समीक्षण होना चाहिए। यह कार्य बहुत बड़ा और श्रमसाध्य था। प्रस्तुत ग्रन्थ इस प्रबल मनस्कामना का विनम्र प्रयास है।

इस पुनीत कार्य को थोड़े से समय में सम्पन्न करने का भार उठाकर भारतीय विद्या मंदिर शोध संस्थान, बीकानेर के अध्यक्ष श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा, लाडनूँ रामद्वारे के संत श्री रामनिवासजी और हमारी संस्था के चिकित्सक वैद्य श्री ठाकुरप्रसादजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य ने अथक परिश्रम कर मेरे बोझ को हल्का कर दिया। वर्षों का मेरा स्वप्न इन तीनों विद्वानों के श्रम और सहयोग से ही साकार हो पाया है, अतः इनका मैं बहुत ही ऋणी हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लिखने में हमें सर्वश्री नानूरामजी, समदड़ी; स्वर्गीय श्री नानूरामजी, वम्बई; पं० निश्चलदासजी, आलोट; किम्मतरामजी, जोधपुर; मोहनरामजी (शिष्य स्वर्गीय श्री पं० गुह्यरामजी) जोधपुर, आदि संतों तथा गले मन्दिर रामद्वारा सूरत के सेवक श्री सोमाभाई गठड़ी, द्वारा प्रेषित अलभ्य हस्तलिखित वाणियों एवं मुद्रित साहित्य से बड़ी सहायता प्राप्त हुई है अतः सम्पादक मण्डल की ओर से मैं इनके प्रति आभार प्रकट करता हूं।

इस कार्य में हमें सर्वश्री पूज्य भंडारी श्री नानूरामजी, वर्तमान भंडारी श्री बलीरामदासजी, श्रीनवनिद्धरामजी, सन्मुखरामजी शास्त्री, इन्दौर; श्री कन्हैयारामजी वेदान्ताचार्य, भीलवाड़ा; श्री नानूरामजी, मुनिद्वारा, भीलवाड़ा; श्री तिलकरामजी, रायपुर (मारवाड़), श्री रामखुशालजी, बोराणा; श्री उम्मेदरामजी, उज्जैन; श्री स्वामी मंगलदासजी, जयपुर; श्री शंकरलालजी पारीक, सेठ लक्ष्मीनारायण जी चम्पालालजी राठी, दिल्ली; श्री जीवनरामजी शर्मा (पंसारी) लाडनूं; पं० अनन्तलालजी व्यास, हाकूजी जोशी आदि संतों, विद्वानों और मित्रों का सहयोग व सुझाव समय समय पर मिलता रहा, एतदर्थ उनके हम कृतज्ञ हैं।

मुद्रण का कार्य शीघ्रता के साथ सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए श्री शेखरचन्द्र सकसेना, प्रबन्धक एजूकेशनल प्रेस, बीकानेर धन्यवाद के पात्र हैं।

राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त (संसद् सदस्य), यशस्वी पत्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी (संसद् सदस्य), साहित्य समीक्षक श्री प्रभाकर माचवे एवं इतिहासवेत्ता श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार ने अपनी सम्मतियां व शुभ कामनाएँ भेजकर हमारे उत्साह को बढ़ाया है, इस अनुग्रह के लिए हम उनके आभारी हैं।

सन्त साहित्य के मर्मी विद्वान् श्री वियोगी हरिजी के हम बहुत कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद स्वल्प समय में इसकी प्रस्तावना लिखने का कष्ट स्वीकार किया।

सन्त-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों के समक्ष इस लघु-प्रयास को जिस रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें बहुत सी त्रुटियां रह जाना संभव है, जिनके लिए प्रकाशक के अतिरिक्त सम्पादक मण्डल का सदस्य होने के नाते मैं क्षमा प्रार्थी हूं।

सन्त और विद्वान् सहज क्षमाशील होते हैं अतः आशा है उनकी यह कृपा सुलभ होगी।

फूलडोल
सं० २०१५

वैद्य केवलराम स्वामी

दो शब्द

उत्तर भारत की संत-परम्परा में रामस्नेही सम्प्रदाय के आदि आचार्य श्री रामचरणजी का निस्सन्देह एक ऊंचा स्थान है। जन्म इनका जयपुर राज्य के अन्तर्गत सोडा नामक ग्राम में सं० १७७६ की माघ शुक्ला चतुर्दशी को बीजावर्गी वैश्य-कुल में हुआ था। पिता का नाम बखतरामजी था और माता का नाम देउजी। नाम रामकिशन था। सुयोग्य, कर्तव्य परायण तथा कार्य कुशल होने के कारण जयपुर के तत्कालीन महाराजा ने रामकिशनजी को अपना मंत्री नियुक्त किया। इस पद पर रहकर बड़ी न्याय-निष्ठा से इन्होंने अपने कर्तव्य का पालन किया। किन्तु मन इनका स्वर्ण-पींजड़े में बन्दी रहने को तैयार नहीं था। वैराग्य के स्वतंत्र वन में मुक्त विचरण करने के लिये वह तड़फड़ा रहा था। सो सद्गुरु की खोज में यह व्याकुल हो उठे। घरबार छोड़ कर निकल पड़े। मेवाड़ राज्यान्तर्गत शाह-पुरा के पास दांतड़ा में एक ऐसे सद्गुरु से भेंट हो गई, जिसका एक काल्पनिक चित्र अपने अन्तर्पट पर इन्होंने पहले ही खींच रखा था। यह महात्मा कृपा-रामजी थे। सद्गुरु को रामकिशन के रूप में वह मनचाहा सुपात्र अनायास मिल गया, जिसमें वे अपनी ऊँची साधना द्वारा उपलब्ध अमृत-रस को उँडेल देना चाहते थे। योग के उस बाँके मार्ग पर सद्गुरु ने अपने इस शिष्य के पैर दृढ़तापूर्वक जमा दिये; जो खांडे की धार के समान था, और सुई की नोक से भी अधिक नुकीला—

खांडा की धार छुरी को सो पानो, सार सुई को नाको रे।

अणु-अणु में रमते राम का तारक मंत्र अन्तर के कान में फूंक दिया। नाम भी पलट दिया। अब यह रामचरण हो गये।

स्वामी रामचरण जी ने गूदड़ वेश में सात वर्ष तक सहज योग की अखण्ड साधना की। रोम-रोम में राम जगमगा उठा। सत्य का दिव्य

प्रकाश चारों ओर फैल गया। साधना-सिद्धि दूर-दूर से लोगों को इनकी ओर खींचने लगी। पर यह माया के रूप को ताड़ गये। उससे पिण्ड छुड़ा कर रामरसायन के अमी-घूंटों को पीने और पिलाने में ही यह सदा मस्त रहे।

स्वामी रामचरण जी महाराज भीलवाड़े में १० वर्ष तक विराजे। उनकी गूढ़तम साधना के प्रकाश में जो भी आया, उसे चेताया और रामनाम की प्रसादी दोनों हाथों लुटाई। सहज ही स्थितप्रज्ञ की ब्राह्मी अवस्था को पहुँच गये। बिना ही प्रयास के अनुभव के गहरे रँग में रंगी हुई वाणी फूट पड़ी। इनकी "अणभैवाणी" को सद्गुरु कृपाराम ने उलट-पलट कर देखा, तो कहा कि इस वाणी की गहराई तक तो मेरी भी गति नहीं। स्वामी रामचरण जी ने "अणभैवाणी" में अध्यात्म के सभी अंगों पर, अनेक छंदों में, जो कुछ कहा वह खूब कहा, बाकी कुछ छोड़ा नहीं। वाणी के पद्यों की संख्या ३६३९७ है।

"अणभैवाणी" के निर्मल महासरोवर में गोरख, नामदेव, कबीर, दादू आदि कितने ही सन्तों के स्वरूप की शुभ्र झलक हम पाते हैं। वैराग्य और अनुराग की सुन्दर धूपछाँह जहाँ-तहाँ देखने में आती है। सगुण-निर्गुण के बीच का वाचनिक भेद सहज ही तिरोहित हो जाता है। सुरत-निरत का गगन-हिंडोला मन को बरबस खींच लेता है। वाणी के प्रखर तेज के सामने धर्म-मजहब की आँखें चकाचौंध में पड़ जाती हैं। शील और अभेद को एक निश्चल स्थान मिल जाता है। मूढ़ग्राह के पैर उखड़ जाते हैं। मानवता का रूप निखर उठता है।

श्री रामस्नेही सम्प्रदाय पर यह परिचयात्मक पुस्तक प्रकाश में आई है। स्वामी रामचरण जी का जीवन, वाणी की समीक्षा, सम्प्रदाय का स्वरूप और संक्षिप्त अणभैवाणी इन चार खण्डों में इस पुस्तक को विभाजित किया गया है। समीक्षा-खण्ड में लेखकों ने गहरा मंथन किया है। शैली कसी हुई, भाषा मँजी हुई और विचार अच्छे सुलझे हुए! क्या अच्छा हो कि हरेक सम्प्रदाय और पंथ के रसग्राही अनुयायी संत-साहित्य को इसी प्रकार सुसम्पादित रूप में प्रकाशित करने की योजना बनायें। लेखकों ने

रामस्नेही सम्प्रदाय के सामने जो एक सुयोजित कार्यक्रम रखा है, उस पर अन्य संत-सम्प्रदायों का भी ध्यान जाना चाहिए।

मुझे यह पछतावा ही रहा कि अपने सम्पादित "संत-सुधा-सार" ग्रन्थ में रामस्नेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी रामचरण जी की वाणी को मैं स्थान न दे सका। "अणभैवाणी" के बिना "संत-सुधा-सार" को मैं अपूर्ण-सा मानता हूँ। इस भूल को अगले संस्करण में अवश्य सुधारूँगा।

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के सुयोग्य लेखकों को इस सत्कार्य के लिये मैं हृदय से बधाई देता हूं, और आशा करता हूं कि संत-साहित्य के संसार में इस उपादेय पुस्तक का अधिक-से-अधिक प्रचार होगा।

हरिजन-निवास,
दिल्ली
११ मार्च १९५९

वियोगी हरि

सम्मतियाँ एवं शुभकामनाएँ

[१]

[राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण गुप्त, संसद् सदस्य]

श्री राम

राजस्थान शूरों की ही नहीं, सन्तों की भी भूमि है। वहाँ के सन्त साहित्य के प्रकाशन का यह आयोजन प्रशंसनीय है, इसका कहना ही क्या! मैं हृदय से इसकी सफलता की कामना करता हूँ।

मैथिली शरण

नई दिल्ली, ६-३-५६

[२]

[यशस्वी पत्रकार श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, संसद् सदस्य]

सन्त लोगों ने जो महान् कार्य भारतीय जनता की जागृति तथा उसके आध्यात्मिक कल्याण के लिये किया है, उसे अब सर्व साधारण कुछ कुछ समझने लगे हैं। इस विषय पर यत्र-तत्र अनुसन्धान कार्य भी हुआ है, पर वह अब तक प्रायः विश्वविद्यालयों के अध्यापकों तक ही सीमित रहा है। इसके अतिरिक्त जितना काम हुआ है, उसका कई गुना करने को पड़ा हुआ है। राजस्थान को लोग प्रायः वीर प्रसूता भूमि ही समझते रहे हैं और बहुत कम लोग उस बात को जानते हैं कि उस पुण्य भूमि ने अनेक सत् सम्प्रदायों के प्रवर्तक सन्तों को भी जन्म दिया था। उन सन्तों के विषय में खोजबीन का कार्य अभी शेष है।

रामस्नेही सम्प्रदाय के आचार्य वीतराग श्री रामचरणजी महाराज की वाणी का विधिवत् सम्पादन कर उसके सुयोग्य सम्पादकों ने निस्सन्देह बड़ा उपयोगी कार्य किया है। वह चार खण्डों में विभाजित है। खेद है कि समयाभाव के कारण मैं इस ग्रन्थ का ध्यानपूर्वक अध्ययन नहीं कर सका, पर जितने भी अंश मैंने देखे उनसे मुझे यह विश्वास हो गया कि लेखक महोदयों ने अपने कर्तव्य को श्रद्धा तथा परिश्रमपूर्वक निवाहा है। पुस्तक की छपाई सफाई नयनाभिराम है और भाषा भी प्रसाद गुण युक्त है। परिशिष्ट में ऐसे राजस्थानी शब्दों के अर्थ अवश्य दिये जाने चाहिये जिनका अर्थ खड़ी बोली वालों के लिये दुर्बोध हो, वल्कि उन्हें तो फुट नोटों में ही दे देना चाहिये था। देश भर के पुस्तकालयों तथा भिन्न-भिन्न राज्यों के शिक्षा विभागों द्वारा इस ग्रन्थ रत्न का स्वागत तथा सम्मान होना चाहिये। विद्वत् समाज तो इसे अपनावेगा ही।

९९, नार्थ एवेन्यू, — बनारसीदास चतुर्वेदी

नई दिल्ली — ९-३-५९

[३]

[साहित्य समीक्षक डॉक्टर प्रभाकर माचवे]

श्री रामस्नेही सम्प्रदाय नामक सन्त-काव्य विषयक ग्रन्थ के मुद्रित पत्र-देखने का सौभाग्य मुझे मिला। इस रूप में राजस्थान का जो सन्त साहित्य प्रकाशित हो रहा है, यह सम्पादकों के अध्यवसाय तथा साहित्य-प्रेम का द्योतक है। इस ग्रन्थ से राजस्थानी भाषा के अध्ययन में बड़ी सहायता मिलेगी, ऐसी आशा है।

(डा०) प्रभाकर माचवे

११-३-५९

[४]

[इतिहासवेत्ता श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार]

"अंग विभाग बनाये सारा, ये जिहाज उतरै भव पारा"

की भावना को लेकर इस देश के गांव-गांव में सन्तों ने जन्म लेकर जन-जन को निराशा में आशा, विफलता में धीरज और संकट के समय आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। इस्लाम इस देश को अपने रंग में क्यों नहीं रंग सका, इसका उत्तर जानना हो तो सन्तों की वाणियों को पढ़ना चाहिये। कार्डोवा (स्पेन) से लेकर पेशावर तक इस्लाम की गति अप्रतिहत रही। इसके बाद उसको पग-पग पर कदम कदम पर बाधा का, प्रतिरोध का और पराजय का भी सामना करना पड़ा। इस प्रतिरोध-शक्ति को जन्म देने का श्रेय इन सन्तों को ही है। महाराष्ट्र में इन सन्तों की वाणी ने 'शिवाजी' के रूप में एक नवीन शक्ति को जन्म दिया। हिन्दी भाषी जगत् के सन्तों की वाणी यह कार्य क्यों नहीं कर सकी, इसकी अभी खोज और मीमांसा होनी शेष है। अतः सन्तों की वाणी का संग्रह एक स्तुत्य कार्य है। रामस्नेही सम्प्रदाय के सन्तों के वाणी का संग्रह राजस्थान के लब्धप्रतिष्ठ साहित्य सेवी मौन भाव से, प्रसिद्धि से दूर रह कर, कर रहे हैं। इससे हिन्दी साहित्य का सन्त साहित्य जहां समृद्ध होगा, वहां मध्य युग के भारत की आत्मा को भी समझने में सहायता मिलेगी। इस दृष्टि से भी मैं इस महान् और शुभ प्रयत्न का अभिनन्दन करता हूँ।

इतिहास सदन, कनाट सर्कस,
नई दिल्ली,
११-३-५६

अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

चतुर्थ खण्ड

श्री रामस्नेही सम्प्रदाय (शाहपुरा) के प्रवर्तक
आचार्य श्री रामचरणजी महाराज

युग की परिस्थिति

रामस्नेही सम्प्रदाय के आद्याचार्य वीतराग श्री रामचरणजी महाराज का प्रादुर्भाव आज से २४० वर्ष पूर्व राजस्थान में हुआ था। उस समय राजस्थान की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति अत्यन्त विषम थी। उदयपुर के महाराणाओं की वह प्रचण्ड तेजस्विता निष्प्रभ हो चुकी थी। रण बांकुरे वीरों की तलवारों का पानी उतर चुका था। राणा सांगा व प्रताप के वंशज बीती हुई कहानी की स्मृति मात्र शेष थे। परस्पर के विग्रह से राजस्थान का सारा वातावरण धूमिल एवं विक्षुब्ध था।

मराठों के वर्वर अत्याचारों व दस्युदल के हमलों से जनता आतंकित थी। राजस्थान के राजा लोग आपस में लड़ रहे थे। सामन्तों का आतंक था। निस्तेज हुए राजस्थान पर अंग्रेजों ने अपने दांत लगा रखे थे।

धर्म के नाम पर वाह्याडम्वरों का जाल फैला हुआ था। तीर्थ, व्रत, कर्मकांड व मूर्ति पूजा का दिखावटी जोर था; लेकिन, धर्म का सच्चा स्वरूप स्वार्थ व माया के घने कुहरे से ढक रहा था। नामधारी साधुओं की जमातें गांवों में आतंक फैलाती व लोगों को डराती थी। खाकी, जटाधारी व छद्मवेषी साधुओं का जाल सा विछ रहा था।

उस समय एक ऐसी विभूति की आवश्यकता थी; जो लोगों को धर्म की सच्ची राह वतावे। लोग निराश, पथभ्रान्त थे, उनके सामने जीवन का कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं था। जिस प्रकार सागर की प्रचण्ड लहरों में कोई नाव इधर उधर टकराती भटकती फिरती है, ऐसी ही दशा, उस समय ज्ञान विमूढ़ जनता की थी।

ऐसी विषम परिस्थिति में श्री रामचरणजी महाराज का प्रादुर्भाव होता है। आचार्य चरण ने पथ-भ्रान्त जनता को जीवन का लक्ष्य दिखाया। ये सच्चे कर्णधार वनकर आये। इनकी वाणी की सुधा-धारा में जिसने एक

बार भी अवगाहन किया, वह धन्य हो गया। आचार्य चरण ने ज्ञान, भक्ति व वैराग्य की त्रिवेणी प्रवाहित की। राजस्थान की बालुकामयी धरती में ही नहीं; मालवा, उत्तर प्रदेश, गुजरात आदि प्रान्तों में दूर दूर आचार्य चरण के उपदेश गूंज उठे।

श्री रामानुजाचार्य, स्वामी रामानन्द व भक्तशिरोमणि तुलसी के बाद उत्तरी भारत में रामनाम को लोक मानस में पुनः प्रतिष्ठित करने का श्रेय निःसन्देह श्री स्वामी रामचरणजी को है।

शिशु-काल

श्री रामचरणजी महाराज का जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत सोडा नामक ग्राम में विक्रम संवत् १७७६ माघ शुक्ला चतुर्दशी शनैश्चर को हुआ था।[१] ये अपने ननिहाल में पैदा हुए थे।[२] इनके पिताजी का नाम वखतरामजी व माताजी का नाम देउजी था, जो मालपुरा के पास बनवाडो नामक गांव में रहते थे। ये बीजावर्गी वैश्य थे।[३]

इनके पैदा होते ही घर में आनन्द छा गया। मंगल गीतों से गांव गूंज उठा। याचकों को मुंह मांगा दान दिया गया। बधाई के बाजे बजने लगे। आज नाना की खुशी का कोई वारपार नहीं था। इनका नाम रामकिशन रखा गया। नाई द्वारा इनके जन्म का शुभ-संवाद इनके पिता के पास भेजा गया। पिता के यहां भी बहुत उत्सव मनाया गया।

बचपन में ही यह शिशु बहुत तेजस्वी मालूम होता था। गौर वर्ण, अम्बुज से नेत्र और देदीप्यमान ललाट-किसी उज्ज्वल भविष्य का संकेत कर

---

(१) समत सतरा सौ हुतो, और छहंतर जान।
चतुरदसी तिथि माहा सुद, वार सनीश्चर मान॥

[श्री रामचरणजी की परची : स्वामी लालदास]

(२) ढुंढाड़ देस सोडो नगर, नानाजी के द्वारे।

[परची]

(३) जन्म वैश्य घर पाईयो।

[अणभै वाणी]

रहे थे।[1] इनकी बुद्धि बडी प्रखर थी। इनकी जन्म कुण्डली देखकर ज्योतिषियों ने भविष्य वाणी कर दी थी कि यह शिशु या तो कोई सम्राट् होगा या कोई महान् योगेश्वर !

कौन जानता था कि यह शिशु जो आज अपनी बाल-क्रीडाओं से सोडा और बनवाडे को आनन्द विभोर कर रहा है, एक दिन सकल शास्त्र निष्णात होकर व पुण्य की मर्यादा बनकर कलियुग में राम भक्ति की पावन सुर सरिता प्रवाहित करेगा, जो कल्मष ध्वंसिनी और जीवन को उज्ज्वल बनाने वाली होगी।[2]

राज्य-कार्य

धीरे धीरे श्री रामकिशनजी ने अपना गृह कार्य संभाल लिया। अब बचपन बीत चुका था और ये जवान हो चले थे। इनकी कार्य-कुशलता की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई थी। जयपुर नरेश ने इनकी प्रशंसा सुनी और इनको अपना मंत्री बना लिया। मंत्री बनने के बाद इनकी न्याय-निष्ठा व कर्त्तव्य-भावना की चारों ओर प्रशंसा होने लगी। मंत्री के रूप में इनका यश चारों ओर फैल गया। लोगों की जवान पर इनकी निपुणता, निष्पक्षता व न्याय प्रियता की कहानियां नाच उठीं।

इनकी २४ वर्ष की अवस्था में ही पिताजी का स्वर्गवास हो गया। इस दुःसंवाद को सुनकर ये बड़े व्यथित हुए। मोसर करने के लिये जयपुर से अपने गांव को रवाना हुए। मार्ग में एक यति से इनका मिलन हुआ। यति ने आचार्य चरण को देखकर आश्चर्य प्रकट किया और कहा--

---

(१) क्रान्ति विषैं सूरज सम जानूं।
गौर बरण अंबुज से नैनां।
[परची]

(२) राम भगत जग प्रकटे, रामचरणजी संत।
राम नाम सुमराइ कैं, त्यारैं जीव अनन्त।
[परची]

ज्योतिष के अनुसार तुम्हें या तो राजा होना चाहिये या कोई योगी।[1]

श्री रामकिशन अपने घर को आये। मोसर के कार्य से निवृत्त होकर जयपुर जाने की तैयारी में लग गये।

एक स्वप्न

रात का अन्तिम प्रहर था। आकाश में तारे झिलमिला रहे थे। उस समय श्री रामकिशनजी ने एक स्वप्न देखा। एक नदी उमड़ती हुई बह रही है। चारों ओर शान्ति है। ठण्डी हवा के मदमाते झोंके पुलकित कर रहे हैं।

ये स्नान करने के लिये नदी में घुसते हैं। पर, यह क्या! यह प्रबल प्रवाह कहाँ से आया! इनके पांव उखड़ गये और ये तेज धारा में बह चले। धारा का प्रवाह प्रचण्ड हो चला, ऊँची ऊँची लहरें उठने लगीं, तेज अन्धड़ के झोंके आने लगे और उसमें जैसे ये बहे चले जा रहे हैं! ये चीख रहे हैं, 'बचाओ बचाओ' की क्रन्दन ध्वनि सारे व्योम मण्डल को विदीर्ण कर रही है। पर, कोई बचाने वाला नहीं!

श्वास अब रुद्ध से हो रहे हैं। मौत मुँह बाए खड़ी है और धारा का प्रखर वेग इनको बहाये जा रहा है। इतने में जैसे इनका कोई हाथ पकड़ कर बाहर निकाल लेता है। ये चकित हो जाते हैं। थोड़ी देर में होश आता है।

एक साधु पास में खड़ा है। तेजस्वी मुख-मण्डल, ज्ञान ज्योति से चमकते नेत्र, प्रशस्त ललाट, इस भव्य दिव्य मूर्ति को देखकर ये चरणों में श्रद्धावनत होते हैं। इतने में स्वप्न भंग हो जाता है। आँखे खुल जाती हैं। वही शयन कक्ष, वही सब कुछ! रात बीत चुकी थी, सूर्योदय होने को था।

इस स्वप्न ने राज्य मंत्री रामकिशन के जीवन प्रवाह में हलचल मचा दी। इस स्वप्न का रहस्य क्या है, इसी की खोज में ये लग गये। घर

---

(१) **कै राजा होई चँवर ढुलावे।**
कै जोगेसर जोग कमावै।
[गुरु-लीला विलास; श्री जगन्नाथ]

है, द्वार है, परिवार है; पर, इनका मन वहाँ नहीं। वह दूर, बहुत दूर, उड कर इस माया कुहेलिका के पार प्रकाश-पुञ्ज की खोज में है।

जा दिन सपनो भयो उदासी, रहे भवन ज्युं बन वनवासी।

अब इनके लिये भवन वन बनगया है! घर के सारे भोग इन्हें रोग मालूम होने लगे हैं। राजकीय सम्मान व पद के ऊँचे-ऊँचे स्तूप किसी अज्ञात शक्ति के रहस्यमय झटके से धरती पर गिरते व मिटते नजर आये। अचानक इस स्वप्न का रहस्यार्थ विद्युत् प्रकाश की तरह इनके हृदयाकाश में चमक उठा। ये सही अर्थों में अब जाग उठे। इनकी आंखे खुल गई।[1]

गुरु की खोज में

आचार्य चरण सद्गुरु की खोज में चल पड़े। रात और दिन चलते रहे। न खाने-पीने की सुध और न आराम-विश्राम का ध्यान। कोई अज्ञात-प्रेरणा जिधर ढकेलती रहती, उधर ही चल पड़ते। इधर-उधर घूमते भटकते मेवाड़ राज्यान्तर्गत शाहपुरा पहुँचे। वहाँ अपने स्वप्न में देखे हुए गुरु की मुख-मुद्रा का वर्णन कर लोगों से जिज्ञासा भरा प्रश्न किया। लोगों ने एक स्वर से कहा, ऐसे महात्मा पास ही दांतड़े में रहते हैं।

यह सुनकर ये आनन्द विभोर हो दांतड़े की ओर चल पड़े। हृदय में दृढ़ वैराग्य, आँखों में दर्शन की पिपासा और पैरों में अविश्रान्त वेग। ये चलते-चलते दांतड़ा पहुँचे। यहीं इस यात्रा का अन्त था।

सामने कृपार्णव महाराज कृपारामजी के दर्शन कर ये कृतकृत्य हो गये। वही गम्भीर प्रशान्त-मुद्रा, ध्यान-स्तिमित नेत्र, निर्वात दीप शिखा की तरह निष्कम्प लौ, स्वप्न में देखी हुई वही दिव्य मूर्ति! रामकिशन अपने पिपासाकुल नेत्रों से इस दिव्य छवि को निर्निमेष देखते रहे। ये स्तब्ध और जड़ थे। थोड़ी देर बाद ये होश में आये और इन्होंने अपना मस्तक आचार्य कृपारामजी के चरणों में झुका दिया।

---

(१) जाग आय यूं कियो विचारा, यो तो जगत झूठ है सारा।
[ब्रह्म समाधि लीन जोग, २१ छन्द]

कृपारामजी इस आगन्तुक को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। इन्होंने अपना वरद-हस्त राजच्छत्र की तरह इनके मस्तक पर फैला दिया। आगन्तुक को लगा, जैसे त्रिविध ताप से जलते हुए संसार से हटकर वह किसी शान्त, स्निग्ध व शीतल स्थान पर पहुँच गया है। रास्ते की थकान जाती रही। पहली यात्रा सानन्द समाप्त हो गई। मार्ग के शूल फूल बन गये, पथ की धूलि चन्दन की तरह हो गई।

कृपाराममप्रजी ने प्रश्न किया, आगन्तुक ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? कहाँ जाना है ? तुम्हारा नाम ?

रामकिशनजी इन प्रश्नों को सुनकर हतप्रभ हो गये। व्यथा-विगलित वाणी में पूछ बैठे--भगवन् ! इन्हीं का उत्तर पाने के लिये तो मैं आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूँ। न मालूम मैं कौन हूँ ! कहाँ से आया हूँ, मेरा गन्तव्य क्या है ? मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो संसार की धारा में बहने वाला एक अकिंचन प्राणी, एक आत्म विस्मृत जीव !

कृपारामजी को लगा, जैसे अग्नि-स्फुलिंग राख से ढके हों, निर्मल दर्पण पर जंग लगा हो, स्वच्छ जल शैवाल जाल से आच्छादित हो, ज्योति-शिखा कज्जल से आवृत हो। कृपारामजी ने अपने प्रातिभ चक्षुओं से देख लिया कि इस युग की भावी महान् विभूति, एक महान् साधना व सिद्धि, उनके सामने किसी निमित्त मात्र की प्रतीक्षा में है।

श्री कृपारामजी महाराज यह सुनकर अत्यन्त आह्लादित हुए। फिर भी, अभी तो परीक्षा लेनी शेष थी। कहने लगे-- यह वैराग्य का मार्ग अत्यन्त कठिन है। सभी सन्त इसकी महिमा का बखान करते हैं। जब मुमुक्षु के मन में निर्वेद की दृढ़ भावना जागती है, तभी इस कठिन मार्ग पर वह कदम रखने की हिम्मत करता है। सावधान, यह योग का, वैराग्य का मार्ग बांका है। मृणाल से महीन सूई के नाके[1] से भी तीखा नुकीला, अटपटा व रपटीला मार्ग है। तुम अभी अबोध

---

(१) योगारंभ को मारग बांको रे।
खांडा की धार छुरी को सो पानो। सार सुई को नाको रे॥

हो, इस झीणे मार्ग पर कैसे कदम रखोगे ?[1]

आगन्तुक जरा भी विचलित नहीं हुआ। जैसे मार्ग में ये कठिनाइयाँ कुछ हैं ही नहीं।

रामकिशनजी ने कहा— गुरुदेव ! मैं आपकी शरण हूँ। क्या सिंह का आश्रय लेकर कभी कोई शृगाल से डरता है ? कल्पतरु की शीतल छाया में विश्राम करने वाला क्या कभी दरिद्रता की आशंका से विचलित हो सकता है ? चाहे युग-युग का संचित अंधकार ही क्यों न हो, क्या वह कभी प्रकाश की एक किरण के सामने ठहर सकता है ? गुरुदेव ! मैं संसार को देख चुका हूँ। मेरा मन अब उसकी तरफ किसी प्रकार भी नहीं जा सकता। मैं मुक्ति-पथ का पथिक हूँ; भुक्ति की मायाविनी मृग मरीचिका में मेरा मन अब उलझने का नहीं ! मेरे लिये आप ही सब कुछ हैं। मेरे आप ही त्राता हैं। मैं आपकी शरण हूँ। मेरा तन मन सब कुछ आपको समर्पित है।[2]

यों कहकर आगन्तुक ने श्री कृपारामजी के चरण अकुला कर पकड़ लिये। स्वामी कृपारामजी ने आगन्तुक की दृढ़ता देखी। पारस्परिक संलाप से कृपारामजी को विश्वास हो गया कि यह सब प्रकार से सुयोग्य व सुपात्र है और किसी भी प्रकार घर जाने को तय्यार नहीं है।[3]

---

(१) अ. ये वैराग कठिन है भाई, जाकी शोभा सन्ता गाई।
सो वैराग भाग बड़ जाके, धारै दास होय मन पाके।
मन वच कायक होय अजाची, महा कठिन मति जाणो काची।
—ब्रह्म समाधि लीन जोग; ३१-३२ पद्य

मिलाओ—
आ. पिया दूर पंथ म्हारा झीणां सुरत झकोळा खाय।
—मीराँ

(२) तन मन अर्प लगे शरणाई।
—ब्रह्म समाधि लीन जोग; ३३ पद्य

(३) तब विचारि करि कीनी अरजी।
—गुरु लीला विलास, ४३ वाँ छन्द

इस प्रकार पन्द्रह दिन गुरु चरणों में रहते हुए व्यतीत हो गये।[1] गुरु वन्दना व उपदेश श्रवण में यह एक पक्ष कुछ क्षणों सा मालूम हुआ।

दीक्षा

विक्रम संवत् १८०८ भाद्रपद शुक्ला ७ गुरुवार के दिन स्वामी कृपारामजी ने श्री रामकिशन को राम नाम का तारक मन्त्र देकर दीक्षित किया और इनका दीक्षा-नाम रामचरण रखा।[2] दीक्षा का यह पवित्र दिन राजस्थान के इतिहास का महत्त्वपूर्ण दिन है। यह एक सन्त की अमर गाथा का प्रथम अक्षर है। यह दिन भक्ति की गंगा का मानो उद्गम है। आज के दिन गृहस्थी रामकिशन बदल गया है, वह खत्म हो गया है और एक नवीन ज्योति का उद्भव हो चला है। यह नया जन्म है, नया संस्कार है, जीवन रूपी ग्रन्थ का नया उज्ज्वल अध्याय है।

स्वामी रामचरणजी के आनन्द का कोई ठिकाना नहीं है। ऊपर आकाश में छाये हुए घने बादल हैं, नीचे धरती का सूखा आँचल हरा भरा

---

(१) ऐक पाख चरचा नै लागा।　　　　—गुरु लीला विलास

(२) अ. अठारा सै अर आठ की साला, माथै हाथ दियौ क्रिपाला।
भाद्रमास भरो निरबन्धा, रामचरणजी नाम प्रसंदा।
—वही, ४४ पद्य

आ. तब सत गुर क्रिपाल होइ, दीना साध सरूप।
राम नाम मंतर दिया, सब धरमा सिर भूप॥
अष्टादश अर आठ कै, संवत् भई गुर भेंट।
आप सरीसा कर लिया, भूल भरमना मेट॥
रामचरणजी नाम दे, सीस धरया गुर हाथ।
सत गुर कै प्रताप सौं, जग में भये विख्यात॥
—रामचरणजी की परची; ३०, ३१, ३२ पद्य

इ. संवत् अठारा सै अरु आठा, ले वैराग गहे मन काठा।
भाद्रपद मास दास पद पायो, रामचरणजी नाम कहायो॥
—ब्रह्म समाधि लीन जोग; ३३-३४ पद्यांश

हो चला है। चारों ओर उल्लास है। पर, स्वामी रामचरणजी के हृदय में आनन्द के सघन मेघ जैसे छाये हुए हैं, उनके सामने ये बाहरी बादल कुछ नहीं। इनके हृदय की हरियाली के सामने यह हरियाली उसकी छाया-मात्र है।

गुरु से दीक्षा लेने के बाद उनकी आज्ञा पाकर स्वामी रामचरणजी गूदड़ वेश बना लेते हैं और साधना के लिए एकाकी चल पड़ते हैं। सिंह की तरह एकाकी विचरण करते हैं। गले में गुदड़ी, हाथ में हांडी, गुजारे मात्र भिक्षा और अखण्ड ध्यान— इस प्रकार सात वर्ष तक अनवरत साधना में लीन रहे।

गल कंथा, हांडी हसत, भिख्या तन गुदरान।
ऐसी धारा धारिये, धरचो अखंडत ध्यान॥

आचार्य रामचरणजी ने गूदड़ वेश के इन सात वर्षों में आस पास के सभी लोगों पर अपनी साधना की गहरी छाप जमा दी। श्मसान में आसन जमाया। वैराग्य का वह स्वरूप देखकर नर-नारियों का समुद्र ही दर्शन के लिये उमड़ पड़ा। ये कुछ भी पूजा ग्रहण नहीं करते थे और सीधा गुरु की सेवा में भेज देते थे।[1] गुरु कृपारामजी को यह अच्छा नहीं लगा।

एक दिन गुरु श्री कृपारामजी ने रामचरणजी से कहा कि इस प्रकार मेरे निमित्त भी भेंट लेना किसी प्रकार उचित नहीं। यह माया का रूप है। छोडो यह सब, राम नाम के अमृत की घूंट को ही पीना चाहिये। कनक कामिनी सन्तों के मार्ग की बाधा है। यह माया का रूप है। विरक्त होकर संसार में विचरो।

स्वामी रामचरणजी पर इन अमृताक्षरों का जादू का सा प्रभाव हुआ।

---

(१) पूजा चढ़ै स ऐरे नां हीं, परभारी गुरु द्वार पठाहीं।
—ब्रह्म समाधि लीन जोग

भेष मांहि अति खड़बड़

एक बार गलते के मेले पर जाने के लिये साधुग्रों की मंडली रवाना हुई। स्वामी कृपारामजी के साथ रामचरणजी ने भी प्रस्थान किया। एक दिन स्वामीजी ने रसोई बनाते समय जलती हुई लकड़ी में से चींटियों को निकलते देखा, इससे इनका मन भण्डारे की खड़बड़ से उचटने लगा। आगे चल कर किसी गांव में साधुग्रों की इस मंडली में बड़ी खींचातानी देखी, तो इनका मन इन झगड़ों से दूर हटता चला गया।

गलते का यह मेला सं० १८१५ में हुआ था। लाखों की संख्या में साधुओं की जमातें व दर्शनार्थी एकत्र हुए। रामचरणजी वहाँ पर रहे। पर, इनका मन इस जमघट व भड़ भड़ से भागने लगा।

एक दिन आपने कृपारामजी से प्रश्न किया— गुरुदेव ! मुक्ति का क्या यही मार्ग है ! कृपारामजी ने कहा— नहीं। यह प्रवृत्ति का बखेड़ा है। निवृत्ति मार्ग इससे बिल्कुल भिन्न है।

प्रवृत्ति थाट जितै दुखदाई।

निवृत्ति मार्ग का पथिक बनने के लिये केवल वैराग्य की आवश्यकता है। विरक्त हो जाओ। द्वन्द्व को छोड़ दो। अपनी देहात्म बुद्धि का परित्याग कर दो। भ्रमर और अजगरी वृत्ति से अपना जीवनयापन करो। कहीं निश्चिन्त होकर एकान्त स्थान में पड़ रहो, जो अयाचित रूप से मिल जावे, उदर समाता ग्रहण कर लो। भोजन व वस्त्र, शरीर निर्वाह तथा लज्जा निवारण के निमित्त हो।

सब का आरंभ छोड़ कर निरारम्भ होकर रहो। निःस्पृह, वीतराग, द्वन्द्वातीत व स्थित प्रज्ञ बनो। राम ही अद्वय और अखण्ड है। इन्हीं दो अक्षरों के अमृत रस का पान करो।

निरवृत्ति होय राम मुख भाखो।

× × ×

विरकत होय द्वन्द्व सब डारो।
या विधि आप अपनपो त्यारो।
भँवर अजगरी वृत्ति सम्हावो।
छादन भोजन तन निरभावो।
आरंभ त्याग निरारंभ रहना।
काहू सेती कछू न कहना।

× × ×

दोई अक्षर अद्वैत अखण्डा।

साथ ही कृपारामजी ने कहा— राम ही राम उचारो रसना। गुरु के इस उपदेश को सुन कर रामचरणजी का संशय जाता रहा। इन्होंने गुरु के चरणों में झुक कर प्रणाम किया। स्वामी कृपारामजी ने अपना वरद हस्त रामचरणजी के मस्तक पर रखा। गुरु के आशीर्वाद को पाकर रामचरणजी ने गूदड़ वेश छोड़ दिया। विरक्त का वेश धारण किया। सारे सन्तों को प्रणाम किया और उन से भी आशीर्वाद मांगा। सभी सन्तों ने अपने हृदय से शुभाशीर्वाद दिया।

सन्तों के आशीर्वाद को पाकर रामचरणजी ने समस्त साधु मंडली को पुनः प्रणाम किया और ये निर्द्वन्द्व भाव से बाहर निकल आये। इनका हृदय किसी अलौकिक आनन्द के रस से आप्लावित हो रहा था। आँखों से तृप्ति की अजस्र वर्षा बरस रही थी! जिह्वा पर एक मात्र राम-रट था, ध्यान तैल की अखण्ड धारा की तरह ईश्वरोन्मुख था। मन शान्त व गम्भीर था। भक्ति की भावना पुण्य सलिला भागीरथी की कल्लोलमयी धारा की भांति उमड़ रही थी। उसका प्रवाह शान्त और गंभीर मन को संतों की साधना स्थली तीर्थ-भूमि की ओर आकृष्ट कर रहा था। वैराग्य के रस में आकण्ठ मग्न होकर श्री स्वामी रामचरणजी भक्तों के धाम वृन्दावन की ओर चल पड़े।

सारंग पाणि के दर्शन

स्वामी रामचरण बिचारी ऐसी मन में
बृंन्द्राबन करि वास राचिए राम भजन में
चाले ब्रज की ओर—

राम भक्ति की भावना से भरकर स्वामी रामचरणजी वृन्दावन की ओर चले, तो रास्ते में एक साधु से मिलना हुआ। वह साधु बड़ा तेजस्वी मालूम होता था। साधु ने रामचरणजी से इनके गन्तव्य के बारे में पूछा इन्होंने सारी बात कह सुनाई। साधु ने कहा—तुम वृन्दावन जाकर क्या करोगे? वहाँ तो सगुण भक्ति का जोर है। जाओ, वापस मेवाड़ की ओर लौट जाओ। निर्गुण राम भक्ति का उपदेश देकर लोगों का उद्धार करो।

यों कह कर वह साधु सहसा अंतर्द्धान हो गया। जैसे आँखों के सामने कोई प्रकाश पुंज प्रकटा हो और वह सहसा गायब हो गया हो। स्वामी रामचरणजी विस्मित हो गये; इन्हें लगा, साक्षात् ईश्वर ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये हों। ईश्वरीय इस आदेश को पाकर ये मेवाड़ की ओर चल दिये।

'रामचरणजी लखि लिया, निश्चै सारंग बान।'

× × × ×

साधु रूप होइ दरस दिखाया, रामचरण कै आनंद आया।

रसायनी से भेंट

इस प्रवास में स्वामी जी को एक रसायनी मिला था। वह बड़ा चमत्कारी था, उसने तांबे से स्वर्ण बनाने की कला स्वामी जी को सिखानी चाही। स्वामी जी का हृदय माया से इतना दूर हट गया था कि अब संसार का कोई प्रलोभन इन्हें नहीं फँसा सकता था। रसायनी ने बहुत आग्रह किया कि मैं वृद्ध हो चला हूँ। तुम सुपात्र मालूम होते हो। तुम स्वर्ण बनाना सीखलो और पीछे परमार्थ करते रहना।

स्वामीजी के हृदय पर रसायनी की बातों का रंच मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। ये तो अलमस्त फकीरी का वाना पहन चुके थे। स्वामी जी ने कहा—

'हम तो राम रसायन पाई।'

राम नाम के मधुर रसायन के सामने तुम्हारी इस रस विद्या में मेरे लिये कोई आकर्षण नहीं। इस प्रेम रसायन की आंच में शरीर रूपी तांबा गल जाता है और मन निर्मल होकर कुन्दन की तरह दमक उठता है। संसार के सारे रसायन हमने छोड़ दिये हैं।

'तायां तन तांबो गल जावै।
मन कुंदन कुंदन दरसावै।
ओर रसांइण सब हम त्यागी।
तबउ उठ चल्यौ बैरागी।'

भीलवाड़े में भक्ति भागीरथी

भक्ति नहीं तीं देश मैं, निर्गुण को लवलेस।
सो अब परगट होत है, जाहर देस विदेस॥

श्री रामचरण जी ने संवत् १८१७ में भीलवाड़े में पदार्पण किया। इस देश में निर्गुण भक्ति का कोई प्रचार नहीं था। लोग सगु-णोपासना व मूर्ति पूजा में लगे थे। धर्म का मर्म अगोचर था और लोग वाह्याचारों में उलझे हुए थे। नामधारी साधु संन्यासी अपना पेट पालने में लगे थे। परमार्थ का पथ रुंधा पड़ा था। स्वामीजी के रूप में भीलवाड़े में साक्षात् भक्ति की भागीरथी ही प्रवाहित हो गई।

स्वामीजी ने नगर के पश्चिम मयारामजी की बावड़ी को एकान्त स्थान समझ कर पसन्द किया। वहीं अपना आसन जमाया। इसी स्थान पर स्वामीजी ने गहरी साधना की। ये ज्ञान और प्रेम रस में डूब गये। मौन व्रत धारण कर लिया। अजगरी वृत्ति अपनाई।

पश्चिम दिसा बांवड़ी देखी, जहां विराजै परम विवेकी ।
भिक्षा भंवर अजगरी पावै, नूतो देवे से कबू न जावे ।

आचार्य चरण ने दश वर्ष तक इस स्थान पर साधना की ज्योति जगाई । चारों ओर इसका प्रकाश फैल गया । आस-पास के बूढ़े-जवान, स्त्री-पुरुष, पंडित-अपंडित, साधु-संन्यासी, विरक्त वैरागी, परमहंस विदेही सभी दर्शन के लिये उमड़ पड़े ।

स्वामीजी का यश चारों ओर फैल गया । दूर दूर के लोग दर्शन के लिए आने लगे । 'कलियुग' में नाम भव तारण' यह स्वामीजी के उपदेशों का मूल प्रेरक भाव था । 'राम धुन' से सारा वातावरण गूंज रहा था । ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की त्रिधारा उमड़ उमड़ कर समस्त संसार को आल्पावित कर देना चाहती थी ।

जिस प्रकार किसी पुष्प के विकसित होने पर उसकी सुरभि चारों ओर फैल जाती है, उसी प्रकार स्वामीजी की यशःसुरभि भी दूर दूर तक फैलने लगी ।

पर, आचार्य चरण अब निन्दा--स्तुति, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद के द्वन्द्वों से मुक्त हो चुके थे । शुद्ध बुद्ध चिदानन्द की नित्य ज्योति से ये ज्योतिर्मय थे । जिस समय स्वामीजी के मुखार विन्द द्वारा मेघ मन्द्र ध्वनि से उपदेश की गंगा प्रवाहित होती थी, समग्र जिज्ञासु मण्डली किसी अनिर्वच आनन्द की उत्ताल तरंगों में डूबने उतराने लगती । चारों ओर आनन्द ही आनन्द था । लोग मुग्ध मोहित थे । बहुत से लोग विवाद करने आते, लेकिन स्वामीजी के तेजस्वी व्यक्तित्व के सामने वे झुक जाते थे और उल्टे प्रशंसक बनकर घर लौटते थे । जिज्ञासु व श्रद्धालु लोगों की मण्डली शनैः शनैः जुड़ रही थी और चारों ओर भक्ति का पारावार लहरा रहा था ।

एक स्थितप्रज्ञ योगी

भीलवाड़े में रहते हुए आचार्य चरण ने सिद्धि के सर्वोच्च शिखर को छू लिया था । ये जीवन मुक्त महात्मा हो गये थे । मिट्टी, पत्थर और

कुहाड़े की सिद्ध शिला (भीलवाड़ा)

स्वर्ण आदि समस्त पदार्थों में; पशु, पक्षी, मनुष्य, कीट, पतंगादि समस्त प्राणियों में सुख-दुःख आदि समस्त द्वन्द्वों में इनका समभाव हो गया था।

समस्त कर्मों में सर्वत्र, सर्वदा व सर्वथा रूप से चित्त की एक ही वृत्ति नित्य, कूटस्थ व ध्यानस्थ हो गई है। सब प्रकार का चांचल्य जाता रहा। इनके अन्तःकरण में समभाव, प्रसन्नता, परम-शान्ति, सौमनस्य और सुख की अविच्छिन्न अटूट धारा निरन्तर प्रवाहित होने लगी। जिस प्रकार नदियाँ बहती बहती अन्त में समुद्र में मिलकर एक रूप हो जाती हैं और उनकी यात्रा समाप्त हो जाती है; उसी प्रकार अब स्वामीजी ने भी सब कुछ पा लिया था। उस दुर्लभ पदार्थ आत्म-तत्त्व के साक्षात्कार करने के बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रहता।

यही भारतीय शास्त्रों में आत्यन्तिक सुख, अक्षय सुख, अविनाशी, निर्वाणपद, परम सिद्धि, शाश्वत शान्ति आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। आचार्य चरण अब साक्षात् कृतधर्मा बन गये थे। श्रीमद् भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में स्थितप्रज्ञ की विशद व्याख्या की गई है, उसके मानो ये विग्रहधारी थे—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ २-५६

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ २-५७

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न
काम कामी २-७०

गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ, गुणातीत व भक्त के जो लक्षण हैं, वे सभी स्वामीजी में मूर्त्त रूप धारण कर चुके थे। स्वामीजी अब अद्वेष्टा, मैत्री व करुणा की मूर्ति, निर्मम, निरहंकार, क्षमी व सन्तुष्ट बन

कर निर्भ्रान्त वाणी में संसार को परमार्थ का पथ, निःश्रेयस का मार्ग दिखा रहे थे।

भीलवाड़े व आस पास की जनता के भाग्य जाग उठे। मानव जीवन को ऊँचा उठाने वाली अमर विभूति के दर्शन, उपदेश-श्रवण व संगति का पुण्य-प्रसाद पाकर सभी फूले नहीं समाते थे। आचार्य चरण अपने स्वरूपानन्द में नित्य ही मग्न रहते थे। न तो वे भक्तों की प्रशंसा से आत्म-मूर्च्छित हुए और न दुष्टों की निन्दा से विचलित।

चाहे 'निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु' कुछ भी हो, धैर्यशाली अपने न्याय के पथ से किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं होते। उसी प्रकार आचार्य चरण भी प्रशंसा-निन्दा के बीच समभाव से सिद्धि के आसन पर एक रस आरूढ़ रहे।

भगति ब्रिछ भारी बध्या

भीलवाड़े में भक्ति का सघन वृक्ष अनन्त शाखा-प्रशाखाओं के साथ बढ़ने लगा, जिसकी शीतल छाया में दूर दूर के लोग आने लगे। जिस प्रकार गर्मी की भयंकर लपटों में जला झुलसा व्यक्ति किसी घने पेड़ की छाया में अपनी थकान मिटाता है, उसी प्रकार दैहिक, दैविक और भौतिक त्रितापों से तपे हुए प्राणी महाराज रामचरणजी के चरणों में आकर शान्ति व सुख पाने लगे।

बहुत से गृहस्थी रामचरणजी के चरणों में रहने लगे। श्री देवकरणजी, कुशलरामजी, नवलरामजी जिनमें सब से विख्यात हैं।[1]

इन तीनों गृहस्थी जिज्ञासुओं ने स्वामीजी के अमृतोपदेशों से भरपूर लाभ उठाया। तीनों ने शीलव्रत का पालन करना शुरु किया। स्वामीजी का इतना प्रभाव बढ़ा कि ये गृहस्थ जीवन से विरक्त प्राय

---

(१) स्वामी रामचरण के गरही सिख अनेक
देवकरण कुसला नवल मुखिया तीन विसेख।

परची, ५१ छन्द

रहने लगे। इनमें से किसी एक की पत्नी इतनी नाराज हुई कि एक दिन उस अज्ञा ने स्वामीजी को भोजन में विष तक दे दिया। स्वामीजी परिपूर्णानन्द थे, उन पर विष का कोई प्रभाव नहीं हुआ।[1]

मूर्खा नारी ने अपना वार खाली गया जानकर एक दूसरा षड्यंत्र रचा। उसने एक भील को प्रलोभन देकर स्वामीजी को मारने भेजा– 'भील पठाया घात कूं वा बाई मतिमन्द।'

एक दिन शाम को वह भील हाथ में तलवार लेकर स्वामीजी को मारने आया। स्वामीजी जहाँ आसन पर विराजे थे, वहाँ दबे पाँव इधर उधर देखता, चौंकता हुआ पहुँचा। वहाँ स्वामीजी नहीं दिखाई दिये। वह आँख फाड़कर इधर उधर देखने लगा; पर, उसे कोई नजर नहीं आया। सहसा वह देखता है कि आसन के पास अग्नि पुंज जल रहा है। वह विस्मित हो गया, उसके पैर कांपने लगे और हृदय किसी भय की आशंका से धड़कने लगा। इतने में देखता है कि वह अग्नि पुंज सहसा गायब हो जाता है और स्वामी रामचरणजी महाराज का प्राकट्य हो जाता है। इस अद्भुत चमत्कार को देखकर भील के हाथ से तलवार नीचे गिर जाती है। वह कांपते हुए हाथों से उनके चरण पकड़कर रोने लगता है और अपने अपराधों के लिये क्षमा याचना करता है।[2]

---

(१) कोय ऐक की नार जहरि स्वामी कूं दीया
जोर चला नहीं जहर का स्वामी परमानन्द।
—परची, ५१ छन्द

(२) भील आया घात कूं, ले कर में तरवार
रामद्वारे स्यांम का, दरस्या नहीं दीदार।
दरस्या नहीं दीदार, पुंज अगनी का देखा
पीछे दरसण भया, लह्या आचरज विसेखा।
हाथ जोड़ विनती करै, बगसो मम अपराध
मेरै मन निश्चे भई, राम रूप तुम साध।
—वही, ५२ छन्द

अनन्त क्षमाशील स्वामीजी भील को रोते गिड़गिड़ाते देखकर कहने लगे कि तुम राम को भजो और हृदय में दया को धारण करो।

स्वामीजी की उदारता का भील पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह पवित्र हो गया। भील ने सभी प्रकार के हिंसा कर्म छोड़ दिये। उसने सत्य, शील, सन्तोष और अहिंसा के भाव धारण कर लिये। वह भील रामस्नेही बन गया। राम की भक्ति को अपनाकर भील ने अपने जीवन को सब प्रकार से कृतार्थ कर लिया।

जिस मूर्खा नारी ने इस भील को हिंसा कृत्य के लिए भेजा था, वह भी बहुत पछताई। वह भी एक दिन स्वामीजी के चरणों में आ उपस्थित हुई। उसने हाथ जोड़कर अपने सब अपराध स्वीकार किये। स्वामीजी ने उन बातों की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया और राम-भजन का ही उपदेश दिया। स्वामीजी कहने लगे, राम-भक्ति ही समस्त पापों की अमोघ औषध है। स्वामीजी की इस कृपा को पाकर उसने अपना मानव-जीवन धन्य समझा। उसने अपना सर्वस्व गुरु के चरणों में न्यौछावर कर दिया।

एक बार पांच सात आदमी मिलकर स्वामीजी को लाठियों से मारने पीटने आये थे, तो इसी बाई ने स्वामीजी को बचाने के लिए लाठियों का वार अपने ऊपर झेला। इस बहिन की चूड़ियाँ टूट गईं और लाठियों की मार से बेहोश भी हो गई।

इसी प्रकार नित नये श्रद्धालु भक्तों की बाढ़ सी आने लगी। कथा-वार्ता, उपदेश श्रवण और सत्संग का भीलवाड़ा में खूब ही प्रचार बढ़ चला।

दुष्टों द्वारा दुष्प्रचार

ज्यूं मेंगल कूं देखि कै, भुसि है कूकर पीछ।
यूं सोभा लख साध की, निंदा करि है नीच॥
जगत भगत के बैर है, आदि सनातन रीति।
भगतां रिछक रामजी, निंदक सदा फजीत॥

यह संसार की सनातन रीति है कि जब भी सन्तों की महिमा चारों ओर फैलने लगती है, तो दुष्टों को वह रुचती नहीं। वे तरह तरह से संतों की निन्दा करते हैं और अपनी हानि उठाकर भी सन्तों को दुःख देते हैं। पर, आगे चलकर दुष्टों को हारना ही पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इन असन्तों का खूब वर्णन किया है—

खल परिहास होइ हित मोरा
काक कहहिं कल कंठ कठोरा।

विपत्ति और विरोध तो महापुरुषों व सन्त जनों के साथ साथ लगे रहते हैं। पर, सन्त जन अपने सिद्धान्त पर डटे रहते हैं। संसार का कोई भी भय उनको अपने कर्त्तव्य-पथ से नहीं हटा सकता।

स्वामीजी निर्गुण भक्ति के प्रचारक थे। वहाँ के अधिकांश लोग मूर्ति पूजक थे, उनके साथ कुछ स्वार्थी व दुष्ट लोग मिल गये। चारों ओर लोगों में ये लोग चर्चा करने लगे और कहने लगे कि यह साधु व्यर्थ का नया पंथ चला रहा है। यह तो धर्म को विच्छिन्न कर देना चाहता है। कुछ लोगों ने मिलकर उदयपुर के महाराणा के पास श्री स्वामी रामचरण जी के विरुद्ध शिकायत भेजी। उदयपुर महाराणा ने अपना कामदार राम-स्नेही साधुओं को समझाने भेजा। जब देवकरणजी द्वारा सारी बातें मालूम हुईं, तो स्वामी रामचरणजी ने वहाँ से प्रस्थान करने का निर्णय किया।

स्वामी जी वहाँ से कुहाड़े गांव को रवाना हुए। यह स्थान भील-वाड़े से २१ मील के करीब कोठारी नदी पर अवस्थित है। जब लोगों को मालूम हुआ तो आबाल वृद्ध वनिता सभी दौड़कर महाराज को रोकने के लिए आये। पर, स्वामीजी ने यह कह कर सबको लौटा दिया कि फिर कभी रमते हुए इधर भी आना होता रहेगा।

इधर देवकरणजी उदयपुर गये। वहाँ इन्हें काफी समय तक रुकना पड़ा। ये मंत्रिवर्ग से मिले और इन्होंने सारी स्थिति समझाई। मंत्रियों के द्वारा ये महाराणा से भी मिलने का प्रयास करते रहे।

उस समय मेवाड़ में महाराणा अरिसिंह (द्वितीय) राज्य कर रहे थे। ये महाराणा जगसिंह (द्वितीय) के छोटे पुत्र थे। वि० संवत्

१८१७ चैत्र वदि १३ को ये सिंहासनारूढ़ हुए। इस समय मल्हार राव होल्कर का मेवाड़ पर आक्रमण हुआ था। उधर महापुरुषों (दादू पन्थी नागों) की सेना का भी उपद्रव हो रहा था। स्थिति डांवाडोल थी।[1] देवकरण भी उदयपुर में तीन महीने तक रुके रहे। ये उदयपुर के प्रधान मंत्री अमरचंद से मिले। देवकरणजी ने श्री अमरचंद को पक्का विश्वास दिलाते हुए कहा—

'राम धरम हम धारचौ ऐसे
बेद पुरांण वतावै जैसे।
और चूक होई तो डंड कीजे

प्रधान मंत्री अमरचन्द देवकरण जी की वातों से अत्यन्त प्रभावित हुए। इन्होंने देवकरणजी को महाराणा से भी मिलवाया। महाराणा ने इनका अच्छा आदर सत्कार किया और रामस्नेही साधुओं के प्रति राज्य की ओर से सम्मान प्रदर्शित किया। रामस्नेही गृहस्थों को तीन सौ पगड़ी और देवकरण जी को एक दुशाला दिया गया।

पाग तीन सै बगसी सब कूं
एक दूस्यालो देवकरण कूं

श्री देवकरणजी महाराणा की ओर से पुख्ता कागज पत्र लेकर भीलवाड़े लौट आये। जव लोगों ने सुना कि देवकरणजी विजयी होकर लौटे हैं, तो उनका हार्दिक स्वागत किया गया। देवकरणजी की बुद्धिमत्ता की सभी पर छाप पड़ी। देवकरणजी के स्वागत में सभी निन्दक प्रशंसक आ जुटे। इनकी खूब जय जयकार हुई।

---

(१) अ. विशेष विवरण के लिए देखिए—
उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ६६७,
—पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।

आ. ताहां जगतसिंघ सुत राज करंदा
छत्रपत्ती अरसिंघ नरंदा।
—परची

कुहाड़े की सिद्ध शिला

इधर स्वामीजी कुहाड़े विराज रहे थे, यह स्थान श्री स्वामीजी को साधना की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त लगा।

नदी का एकान्त तट, पास ही सघन वट वृक्ष, उसी के नीचे एक सचिक्कण-शिला, वहीं स्वामीजी ने अपना आसन जमाया। यह स्थान स्वामीजी को इतना प्रिय लगा कि जब ये आध्यात्मिक पदों का सृजन कर रहे थे तो इस स्थान का उल्लेख करना भूल न पाये। इस स्थान की मनोहरता की मधुर स्मृति बराबर बनी रही।

कुहाड़े ग्राम की सुन्दरता को आध्यात्मिक रूपक में झलकाते हुए स्वामीजी ने एक पद में गाया है—

पद राग सारंग

गैवी चलो तो कुहाड़ै जाइये।
और दिशा कूं गमन न कीजे, सुरति सहज घर लाईये ॥टेक॥
ऊँचा नगर कैलोरचा मन्दिर, निर्मल भूमि सुहाइये।
चोड़ी शिला बड़ला को छाया, जहां गोविन्द गुण गाईये ॥१॥
गोकुलदास धना के वंशी, जिन कूं हरि पन्थ लाईये।
ठण्ड़ा जल सरिता का अचवन, शीतल ठोर सुपाईये ॥२॥
जन सुन्दर अरु राम सनेही, उन कूं संग लगाईये।
रामचरण सत गुरु के शरणै, सब सन्ता मन भाईये ॥३॥

[पद के अध्यात्म पूरक शब्द:- गैवी=आत्मा। कुहाड़ै=वैराग्य। ऊंचा नगर=सतसंग। कैलयोरा मंदिर=सतसंगी। निर्मल भूमि=शुद्ध हृदय। चोड़ी शिला=सन्तोष। बड़लौ=सतगुरु। छाया=कृपा।]

---

(१) इस पद के विस्तृत अर्थ के लिये देखिये- अणभै वाणी, पृष्ठ ६६७ व ६६८

स्वामीजी कुहाड़े गांव में आनन्दपूर्वक विराज रहे थे। इधर भीलवाड़े के सभी लोग एकत्र हुए और सब ने यह निर्णय किया कि स्वामीजी के पाद पद्मों में पुनः आगमन के लिए करबद्ध प्रार्थना की जाय। यह निर्णय कर सभी लोग कुहाड़े की ओर रवाना हुए। हृदय में दर्शन करने का उल्लास था। इनमें कुछ लोग ऐसे भी थे, जो स्वामीजी की शिकायत करने वालों में से अग्रणी थे; लेकिन, अब वे सब मन ही मन पछता रहे थे।

सब ने आकर श्री रामचरणजी से कहा—भगवन्! हमारे अपराध अक्षम्य हैं। पर, आप तो दया के सागर हैं। हमारे अपराधों को क्षमा करें और भीलवाड़े पधार कर अपने चरण-कमलों की रज से उसे पवित्र करें।

करि प्रणांम सब अरजी कीनी,
सो म्हाराज सबै सुणि लीनी।
हमरा ओगण दूरि निवारो,
भीलाडै म्हाराज पधारो।

स्वामीजी ने फरमाया— मेरे दिल में तो किसी प्रकार का राग द्वेष है ही नहीं। जिसके अन्तःकरण में राग-द्वेष हो, वह फिर साधु ही कैसा!

राग दोष हमरै नही कोई।
राग दोष जो साध न होई॥

यह कहकर स्वामीजी ने सबको वापस जाने को कहा और यह विश्वास दिलाया कि हम भी रमते विचरते आवेंगे। सब लोग दर्शन करके लौट आये। दश दिन बाद महाराज भीलवाड़े पधारे। इनके आगमन के उपलक्ष्य में शहर भर में खूब आनन्द उत्सव मनाया गया।

इस बार स्वामीजी एक पखवाड़े भर ही ठहर पाये। इन पन्द्रह दिनों में नगर भर में राम नाम की खूब रट लगी, वेद शास्त्र व पुराणों की सार स्वरूपा सन्तों की वाणी का मधुर रस उमड़ पड़ा। छोटी बड़ी सभी जातियों के लोग उपदेश श्रवण करने आते थे। स्वामीजी अपने प्रवचनों में राम नाम का मर्म खोल कर रख देते थे। स्वामीजी की भक्ति परिप्लुत

वाणी ने कलियुग में सतयुग का प्रादुर्भाव करके दिखा दिया—

सारो नगर दरसण कौं आवै
पूण छतीसूं म्हमा गावै।
× × × ×
राम नाम का भेद बताया
कलियुग में सतजुग दरसाया।

पर, अब स्वामीजी इस स्थान को छोड़ने का निश्चय कर चुके थे। इधर शाहपुरा वाले स्वामीजी को अपने यहाँ आने का आग्रह कर रहे थे, विशेषतः शाहपुरा के राजा का अधिक आग्रह था, अतः स्वामी रामचरणजी ने भीलवाड़े से शाहपुरा जाने का निश्चय किया।

स्वामीजी के शाहपुरा जाने के बाद भीलवाड़े पर एक दैवी आपत्ति आ गई। दक्षिण से एक दस्युदल आया और उसने भीलवाड़े को तहस नहस कर दिया। लोग उजड़ गये। भावी को कौन टाल सकता है?

अठारा सै पचीसे सावण,
दखणा दल की भई दबावण।
भीलाडो समसत लुट गेयो,
वोहोत वरस लग उजड़ रह्यो।
वारा वाट भये नर नारी,
करमा की गति सब सूं न्यारी।
वावै वीज जिसो फल पावै,
होनहार सो कौन मिटावै।

—परची

अणभै वाणी का प्रकाश

भीलवाड़े में जिन दिनों स्वामीजी विराज रहे थे, उन दिनों

इनकी आध्यात्मिक साधना मनोयोगपूर्वक चल रही थी। रात दिन इनकी रसना राम रसायण का रस लूट रही थी। यहीं पर रहते हुए आपने आत्म साक्षात्कार किया।

रसना से शब्द सरक कर कण्ठ में आया, वहाँ से हृदय व नाभि प्रदेश में। शब्द के प्रकाश से परम सुख प्राप्त हुआ और हृदय का तिमिर विगलित हो गया। उसी शब्द को सुरति 'गिगन गोप' में ले गई। अनाहत नाद के विश्वव्यापी मधुर संगीत के साथ एकता हो गई। 'सुरति शब्द योग' का समाँ बंध गया। इस अनुभूति का अत्यन्त उदात्त, हृदयावर्जक एवं आह्लादक वर्णन श्री स्वामीजी की सभी कृतियों में है, जिसकी विशद समीक्षा आगे के पृष्ठों में की जायगी।

यहीं रहते स्वामीजी की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ मुखरित हो उठीं। 'अणभै वाणी' का अमर स्रोत उमड़ पड़ा। कविता की धारा अविश्रान्त भाव से निःसृत होने लगी। जिस प्रकार किसी गिरिश्रृंग को चीर कर कोई झरना वेग से 'कल कल छल छल' करके फूट पड़ता है, उसी प्रकार लोक भाषा में स्वतः स्फूर्त अमर अनुभूतियाँ कविता का परिधान धारण कर अविरल रूप से वह चलीं। वाणी का यह अमन्द प्रवाह, यह वेगवती विमलधारा, यह शब्द ब्रह्म का प्राकट्य,— अद्भुत है, अनिर्वच है, केवल अनुभव गम्य है। 'द्वादश वर्ष'[1] की यह साधना सफलीभूत हुई।

द्वादश बरस भजन करि छकिया,
ज्यूं मतवाला मद पी बकिया।

१—श्री स्वामी रामचरणजी महाराज भीलवाड़े में संवत् १८१७ में पधारे थे और शाहपुरा १८२६ में। इससे सिद्ध होता है कि भीलवाड़े में १० वर्ष से अधिक नहीं रहे। १२ वर्ष, साधना की परिपक्वता को दिखाने वाला आलंकारिक शब्द मात्र है। किसी सन्त महात्मा की तपस्या के विषय में आज भी यही कहा जाता है कि उसने 'बारह वर्ष धुणीं तपी' अतः १२ वर्ष का लाक्षणिक अर्थ— दीर्घकाल मात्र है।

सो हम देखी परगट जाना,
अणभै वाणी खुल्यौ खजाना।

आराध्य आद्याचार्य की वाणी समुद्र में निरन्तर उद्वेलित होने वाली सहस्र सहस्र लहरों की तरह लहरा उठी।

ज्यौं दरिया की लहर्‍यां आवै,
यूं म्हाराज सबद फुरमावै।
लहर्‍यां आवै पवन चलंता,
सबद फुरै यों भजन करंता।

आचार्य श्री ने लोक प्रचलित विविध छन्दों व राग रागिनियों में मानव कल्याणकारी उद्‌गार प्रकट किये। सरल भाषा, सरल भाव, और सरल शैली के कारण 'अणभै वाणी' लोक मानस में प्रतिष्ठित हो गई।

स्वामी रामचरणजी, उचरे अणभै वैण।
मूल मंत्र भव तरणौ, सुण तहि उपजै चैन॥

इधर श्री कृपारामजी को जब मालूम हुआ कि उनके विरागी शिष्य ने विशाल वाणी का सृजन किया है, तो इन्होंने वाणी-ग्रन्थ देखने के लिये मंगवाया। 'अणभै वाणी' का कृपारामजी ने अवलोकन किया। स्थान स्थान पर इन्हें लगा कि इस वाणी के पीछे महती साधना, अनुभूति की स्वच्छता और भावों की सहज गरिमा है। सतगुरु कृपारामजी को अत्यन्त उल्लास हुआ। योग्य शिष्य को पाकर इनके आनन्द की कोई सीमा नहीं रही।

एक दिन कृपारामजी महाराज ने भरी सभा के बीच यह फरमाया कि इस 'अणभै वाणी' में जो कुछ लिखा है, मेरे लिए तो वह अगम्य है। यह तो किसी ऐसे पुरुष की वाणी है, जिसने आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है और उसी उल्लास में वाणी का सहज उद्‌गार प्रवाहित हो चला है। इन्होंने अपनी असमर्थता स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हुए गर्व भरी वाणी में कहा—

इन वचनों के बीच में, मेरी तो गम नांय।
बोले किरपारामजी, भरी सभा के मांय।

गुरु द्वारा अपने शिष्य को इससे बढ़कर सफलता का और कौन सा प्रमाण पत्र दिया जा सकता है! यदि परीक्षक ही यह कह बैठे कि विद्यार्थी मेरे से अधिक योग्य है; फिर उस विद्यार्थी की सफलता में कमी ही क्या! गुरु कृपारामजी ने 'अणभै वाणी' की शुद्ध हृदय और मुक्त कण्ठ से भूरि भूरि प्रशंसा की।

संसार-सागर से पार उतरने के लिए यह वाणी नौका रूप है -

अद्वैत वचन अणभो रस भरिया,
जामैं बरणी सारी किरिया।
अंग विभाग बनाये सारा,
ये जिहाज उतरै भव पारा।

शाहपुरा पदार्पण

रामचरण म्हाराज, अठारा सै छाईस में।
भगति बधारण काज, साहिपुरो पावन करन ॥

श्री रामचरणजी महाराज सं० १८२६ में शाहपुरा पधारे। यही स्थान उनकी उत्तर तपस्या की गरिमामयी स्थली है। स्वामीजी को शाहपुरा पधारने की प्रार्थना शाहपुरा नरेश रणसिंहजी[1] ने एक सरदार को भेजकर करवाई थी—

---

(१) ये (राजा रणसिंह) अपने दादा के स्वर्गवासी होने पर संवत् १८२५ की पौष बदि १३ गुरुवार (ई० सन् १७६९ ता० ५ जनवरी) को गद्दी पर बैठे थे। इनके समय में भी शाहपुरा की तरफ मराठों की चढ़ाइयां होती रहती थीं। परन्तु इन्होंने पारोली के स्थान पर उनको हटाकर भगा दिया।

—राजपूताने का इतिहास-पृष्ठ ५६०; श्री जगदीशसिंह गहलोत।

राजेसुर रणसिंघ पेसि सिरदार पठाऐ ।
अरज करि कर जोड़ि साहिपुरौ पावन कीजे ।
राजांजी कै भाव क्रिपा करि दरसण दीजे ।

श्री स्वामीजी के चरण स्पर्श से शाहपुरा तीर्थ बन गया। दूर दूर के लोग दर्शन करने के लिए आने लगे। स्वामीजी के आगमन से शाहपुरा नरेश अत्यन्त प्रसन्न हुए। राजा ने स्वामीजी का खूब आदर सत्कार किया और इनके आगमन से प्रसन्नता प्रकट की—

स्वामी रामचरण, साहिपुरै रमते आये ।
भूपति राजी भया, किया उछव पधराये ॥
साहिपुरा तीरथ भया, परसिध देस बिदेस ।
राजावत रणसिंघ वधू धारी भक्ति विसेस ॥

श्री स्वामीजी के प्रति राजा रणसिंह जी की रानी राजावतजी के हृदय में असीम श्रद्धा थी। कहते हैं, इन्होंने स्वामीजी के निवास के लिए छतरी बनवाने की इच्छा प्रकट की। उस समय यह समस्या सामने आई कि छतरी तो किसी मृतक पर ही बनवाई जाती है। यह जानकर रानी जी ने एक रास्ता निकाला और अपनी अंगुली से नाखून काट कर दे दिया, उस पर छतरी का निर्माण किया गया। छतरी का यह निर्माण रानी जी के हृदय की असीम भक्ति का प्रमाण है।

राजा रणसिंहजी के भीमसिंहजी[1] आदि पांच पुत्र थे, ये भी स्वामीजी के मनसा, वाचा, कर्मणा भक्त थे।

---

[१] ये (राजा भीमसिंह) अपने पिता रणसिंह की मृत्यु पर सं० १८३१ ज्येष्ठ बदि ५ सोमवार (ई० सन् १७७४ ता० ३० मई) को शाहपुरे के स्वामी हुए। इनका जन्म सं० १८०८ की भादों बदि ३० शनिवार (ई० सन् १७५१ ता० १० अगस्त) को हुआ था। इन्होंने १४ वर्ष की आयु में अपने पिता रणसिंह को हत्याकारी के हाथ से बचाया था।

भीमसिंहजी आदि दे, नृप के सुत भये पांच ।
स्वामी रामचरण के, सेवग मनसा वाच ।।

रानी साहिबा के छतरी बनाने के पूर्व स्वामी रामचरणजी महाराज राजाओं के श्मसान में एक छतरी में रहते थे और वहीं रहकर राम भजन का उपदेश देते थे। संसार के सारे प्रपंच व झगड़े से दूर रामचरणजी महाराज आत्म-चिन्तन में लीन रहते थे। जिज्ञासु भक्तों व दर्शनार्थियों की भीड़ रहती थी और आपकी वाणी निरन्तर उपदेश की अमृत वर्षा करती थी। शाहपुरा के लोगों में नूतन प्राण संचार हो गया था। स्वामीजी के निवास छतरी के चारों ओर 'कड़व के टाटे' बाँध दिये गये थे।[१] वहीं पर अखण्ड आसन लगा रहता था। स्वामीजी की दृष्टि में राजा, रंक का कोई भेद नहीं था। सभी समभाव से दर्शन से लाभान्वित होते थे।

स्वामीजी के गुरु महाराज कृपारामजी का तिरोभाव १८३२ में हुआ। यह संवाद जब शाहपुरा पहुंचा, तो स्वामीजी के बिना कहे ही अनेक श्रद्धालु, जिज्ञासु भक्त दांतड़े पहुंचे और उन्होंने गुरू महाराज श्री कृपारामजी की तेरहवीं के दिन दूर दूर के साधु सन्तों को बुलाया और रसोई की सुन्दर व्यवस्था की। उसके बाद स्वामीजी दांतड़े से शाहपुरा लौट आये।

स्वामीजी के सामने शाहपुरा में तीन राजाओं का शासन रहा और

इन्होंने राज्य का प्रबन्ध बड़ी बुद्धिमानी व दृढ़ता से किया। २० वर्ष तक राज्य करके सं० १८५३ (ई० सन् १७९६) में ये परलोक सिधारे। इनके पीछे इनका पुत्र अमरसिंह वारिस हुए।

—राजपूताने का इतिहास, पृष्ठ ५६०-५६१,
श्री जगदीशसिंह गहलोत

[१]　छतरिया मैं राजा का खेतर।
राम भजन करै निरन्तर,
जाकै बंध्या कड़व का टाटा।
और नहीं कोई झगड़ा झाँटा ।।

तीनों के हृदय में स्वामीजी के प्रति गहरी भक्ति भावना थी। स्वामीजी का राजकीय सम्मान भी बहुत था, यद्यपि स्वामीजी सम्मान व अपमान को एक सा ही समझते थे। राजा रणसिंह, राजा भीमसिंह तथा इनके बाद राजा (बाद में महाराजाधिराज) अमरसिंह[1] इन तीनों के शासनकाल में स्वामी रामचरणजी को जो राजकीय सम्मान मिला, वह सम्मान आजतक उसी प्रकार इस सम्प्रदाय के प्रति है।

रामसनेह्यां कूं नृप निरखै।
निरख निरख मन मांही हरखै॥

ज्यूं उडुगन में चन्दा सोहै

इसे थाट में जन निर्मोहे
ज्यूं उडुगन में चन्दा सोहै।

रामस्नेही साधुओं और श्रोतृ मण्डली के बीच जब स्वामीजी विराजते थे तो ऐसा लगता था जैसे मुनि शुकदेव ऋषियों के बीच विराजते हों, जैसे तारक मण्डली के बीच चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो।

स्वामीजी धरती की तरह धैर्यशाली थे। गगन की तरह गहन थे। सूर्य के समान तेजस्वी थे। गिरि की तरह अडिग, पवन की तरह अलिप्त, चन्द्रमा की तरह शीतल और सन्त नामदेव व कबीर की तरह आत्मज्ञानी थे। लोक परलोक की आशा छोड़कर एक ही तत्व में लीन थे। असत्य का ये हमेशा तिरस्कार करने वाले थे। राजा, रंक में एक ही भाव था, भूल करके भी किसी के प्रति पराये का भाव नहीं था। अहर्निश रामनाम की

---

(१) ये राजा भीमसिंह जी के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८४४ पौष सुदि १० शुक्रवार (ई० सन् १७८८ ता० १८ जनवरी) को हुआ और सं० १८५३ वैशाख सुदि १३ गुरुवार (ई० सन् १७९६ ता० १९ मई) को ९ वर्ष की आयु में ही शाहपुरा के स्वामी हुए।

—राजपूताने का इतिहास-पृष्ठ ५६१; श्री जगदीशसिंह गहलोत।

गुंजार होती थी।[1]

लोगों की दृष्टि में स्वामी रामचरणजी साक्षात् निर्गुण ब्रह्म के रूप राम थे। इस कविता में श्रद्धालु जनता के हृदय के भाव सही रूप में व्यक्त हुए हैं—

जागत सोवत राम उठत बैठत राम,
बोलत राम राम विराम है।
भीतर बाहर राम दूरि रामहि निकटि राम,
सरबंग सदीव राम राम श्रण ठाम है।
राम राम नित नेम राम राम प्रीति प्रेम,
राम राम ग्यान ध्यांन और नहि काम है।
ऐसे राम रति चित रहै एक रस नित,
ताते सब कहै स्वामी राम चरण राम है।

वेद वेदांग, पुराण, शास्त्र सब का सार राम नाम है। राम का नाम अनन्त शास्त्रों के मन्थन से निकाला हुआ नवनीत है। और जितनी बातें हैं, वे तक्र की तरह हैं। स्वामीजी ने राम के मर्म को खुलासा करके लोगों को समझाया, जिसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। जिसने भी राम शब्द

---

(१) धीरजवान धरा ज्यूं कहिये। गहरापणों गगन ज्युं लहिए॥
तेज प्रकाश सूर ज्यूं दीसे। सत मांनी ज्यों विश्वा बीसै॥
गिरि ज्यूं अडिग पवन ज्यूं अलिपति। शीतल चंद्र दर्श है यूं गति॥
नाम कबीरा जिसा अजागर। अनंत जनां ज्यूं सुख का सागर॥
लोक प्रलोक आश ज्यां त्यागी। एक हि चरण कमल अनुरागी॥
नाना सुख नहि नेक निहारै। आपणो ह्वाल सदा उर धारै॥
झूठा की तस्कार सदा ही। अपणा पर का भेद न कोई॥
राजा रंक एक सा जाके। भूल न कबहू द्वितिया ताके॥
—अणभै वाणी - पृ० १०८०

परमपद प्राप्त श्रद्धेय आचार्य श्री निर्भयरामजी महाराज

को धारण किया उसका जीवन धन्य हो गया ।[1]

यह निर्गुण भक्ति का उच्चारण ही भ्रम रहित और संसार के उद्धार का मार्ग है ।[2] यह तो अथाह है, इसका पार कौन पा सकता है ।[3]

जोत में जोत समाई

मानव जीवन क्षण भंगुर है, काल की गति दुर्निवार है । जो पैदा होता है, उसे मरना ही पड़ता है । बड़े-बड़े राजे-महाराजे, योगी-तपी, देव-दानव, कीट-पतंग, मौत के मुँह में चले जाते हैं । पर, जिन्होंने अपना शरीर विश्व-मंगल के लिए समर्पित कर दिया है, जो विदेह होकर जीवनन्मुक्त की तरह अनासक्त भाव से रहते हैं; उनके स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी उनकी कीर्त्ति अमर रहती है । महाराज रामचरणजी भी उन्हीं अमर पुरुषों में हैं, जिनकी कीर्त्ति को जरा मरण का भय नहीं है । इस कलियुग में राम भक्ति का प्रचार कर इन्होंने कलियुग को सतयुग में बदलने की निरन्तर चेष्टा की । धन्य है, आपका जीवन !

इहिं कारज पर तन कूं धारयो ।
सो करि कारज ता तन कूं डारयो ॥
अरु जोलूं रहे शरीर कै मांही ।
तोलूं कदे आसकति नांही ॥
नित्य विदेह देह सूं न्यारा ।
राम रूप निति राम मझारा ॥

---

(१) धाग धाग करि यूं सुलझावै । सब कूं राम नाम पकड़ावै ॥
आप अचाही कछू न चाहैं । हद बेहद का भेद बतावै ॥

(२) निर्गुण भक्ती नाम उचारण । भर्म रहित भव सागर त्यारण ॥

(३) पार कूंण विधि पाईये । जगन्नाथ नहि थाग ॥
जो जो जन को संग करै । ताही को बड़ भाग ॥
—अणभै वाणी पृ० १०७६

ऐसे पुज्य जंन जग मांही ।
ताकै तुल्य दूसरो नांही ॥
सो भी तन कूं गिण्यो न साचो ।
तजे तास कूं जांण रु काचो ॥

संवत् १८५५ वैशाख कृष्ण ५ गुरुवार का दिन ! रामजंन जी आदि सभी प्रमुख शिष्य करबद्ध खड़े थे। श्री नवलरामजी की पुत्री स्वरूपा बाई, जो बड़ी निष्ठामयी व स्वामीजी की एक मात्र शिष्या थी, वह भी हाथ जोड़े खड़ी थी। हजारों भक्त, जिज्ञासु व दर्शनार्थी उपस्थित थे। स्वामीजी के मुख से राम नाम उच्चरित हो रहा था। दिन के पिछले पहर में इन्होंने मन्द्रध्वनि से राम के तारक मंत्र का उच्चारण कर अपने पंच भौतिक शरीर को छोड़ दिया।[1] जिस प्रकार नीर से नीर मिलकर एक हो जाता है, ज्योति में ज्योति मिल जाती है; उसी प्रकार स्वामीजी भी अद्वय ब्रह्म में मिलकर एकाकार हो गये। इनका भौतिक शरीर तो चला गया; पर, ब्रह्म वाणी रूप आपका जो यश: शरीर है, वह अजर और अमर है, वहाँ काल का प्रवेश नहीं।

आपके परम पद प्राप्ति का समाचार दूर दूर तक विद्युत् वेग सा फैल गया। चारों ओर शोक का महासागर उमड़ पड़ा। शिष्य मण्डली एक बार तो हाहाकार कर उठी; पर, स्वामीजी ने जो कुछ लोगों को सिखाया था, उसी का सहारा लेकर राम नाम का मंत्रोच्चार करने लगी। स्वामीजी का विमान सजाया गया और आपकी अन्तिम क्रिया अत्यन्त राजसी वैभव तथा सम्मान के साथ की गई। श्रद्धालुओं ने संसार की रीति के अनुसार

---

(१) सम्वत अठारा सै सही, जांन पचावन और ।
वैसाख वदी पांचै तिथी, ब्रस्पति छतरयां ठोर ॥
दिवस पहर पिछलो रह्यो, कियो कूंच तींवार ।

चलावा किया ।[1]

इस प्रकार राम के एक परम भक्त, साक्षात् रामस्वरूप श्री राम-चरणजी महाराज ने इहलीला का संवरण किया । जीवन-नाटक का पटाक्षेप हो गया ।

स्वामीजी ने 'अणभै वाणी' के रूप में जो ज्योति जगाई, वह पथ भ्रान्त मानव को हमेशा ही रास्ता दिखाती रहेगी ।

आपके २२५ शिष्य थे, जिनमें से १२ शिष्य प्रधान थे । इन्होंने भी दूर दूर तक राम नाम के पावन मंत्र का प्रचार किया । सदाचारी व योग्य शिष्यों की निष्ठा, भक्ति व वैराग्य के कारण लोग आकृष्ट हुए और रामस्नेही सम्प्रदाय का दूर दूर तक प्रभाव बढ़ चला ।

स्वामीजी ने अपनी वाणी में एक स्थान पर फरमाया है कि राम नाम से इतना प्रेम हो, इतना प्रगाढ़ व अनन्य प्रेम हो कि शरीर के छूटने पर भी वह प्रेम कम न हो—

रामनाम सूं प्रीति कर, तन मन सूं ज समेत ।
प्रांण गया छूटै नहीं, ज्यों बेलि वृक्ष को हेत ।।

ऐसे ही प्रेम का एक ज्वलन्त उदाहरण हमारे आराध्य रामस्नेही सम्प्रदाय के मूलाचार्य ब्रह्मनिष्ठ व निर्विकल्प समाधिस्थ स्वामी श्री रामचरण जी महाराज ने संसार के सामने रखा । उनकी वाणी संसार सागर के किनारे ज्योतिः स्तम्भ की तरह है, वह वाणी मृत्युञ्जयी है, काल-सागर की प्रलय-प्लाविनी लहरों को ललकार रही है; इधर उधर भटकती हुई मानवता आज भी प्रेम का, एकता का, विश्वास का, अहिंसा का, उदारता का व विशालता का पावन पाठ पढ़ सकती है । यह मार्ग स्वामी रामचरणजी का है, कबीर का है, दादू का है, गांधी का है, विनोबा का है, विश्व के सभी

(१) ये दिवांण की छबि अति जांनो । सुर बिवांण सूं अधिके मांनो ।

× × × ×

धन धन ध्वनी अखंडित होई । लोग हजारूं देखै सोई ।।
आलिम सब दर्शण कूं आवै । कर जोड़ै अरु शीश निवावै ।

सन्तों का है। युद्ध की भयंकर विभीषिका से मानवता को मुक्त करने का यही मार्ग है; और कोई नहीं।

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

सन्तों की वाणी पुकार रही है, चेता रही है। उठो, जागो और अपना प्राप्य भाग प्राप्त करो— 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' अमृत की धारा प्रवाहित है। सन्त वाणी का अवगाहन करो; वहाँ मृत्यु का भय नहीं, द्वैत नहीं, दुःख नहीं, ताप नहीं; वहाँ शान्ति है, सुख है और सच्चिदानन्द है।

गुरु-प्रणालिका

गुरु परनाली क्या पूछीये, एह लोका विवहार ।
फकर होय सो फकर कूं, पूछे मोखदुवार ॥
—सन्तदासजी

स्वामी सन्तदासजी महाराज ने गुरु-प्रणालिका को केवल लोक व्यवहार मात्र बताया है । यह बात एक दम सही है; फिर भी लोक-जिज्ञासा बराबर बनी रहती है कि यह आनन्द का स्रोत जो बह रहा है, उसका मूल उत्स क्या है, वह धारा कहाँ कहाँ रुकती, मोड़ खाती, कहीं धीमी कहीं तेज गति से किस प्रकार बही है । आम का रसास्वादन करने के साथ कभी कभी आम्र वृक्ष के प्रति जिज्ञासा होना कोई अस्वाभाविक नहीं ।

रामस्नेही गुरु-प्रणालिका में रामानुजाचार्यजी महाराज का नाम सर्वोपरि है । उसी परम्परा में स्वामी रामानन्दजी का प्रादुर्भाव होता है । जिनके द्वारा उत्तरी भारत में राम भक्ति का प्रबल प्रवाह बहने लगता है । श्री रामानुजाचार्य के कितनी पद्धति परत्व श्री रामानन्दजी का प्राकट्य होता है, यह विषय विद्वानों के लिए अभी निर्णीत नहीं है ।

रामार्चन पद्धति में रामानन्दजी ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया है[1] —

'रामचंद्र, सीता, विष्वक्सेन, शठकोप स्वामी, श्री नाथ मुनि, पुण्डरीकाक्ष आचार्य, राममिश्र, यामुनाचार्य, महापूर्णाचार्य, श्री रामानुज, श्री कूरेश, माधवाचार्य, वोपदेवाचार्य, देवाधिप, पुरुषोत्तम, गंगाधर, रामेश्वर, द्वारानन्द, देवानन्द, श्रीयानन्द, हरियानन्द, राघवानन्द, रामानन्द ।

---

(१) अ. रामार्चन पद्धति; श्लोक ३-५ ।
आ. 'हिन्दुत्व' में श्री रामदास गौड़ ने प्रथम दो के नाम नारायण व लक्ष्मी लिखे हैं; पृष्ठ ६४३ ।

इस सच्ची परम्परा के अनुसार श्री रामानुज के १४वीं पीढ़ी में रामानन्दजी का आविर्भाव हुआ।[१]

रामानन्द सम्प्रदाय के आधुनिक विद्वानों— स्वामी रघुवराचार्य तथा भगवदाचार्य के अनुसार अग्रदासजी कृत निम्न परम्परा है—

राम, सीता, हनुमान, ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, व्यास, शुक, पुरुषोत्तम, गंगाधर, सद रामेश्वर, द्वारानन्द, देवानन्द, श्यामानन्द, श्रुतानन्द, चिदानन्द, पूर्णानन्द श्रियानन्द, हर्षानन्द, राघवानन्द, रामानन्द।

खेद है कि इस परम्परा को प्रमाणित सिद्ध करने वाली सामग्री का आज तक अभाव है।[२]

श्री रामानुजाचार्य जी के २३ पद्धति परत्व रामानंदजी का आविर्भाव हुआ है।[३] यह गुरु प्रणालिका यहाँ उद्धृत की जा रही है,[४] जिससे जिज्ञासु विद्वान् श्री रामानंद के काल निर्धारण में नवीन तथ्य प्राप्त कर सकें।

१. ब्रह्म २. मूल ३. प्रकृति ४. ज्योति ५. महत्तत्व ६. नारायण ७ 'लक्ष्मी ८. विष्वक् सेन ९. इच्छा स्वरूप १०. उजास मुनि ११. ज्योति मुनि १२. लोक मुनि १३. प्रकट मुनि १४. गंभीर मुनि १५. जयराज मुनि १६. तुलसी मुनि १७. वृष मुनि १८. चंद्र मुनि १९. महा मुनि २०. यामुनिक मुनि २१. हरणात मुनि २२. पुण्डरीकाक्ष २३. परलोक केशव २४. वोपदेव २५. रामेश्वरजी २६. महापूर्ण मुनि २७. विद्याधर २८. सूर्य मुनि २९. जिज्ञासु मुनि ३०. रामानुजजी ३१. सुरत प्रकाश ३२. सुरतपियाजी ३३. सुरत त्रियाजी ३४. सुरत धामजी ३५. शिष्ट गोपालजी ३६. पद्माचार्यजी ३७. देवाचार्यजी ३८. वंशीधराचार्य ३९. पुरुषोत्तम-आचार्य ४०. नरोत्तमाचार्यजी ४१. गंगाधराचार्यजी ४२. सदाचार्यजी ४३. रामे-

---

(१) भागवत सम्प्रदाय; श्री बलदेव उपाध्याय; पृष्ठ २४९।

(२) हिन्दी साहित्य कोश; पृ० ६४८;

व्याख्याकार- डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव

(३) अणभै वाणी; प्रस्तावना; पृष्ठ १

(४) सन्त वाणी पुस्तकालय, बीकानेर के हस्त लिखित पत्र के आधार पर। यही रामस्नेही मान्यता है।

श्वराचार्यजी ४४. देवरानन्दजी ४५. द्वारानन्दजी ४६. देवानन्दजी ४७. श्यामानन्दजी ४८. सुरतानन्दजी ४६. दयानन्दजी ५०. शुचितानन्दजी ५१. श्रियानन्दजी ५२. हर्षानन्दजी ५३. राघवानन्दजी ५४. रामानन्दजी ५५. अनन्तानन्दजी ५६. कृष्ण पयहारी ५७. अग्रदासजी ५८. नारायणदासजी ५६. प्रेमभूराजी ६०. रामदासजी ६१. छोटा नारायणदासजी ६२. सन्तदासजी ६३. कृपारामजी ६४. रामचरणजी

इसी गुरु प्रणालिका के आधार पर अणभै वाणी की प्रस्तावना में लिखा गया है— 'श्री रामानुजाचार्य से २३ पद्धति परत्व श्री रामानन्द स्वामी सम्प्रदाय मूल है। तच्छिष्य श्री स्वामी अग्रदासजी हुए [इन्हीं महापुरुष के नाम से इस सम्प्रदाय का द्वारा 'अग्रदासजी का द्वारा' कहलाता है।] उनसे पंचम पद्धति परत्व श्री स्वामी सन्तदासजी महाराज हैं।'

नाभादासजी ने स्वामी रामानन्दजी के १२ शिष्यों के नाम व काम का विशेष वर्णन किया है। इनमें श्री अनन्तानन्दजी अपनी एकान्त निष्ठा व विमल प्रेम के कारण विख्यात थे। इनके ७ शिष्यों में कृष्णदासजी पयहारी मुख्य थे। वैरागी सम्प्रदाय के इतिहास में इनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। आपने जयपुर के पास गिरि शृंखला के बीच 'गलता' में रामानन्दी सम्प्रदाय की सम्माननीय गद्दी की स्थापना की।

रामानुज सम्प्रदाय में जो महत्व 'तोताद्रि' को प्राप्त है, वही महत्व वैरागी सम्प्रदाय में गलता को प्राप्त है। इसी से यह 'उत्तर तोताद्रि' के नाम से विख्यात है।[1]

पयहारीजी के शिष्यों में अग्रदासजी महाराज की बहुत ख्याति है। अग्रदासजी की ही शिष्य परम्परा में श्री स्वामी सन्तदास जी हुए हैं, जिन्होंने गूदड़ पंथ चलाया था। इस सम्प्रदाय के भी अनेक स्थान राजस्थान में हैं। इनकी दो हजार वाणी साखियों व शब्दों में है। इनके शिष्य श्री कृपारामजी तो कृपा के सागर ही थे। इन्हीं कृपारामजी के शिष्य श्री रामचरणजी महाराज ने रामस्नेही मत का प्रवर्तन किया।

---

(१) भागवत सम्प्रदाय; श्री बलदेव उपाध्याय; पृष्ठ २७६

शिष्य-समुदाय

स्वामी रामचरणजी महाराज के व्यक्तित्व में जादू का सा प्रभाव था। दूर-दूर के जिज्ञासु व मुमुक्षु जन खिंचे आते थे और राम भक्ति में लीन हो जाते थे। स्वामीजी के शिष्यों की गणना असंभव सी है। यहाँ थोड़े से शिष्यों की नामावली प्रस्तुत की जा रही है—

म० भक्तरामजी	म० वल्लभरामजी	म० फतैरामजी
,, रामसेवगजी	,, रामप्रतापजी	,, चेतनदासजी
,, कान्हड़दासजी	,, द्वारकादासजी	,, भगवानदासजी
,, रामजंनजी	,, नरोत्तमदासजी	,, देवादासजी
,, मुरलीरामजी	,, तुलछीदासजी	,, मुकन्ददासजी
,, उद्धवदासजी	,, दूल्हेरामजी	,, हरिभक्तजी
,, गंगादासजी	,, रामसुखजी	,, अलखरामजी
,, रूपदासजी ३	,, शिवरामदासजी	,, उम्मेदरामजी
,, श्यामदासजी २	,, कृष्णदासजी	,, रामदासजी
,, कान्हड़दासजी	,, मनसारामजी	,, सेवादासजी
,, रूपरामजी २	,, सूरतरामजी	,, चत्रदासजी ४
,, किशोरदासजी	,, बालकरामजी	,, नहचलरामजी
,, रामकिशोरजी	,, अचलदासजी २	,, जीवणदासजी
,, रत्नदासजी	,, काशीरामजी	,, मयारामजी ३
,, खेमदासजी	,, वैरागीरामजी	,, रामवनजी २
,, रामनिवासजी	,, इच्छारामजी	,, गोविन्दरामजी ४
,, रामसेवगजी	,, माधवदासजी	,, नारायणदासजी
,, रामदासजी ३	,, शिवरामदासजी	,, छीतमदासजी
,, बिहारीदासजी	,, किशोरदासजी	,, रामप्रसादजी
,, जगरामदासजी ३	,, रामसुखजी	,, उदयरामजी
,, कुशालीरामजी ३	,, नन्दरामजी ३	,, दयारामजी ५
,, तोलारामजी	,, समरथरामजी	,, आत्मारामजी ४

,, जगन्नाथजी	,, मालूमदासजी	,, निरमलदासजी
,, मोहनदासजी	,, रामानन्दजी	,, मनोरथदासजी
,, रम्यारामजी	,, मुक्तरामजी २	,, रामस्वरूपजी
,, रामकीर्तिजी	,, ब्रह्मदासजी	,, मंगलदासजी
,, मगनीरामजी	,, रमतारामजी	,, विश्वासीरामजी
,, चोकनरामजी	,, विनोदीरामजी	,, त्यागीरामजी
,, जैतरामजी २	,, जसरामजी २	,, रामलालजी २
,, रतोरामजी	,, रामकुस्यालजी	,, सुखदेवजी
,, गुणरामजी २	,, मनोहरदासजी	,, कल्याणदासजी ४
,, अगरदासजी	,, करुणारामजी	,, गंगारामजी २
,, चरणदासजी २	,, मनोहरदासजी २	,, टीकमदासजी
,, गुलाबदासजी २	,, कीरतरामजी	,, निर्गुणदासजी
,, भीखमदासजी	,, गंभीरदासजी	,, परतीतरामजी
,, रामविनोदजी	,, वकसीरामजी	,, हेमदासजी
,, हीरादासजी	,, नरहरिदासजी	,, फकीरदासजी
,, भाऊदासजी	,, हरिजनदासजी	,, राममालुमजी
,, समोखीरामजी	,, सरूपरामजी	,, विजैरामजी
,, साधुरामजी	,, गरीबदासजी	,, रामरूपजी
,, गुलाबदासजी	,, जुगतरामजी	,, रामदासजी
,, रामकिसोरजी	,, रामगुमानजी	,, रूपरामजी

विशेष:— (१) नामों के आगे जो अंक लगे हैं, वे एक ही नाम वाले शिष्यों की संख्या के सूचक हैं।

(२) इनमें से महाराज श्री रामजनजी, दूल्हेरामजी व चत्रदास जी गादीपति हुए हैं।

(३) इनके अतिरिक्त श्री पोहकरदासजी व नवलरामजी की भी शिष्यों में गणना की जाती है।

(४) 'श्री पंचरत्न स्तोत्र' ग्रन्थ में श्री मनोहरदासजी का नाम छूट गया है।

(५) स्वामी बालकरामजी, उद्धवदासजी व रामदासजी को 'काकाजी' पद प्राप्त है।

(६) 'श्री पंचरत्न स्तोत्र' में उम्मेदरामजी के साथ २ की संख्या लिखी है, जो श्यामदासजी के साथ होनी चाहिए। महाराज रूपदासजी का नाम रामस्वरूपजी तथा रूपरामजी का नाम रामरूपजी छपा है, जो अशुद्ध है।

(७) किंवदन्ती के अनुसार २२५ शिष्य माने जाते हैं; पर, अद्यावधि सम्पूर्ण नामावली उपलब्ध नहीं हो सकी है।

(८) उक्त नामावली ही शाहपुरा के श्री रामनिवास धाम की बारहद्वारी तथा भीलवाड़ा रामद्वारे की भित्ति पर अंकित है।

द्वादश प्रमुख शिष्य

श्री रामचरणजी महाराज के हजारों शिष्यों में १२ शिष्यों का प्रमुख स्थान है। रामस्नेही सम्प्रदाय में ये द्वादश शिष्य सर्वोपरि वन्दनीय हैं। स्वामी रामजनजी महाराज ने भी इन द्वादश शिष्यों का मुक्त हृदय से यशःस्तवन किया है।

रथ कल्यों धर्म कलिजुग महीं सो रामचरण
भलि काढियो।
लै सामगरी सब साथ भगति हलमों करी भारी।
बलभराम बलवंत रामसेवक तपधारी।
रामप्रताप पुनीत दास चेतन सुख देही।
कान्हड़ करणीवान द्वारकादास विदेही।
भगवानदास भजनीक राम ही जन अधिकारी।

देवादास दिल शुद्ध जान मुरली धन धारी ।
तुलसी तत परबीन नवल पुसती धरण्यारा ।
ये द्वादश शिश साथ कल्यो रथ काढणहारा ।
अरुण जसो आनंद करी धरम धजा यश चाढियो ।
रथ कल्यो धर्म कलिजुग महीं सो रामचरण
भलि काढियो ॥

—राम रसाम्बुधि, भाग २; पृष्ठ १२३

उपर्युक्त कविता के अनुसार द्वादश शिष्यों के नाम निम्न प्रकार से हैं— (१) श्री वल्लभरामजी (२) श्री रामसेवकजी (३) श्री रामप्रतापजी (४) श्री चेतनदासजी (५) श्री कान्हड़दासजी (६) श्री द्वारकादासजी (७) श्री भगवानदासजी (८) श्री रामजनजी (९) श्री देवादासजी (१०) श्री मुरलीरामजी (११) श्री तुलसीदासजी (१२) श्री नवलरामजी ।

इनका यथोपलब्ध परिचय 'अणभै वाणी' संग्रह चतुर्थ खण्ड में आगे दिया जायगा ।

सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा

स्वामी रामचरणजी महाराज द्वारा रामस्नेही सम्प्रदाय की सुदृढ़ स्थापना हुई । इनके बाद भी इस सम्प्रदाय के जो जो आचार्य पदासीन हुए, वे एक एक से एक बढ़ कर त्यागी, तपस्वी, वीतराग, विदेही, कार्य संचालन निष्णात और प्रभावशाली थे; जिससे इस सम्प्रदाय की कीर्तिपताका चतुर्दिक् फहराती रही और इस सम्प्रदाय की मर्यादा व विशेषता अक्षुण्ण रही ।

आचार्य परम्परा निम्न प्रकार है—

आद्याचार्य श्री रामचरणजी महाराज

जन्म— सं० १७७६ माघ सुदि १४ शनिवार ।

जन्म स्थान— सोढ़ा । जाति—वैश्य [बीजा वर्गीय] नख— कापड़या ।

दीक्षा— सं० १८०८ भादवा सुदि ५ । दीक्षा स्थान— दांतड़ा ।

लीला विस्तार— सं० १८५५ वैशाख वदि ५ [शाहपुरा में]

[१] श्री महाराज रामजनजी—

जन्म— सं० १७६५ । जन्म स्थान— सिरस्यो । जाति— वैश्य [माहेश्वरी–लड़ा] । दीक्षा— सं० १८२४ । गादी— सं० १८५५ लीला विस्तार— सं० १८६७ आषाढ़ वदि ११ बुधवार ।

[२] श्री महाराज दूल्हैरामजी —

जन्म— सं० १८१३ जेठ सुदि ११ । जन्म स्थान— जयपुर । जाति— वैश्य-खंडेलवाल । वैराग्य धारण— सं० १८३३ । सं० १८३७ में गुजरात प्रवास । लीला विस्तार— सं० १८८१ आषाढ़ वदि १० मंगलवार ।

[३] श्री महाराज चत्रदासजी

जन्म-सं० १८०६ । जाति-ब्राह्मण पुरोहित । जन्म स्थान-आलोरी । दीक्षा-सं० १८२१ । लीला विस्तार-सं० १८८७ माघ वदी अमावस्या ।

[४] श्री महाराज नारायण दासजी

जन्म सं०-१८५३ । जन्म स्थान-भूंडैल । दीक्षा-सं० १८६० । लीला विस्तार-सं० १६०५ ।

[५] श्री महाराज हरिदासजी

जन्म-सं० १८६० । जन्म स्थान-आगूचो (मेवाड़) दीक्षा-सं. १८७२ । लीला विस्तार-सं० १६२१ चैत सुदी ८ ।

[६] श्री महाराज हिम्मतरामजी

जन्म-सं० १८८३ आसोज वदि १४ । जन्म स्थान-धानणी (सीकर) जाति- मारू चारण । दीक्षा-सं० १६०७ । लीला विस्तार सं० १६४७ चैत्र सुदी ६ ।

[७] श्री महाराज दिलशुद्ध रामजी

जन्म-सं०-१६१० । जन्म स्थान-अभयपुर (मेवाड़) दीक्षा-सं. १६१५ परम धाम-सं०१६५३ आसोज सुदी १२ रविवार ।

[८] श्री महाराज धर्मदासजी

जन्म-सं० १९०६ कार्तिक बदि १३। जन्म स्थान- पलेई। दीक्षा-सं० १९१८। परम धाम-सं० १९५४ कार्तिक सुदि ५ शनिवार।

[९] **श्री महाराज दयारामजी**

जन्म-सं० १९१८ जन्म स्थान-सांगर्यी (मेवाड़) दीक्षा-सं० १९२९। परम धाम- सं० १९६२ आषाढ़ सुदि ४ गुरुवार।

[१०] **श्री महाराज जगराम दासजी**

जन्म-सं० १९०७ भादवा सुदि ४। जन्म स्थान-इन्दराणी (बालोतरा)। जाति-राजपूत। दीक्षा-सं० १९३४ फाल्गुन बदि ७। पदासीन-सं० १९६२ काति बदि ५। परम धाम-सं० १९६७ चैत्र सुदी १३।

[११] **श्री महाराज निर्भय रामजी**

जन्म सं० १९४३ चैत्र सुदि १३। जन्म स्थान-वररामो (मालवा) जाति-चारण। दीक्षा- सं० १९५५ चैत्र बदि ५। पदासीन-सं० १९६७ वैशाख बदि १०। परम धाम-सं२०१२ श्रावण सुदि १३ सोमवार।

इस समय बारहवें आचार्य, श्री महाराज दर्शनरामजी पदारूढ़ हैं। आपका जन्म सं० १९५४ में गढवाड़ा (मेवाड़) में हुआ है। आपकी दीक्षा सं० १९६१ आषाढ़ सुदि ११ उदयपुर में हुई। आप सं० २०१२ कार्तिक बदि ५ शुक्रवार को आचार्य पद पर आरूढ़ हुए। आप उदार, सौम्य, शान्त व निःस्पृह हैं। आपमें किसी प्रकार की पद-लिप्सा नहीं है। आप इस आचार्य स्थान को छोड़कर स्वतंत्र विरचरण करना अधिक पसन्द करते हैं; लेकिन, श्रद्धालु भक्तों व सन्तों के विशेष आग्रह पर ही पदारूढ़ हैं।

मरु-जांगल प्रदेश में

धर्म प्रचार

[अ] महाराज जीवणदासजी

● नागौर रामद्वारा ●

स्वामी रामचरणजी महाराज प्रकाश पुंज थे, इनसे धर्म की ज्योति पाकर अनेकानेक सुयोग्य शिष्य देश के कोने कोने में फैल गये। इन शिष्यों ने सब प्रकार के कष्टों को झेलकर अपनी कठिन तपश्चर्या, साधना व राम-नाम निष्ठा के बल पर स्थान-स्थान पर रामद्वारों की स्थापना कर इस सम्प्रदाय के थांभे कायम किये। इन थांभों के साधु-सन्त थांभायत कहलाते हैं। जिस प्रकार किसी भवन की स्थिति सुदृढ़ स्तंभों पर निर्भर होती है, उसी प्रकार ये थांभे भी रामस्नेही सम्प्रदाय के सुदृढ़ स्तंभ ही हैं।

मरु-जांगल प्रदेश में धर्म की ज्योति फैलाने का कार्य महाराज जीवणदासजी, नारायणदासजी विदेही, तथा महाराज भगवानदासजी ने किया। ये तीनों ही हमारे आद्याचार्य जी के शिष्य थे, जिनमें श्री भगवान दासजी की तो प्रधान द्वादश शिष्यों में गणना है।

महाराज जीवणदासजी ने अपना धर्म-प्रचार क्षेत्र नागौर को बनाया। नागौर (अहिच्छत्रपुर) सपादलक्ष (सवालख) प्रदेश की गरिमा मयी राजधानी रही है। राजस्थान के इतिहास में नागौर एक प्राचीन ऐतिहासिक नगरी है। उसी नागौर में स्वामीजी ने अपना आसन जमाया। ये भूंडेल ग्राम (नागौर के अन्तर्गत) के रहने वाले क्षत्रिय थे।

जीवणदासजी के शिष्य भूधरदासजी हुए। ये भी भूंडेल के रहने वाले क्षत्रिय थे। स्वामी भूधरदासजी के दो शिष्य थे— (१) म० नारायण दासजी, जो आगे चलकर शाहपुरा के पीठाधीश के रूप में इस सम्प्रदाय के आचार्य बने। ये चौथे आचार्य थे। (२) म० सुखराम दासजी नागौर में

रहे। म० सुखराम दास जी के शिष्य लाडनूँ निवासी व पारीक वंशोद्भव श्री मनसुखरामजी थे, जिन्होंने वाद में लाडनूँ में रामद्वारे की स्थापना की और वहीं विराजे। म० मनसुखरामजी के लाडनूँ चले जाने के वाद इनके गुरु भाई लालदासजी नागौर विराजे। म० लालदासजी के वाद म० नवलरामजी, म० हेमदासजी व जुगतिरामजी एक के वाद एक नागौर रामद्वारे के थांभायत हुए।

इस समय म० जुगतिरामजी के शिष्य म० लछीरामजी नागौर रामद्वारे में विराजते हैं। लछीरामजी महाराज अत्यन्त सरल स्वभाव के सन्त हैं।

● मूंडवा रामद्वारा ●

म० सुखरामदासजी के एक शिष्य रामनारायणजी महाराज धर्म-प्रचार के लिए मूंडवा चले गये। वहीं रह कर आपने राम नाम के प्रति लोगों में निष्ठा जाग्रत की। ये महात्मा दूधाधारी थे। इनके निर्मल चारित्र्य की लोगों व इस सम्प्रदाय पर गहरी छाप है। श्री रामनारायणजी के शिष्य स्वामी आदवराम हुए।

आदवरामजी महाराज स्वभाव के अत्यन्त निर्मल थे। ये प्रतिदिन तालाव से स्नान करके गीले वस्त्रों से ही रामद्वारे आते थे। भयंकर से भयंकर शीतलकाल में भी गीले वस्त्रों को पहन कर ही रामद्वारे में आने का कठोर नियम इन्होंने वड़ी दृढ़ता से निभाया। ये तितिक्षु थे। चरित्र की तरह ही वस्त्रों की शुचिता का ये वहुत ध्यान रखते थे। 'विनय वावनी' नाम की इनकी लघुकृति में इनके कवित्त्व के साथ-साथ स्वभाव की मृदुलता व विनयशीलता भी झांक रही है। ये सं० १९९२ के आसपास परम धाम पधारे।

● लाडनूँ रामद्वारा ●

म० मनसुखदासजी ने लाडनूँ में रामद्वारे की संस्थापना की। म० मनसुखदासजी लाडनूँ के रहने वाले पारीक ब्राह्मण थे। वचपन में ये गायें चराते थे। एक दिन इनकी स्नेहमयी भोजाई ने कुएं में गिर कर आत्म

हत्या करली, यह दु:संवाद इस बालक ने सुना। इनको ऐसा लगा कि इनके सिर से स्नेह की छत्र-छाया उठ गई है। ये अब बिल्कुल असहाय, निराश्रय और अशरण अपने को अनुभव करने लगे। सहसा इनके हृदय में वैराग्य की भावना जाग उठी। ये घर नहीं गये और सीधे नागौर को चल दिये। वहां आकर इन्होंने महाराजी सुखरामदासजी से दीक्षा ग्रहण की। म० सुखरामदास जी के परम धाम पधारने के बाद नागौर रामद्वारे में ये ही प्रधान बने। लेकिन इन्हें आस-पास का वातावरण अनुकूल नहीं मालूम हुआ, अतः ये म० लालदासजी को वह स्थान सौंप कर विरक्त भाव से लाडनूं आ गये।

लाडनूं में इनका बड़ा आदर हुआ। श्रद्धालु लोगों ने मिलकर रामद्वारे की स्थापना की। म० मनसुखरामजी का जीवन अत्यन्त पवित्र, धार्मिक और उदार था। म० मनसुखरामजी सं० १९३४ भादवा वदि १२ को परम धाम पधारे। इनके बाद म० विलासीरामजी राम नाम का प्रचार करते रहे। विलासीरामजी महाराज पूरे त्यागी महात्मा थे। ये धातु को छूते भी नहीं थे। एक मात्र कोपीन धारण करते थे, जब बाहर निकलते तो छोटा सा वस्त्र कटि प्रदेश में लपेट लेते थे। बीमारी की हालत में जब इन्हें धातु-पात्र में औषध दी जाने लगी तो इन्होंने दवाई लेने से साफ इन्कार कर दिया। बाद में इन्हें काष्ठ-पात्र में ही औषध दी गई। ये बड़े भजनानन्दी थे। सं० १९५७ में म० विलासीरामजी ने लीला विस्तार किया। इनके शिष्य म० लज्जारामजी ज्यादा दिन लाडनूं नहीं ठहरे, और कुछ दिन बाद लाडनूं से चले गये। इसी से म० विलासीरामजी के दूसरे शिष्य महाराज मेवारामजी (सूरदासजी) लाडनूं रामद्वारे में विराजे।

मेवारामजी महाराज नागौर जिला के छापड़ा गांव के रहने वाले थे। बचपन से ही इनके नेत्र-ज्योतिहीन थे। इनकी माँ ने एक बार कहा कि तू यदि राम-राम करने लगे तो तुझे प्रकाश मिल सकता है। माँ की बात का शिशु-हृदय पर प्रभाव पड़ा। बचपन में यह राम नाम रटन जो आरंभ हुई, वह इनकी जीवन-संगिनी बन गई। लाडनूं की जनता में ये सूरदासजी के नाम से विख्यात थे।

श्री रामद्वारा सत्संग भवन, लाडनूँ
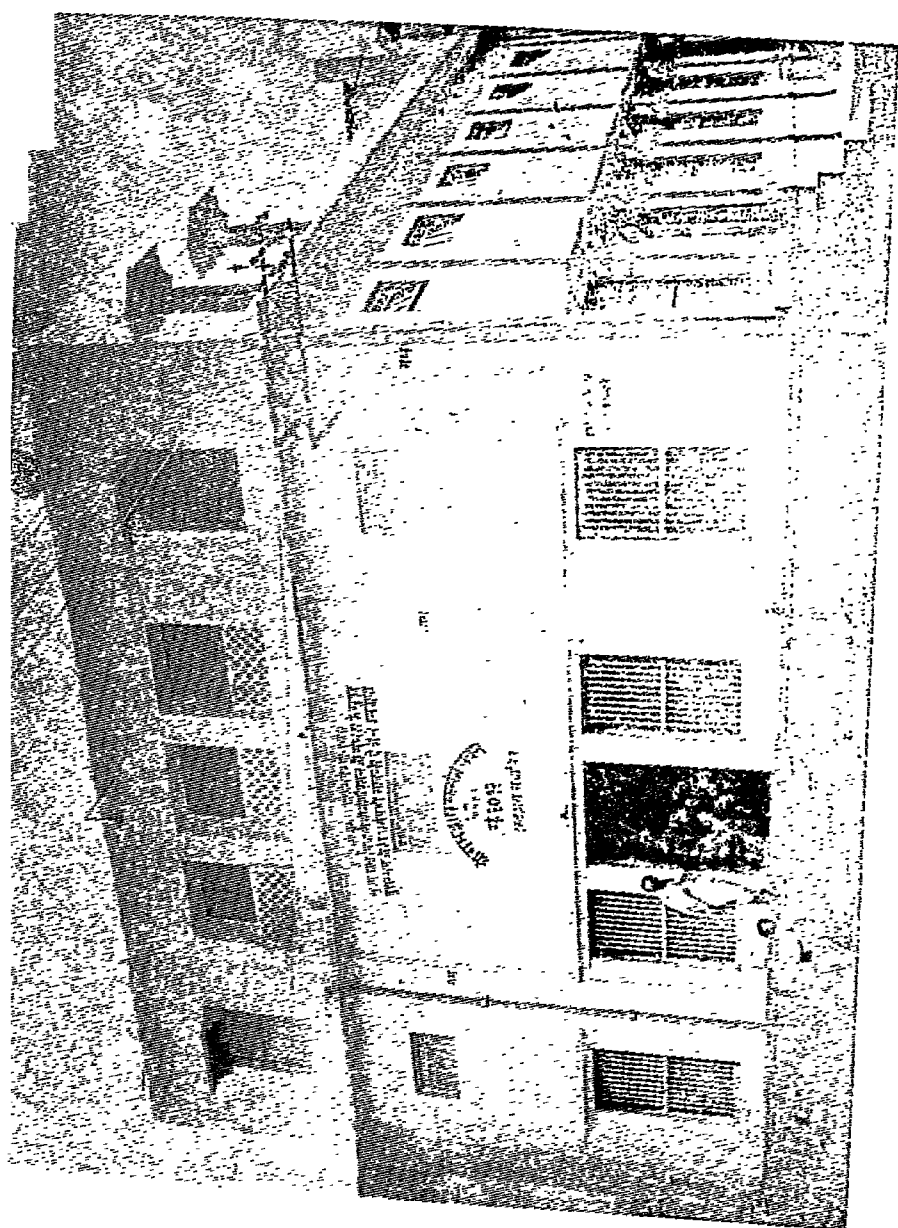
श्री सूरदासजी महाराज को भजनों से बहुत प्रेम था । नियमित रूप से प्रातः तीन-चार बजे उठकर ये अपनी मस्ती में भजन गाया करते थे। हाथ में इकतारा, कंठ के मधुर स्वर तथा साथ ही पैरों की धमक से सारा वातावरण मस्ती में झूम पड़ता था। राह में चलने वाले रुक जाते थे। शान्त वातावरण में इनकी मधुर स्वर लहरी मिश्री सी घोल देती थी। जिसने भी ब्राह्म मुहूर्त में श्री सूरदासजी महाराज के वीणा विनिन्दित स्वरों में भजनों को सुना है, उनकी मधुर स्मृति को, उस मस्ती को वह आज भी भूल नहीं पाया है।

सूरदासजी महाराज के समय में प्रतिदिन कथा श्रवण, संकीर्तन व वाणी-पाठ का क्रम जारी रहा। आस पास के श्रद्धालु भक्तों व बहिनों ने बहुत लाभ उठाया। ये अत्यन्त विरक्त व निरीह भाव से रहे। यह सूरदासजी महाराज के चारित्र्य का ही जादू है कि आसपास के दिगम्बर व श्वेताम्बर जैनी भी इनके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु थे। लाडनूं की समस्त जनता आपके प्रति बहुत आदर, श्रद्धा व भक्तिभाव से परिपूर्ण थी । श्री सूरदास जी महाराज का निर्वाण सं० २००० पौष सुदि ११ को हुआ।

श्री सूरदासजी महाराज के शिष्य स्वामी रामनिवासजी हैं, इन्होंने पुराने रामद्वारे के स्थान पर सं० २०१२ में एक विशाल भव्य भवन का निर्माण करवाकर उसे एक ट्रस्ट को सौंप दिया है। नव निर्मित भवन का नाम 'श्री रामद्वारा सत्संग भवन ट्रस्ट' रखा है।

[आ] महाराज नारायणदासजी विदेही

● खजवाणा व कुचेरा रामद्वारा ●

स्वामी रामचरणजी महाराज के शिष्यों में महाराज नारायणदास जी का भी सम्मान्य स्थान है। ये विदेही नाम से प्रख्यात थे। इन्होंने खजवाना में रहकर धर्म प्रचार किया।

विदेहीजी के बाद इनकी शिष्य प्रशिष्य परम्परा खजवाणा व कुचेरा में अभीतक धर्म-प्रचार कर रही है। एक ओर महाराज सुजाणदास जी, जरणारामजी, गरकरामजी, भागीरथ रामजी व भोलारामजी धर्म-

प्रचार के कार्य में रत रहे तो दूसरी ओर महाराज आरतरामजी, रामवगस जी, हरजनदासजी, परतीतरामजी, माणकरामजी व चौकसरामजी धर्मोपदेश से जनता को कल्याण-पथ बताते रहे। इस समय कुचेरा रामद्वारा में महाराज मोहबतरामजी व खजवाणा रामद्वारा में महाराज भगतरामजी विराज रहे हैं। इन दोनों के प्रति स्थानीय जनता में बहुत आदर है।

[इ] महाराज भगवानदासजी

राम चरणजी भाण है, किरण दास भगवान।
सूर्य उजालो गिगन में, ये मो हिरदे जान।
ये मो हिरदे जान बाण सब जाय विलाई।
सार सबद की ठीक गुरां संग घट में पाई।
नानग महमा कहा करूं कियो न जाय बखान।
रामचरणजी भाण है, किरण दास भगवान।[1]

महाराज भगवानदासजी का रामस्नेही सम्प्रदाय में गौरवपूर्ण स्थान है। मुक्तरामजी महाराज ने एक स्थान पर ठीक ही कहा है— यह कोरी शिष्य की भक्ति-विह्वल वाणी मात्र नहीं है—

सत समंद किरपाल तोय।
राम चरण अंभोज जोय।
ज्ञान सुगन्ध प्रकाश नित।
भगवान अलि जहाँ लग्यो चित।[2]

स्वामी कृपारामजी जल रूप हैं, जिनमें रामचरणजी महाराज कमल की तरह प्रस्फुटित हुए, जिनमें ज्ञान-वैराग्य की सुगन्धि भरी थी। भगवानदासजी महाराज उनसे आकृष्ट होकर भौंरे की तरह आये। भौंरा

(१) अवतार चरित्र (हस्त लिखित), पत्र ३५
(२) „ „ „ „ २७

जिस प्रकार मकरन्द पान करने के बाद मस्त होकर चारों ओर गुंजारता मँडराता फिरता है, उसी प्रकार श्री भगवानदासजी ने राजस्थान के अनेक स्थानों को ररंकार की मधुर गुंजार से मुखरित कर दिया। भगवानदास जी की महिमा सचमुच अपार है—

धर कण की गिणती नहीं, नहीं गिगन को पार।
उदधि थाह कैसे लहे, यूं गुरु अगम अपार ॥[1]

● जीवनी की रेखा ●

श्री भगवानदासजी महाराज का जन्म सं० १८०१ आसोज सुदि १४ वार शनिवार को हुआ। ये पीपाड़ के रहने वाले थे। इनके पिताजी का नाम दामोदरजी था। ये माहेश्वरी करवा थे। इनकी दीक्षा सं. १८२३ आसोज सुदि में भीलवाड़े में हुई। दीक्षा के पहले ये पीपाड़ से व्यवसाय के उद्देश्य से परदेश गये थे। वहाँ ठीक नहीं बैठा। फिर ये भीलवाड़े आये। इधर इनके घर वालों का पत्र विवाह बन्धन में डालने का आया। भीलवाड़े में उन दिनों स्वामी रामचरणजी महाराज विराज रहे थे। स्वामीजी के उपदेशों का इन पर भी प्रभाव पड़ा। ये विरक्त हो गये और इन्होंने दीक्षा ग्रहण करली। इन्होंने श्री कृपारामजी के दर्शनों का लाभ उठाया था। वर्षों अजगरी व भ्रमरी वृत्ति से रहे। अखण्ड राम जप में इन्होंने अपने जीवन को समर्पित कर दिया।

इन्होंने धर्म प्रचारार्थ दूर दूर तक रामत की। रैण, भेरूंदे, मेडते, जोधपुर, जैसलमेर, अजमेर, बीकानेर आदि स्थानों का आपने पर्यटन किया और उन्होंने अनेक शिष्य बनाये। इस भ्रमण से लोगों ने बहुत लाभ उठाया। स्वामीजी के रामत के स्थानों का निम्न दोहे में भी उल्लेख है—

रैण भैरूंदे मेडते, जोधाणा जैसलमेर।
अजमेर सिरियारी वही, उतर बीकानेर।[2]

---

(१) अवतार चरित्र (हस्त-लिखित); पत्र ४१
(२) „ „ „ „ २७

भेरूंदे में इनको मुक्तरामजी भी मिले थे। जिनको देखकर स्वामीजी महाराज ने मुक्तरामजी के एक सम्बन्धी विजेरामजी से पूछा था कि यह मोती कैसा है—खोटा काच का या खरा सीप का। खरा मोती तो राम भजन से ही हो सकता है। शिशु मुक्तरामजी के अबोध हृदय पर इस वाणी का अमिट प्रभाव पड़ा और उन्होंने सच्चा मोती बन कर दिखा दिया।

महाराज भगवानदासजी की वाणी भी बहुत विशाल है सन् १८३८ में इनके हृदय से वाणी स्फुरित हुई। करीब ४ हजार श्लोक परिमाण वाणी है। साखी, चौपाई, अरिल्ल, कवित्त, कुण्डलियां, रेखता, पद आदि सभी का वाणी में प्रयोग किया गया है।

मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर राज्यों के अनेक नगरों व ग्रामों में धर्म की दुंदुभि बजाने के बाद जोधपुर में सं० १८५९ श्रावण सुदि १ को इनका निर्वाण हुआ।

भगवानदासजी महाराज के २१ शिष्य विख्यात हैं—

म० रामदासजी	म० पूरणदासजी	म० मुक्तरामजी
,, अखेरामजी	,, नानगदासजी	,, नन्दरामजी
,, चत्रदासजी	,, महारामजी	,, हीरादासजी
,, रिदेरामजी	,, जुगतरामजी	,, राजारामजी
,, जरणारामजी	,, करणारामजी	,, पुरुषोत्तमदासजी
,, रामवगसजी	,, चौकसरामजी	,, मनोरथदासजी
,, प्रेमदासजी	,, फकीरदासजी	,, दयारामजी

इन शिष्यों में भी महाराज रामदासजी, म० चत्रदासजी, म० नानगदासजी तथा म० मुक्तरामजी बहुत विख्यात हुए हैं, जिनकी शिष्य परम्परा आज तक चालू है।

●पोकरण का रामद्वारा●

स्वामी भगवानदासजी के सुयोग्य शिष्य महाराज रामदासजी ने पोकरण में रामद्वारे की स्थापना की। महाराज की शिष्य परम्परा अभी तक चालू है। महाराज जुगतरामजी, जुगलरामजी, भगतरामजी, लायक-

रामजी, रामबिलासजी, लक्ष्मीरामजी, हेमदासजी व रामनिवासजी एक के बाद एक पोकरण रामद्वारे में विराजे। महाराज रामनिवासजी के तीन शिष्य हैं—समतारामजी, किम्मतरामजी तथा हेतमदासजी। इनमें महाराज किम्मत-रामजी महाराज देवादासजी के रामद्वारे जोधपुर में उत्तराधिकारी हुए हैं। महाराज देवादासजी तथा उनके दोनों गुरु भाई समतारामजी व हेतम-दासजी अभी भी जोधपुर विराजते हैं। तीनों गुरु भाई बड़े धर्म-निष्ठ साधक और भजनानन्दी हैं।

●जोधपुर के रामद्वारे●

रामस्नेही सम्प्रदाय में जोधपुर का भी विशिष्ट स्थान है। महाराज रामचरणजी के प्रधान शिष्य भगवानदासजी तथा देवादासजी महाराज ने वहीं पर रामद्वारे स्थापित किये थे।

महाराज देवादासजी के रामद्वारे में महाराज देवादासजी के बाद महाराज अखैरामजी, गिरधरदासजी, लच्छरामजी व शिवरामदासजी क्रमशः विराजे। पोकरण रामद्वारे से महाराज किम्मतरामजी, महाराज शिवरामदासजी के उत्तराधिकारी हुए हैं।

चांदपोल रामद्वारे में महाराज भगवानदासजी के दो प्रमुख शिष्य चत्रदासजी व नानगदासजी की शिष्य परम्परा पृथक्-पृथक् चल रही हैं—

(१)

म० भगवानदासजी

म० चत्रदासजी

म० वल्लभरामजी— निर्वाण सं० १९२७ सावण सुदि १२

म० भलारामजी— निर्वाण सं० १९४३ माघ सुदि १४

म० कनीरामजी— निर्वाण सं० १९६२ चैत्र वदि ४

म० चरणदासजी }
म० लच्छीरामजी } वर्तमान
म० रामबगसजी }

(२)

म० भगवानदासजी

म० नानगदासजी—निर्वाण सं० १८९९ वैशाख वदि ११

म० टहलदासजी— निर्वाण सं० १९४५ आषाढ़ सुदि ५

म० जसरामजी— निर्वाण सं० १९६४ आश्विन सुदि ४

म० गुह्यरामजी— जन्म सं० १९४५। निर्वाण-२०१२ माघ वदि १

म० मोहनरामजी— वर्तमान

उक्त सन्तों में महाराज गुह्यरामजी (गुजेरामजी) अपनी विद्वता के लिए वहुत विख्यात थे। गुजरात तक भी इनका प्रभाव था। कथा-वाचन में आपकी शैली वहुत आकर्षक थी। महाराज चरणदासजी व उनके शिष्य प्रशिष्य इस समय जोधपुर में सम्प्रदाय के गौरव को बनाये हुए हैं। म० मोहनरामजी का अच्छा प्रभाव है। जोधपुर महा मन्दिर का रामद्वारा भी वहुत विख्यात है। इसमें रामदासजी महाराज के शिष्य मगनीरामजी विदेही थे।

● बीकानेर का रामद्वारा ●

महाराज भगवानदासजी धर्म-प्रचार करने के लिए वीकानेर भी पधारे थे। पर, वीकानेर में रामद्वारे की स्थापना उनके सुयोग्य शिष्य मुक्तरामजी महाराज ने की।

मुक्तरामजी महाराज भैरूंदे के निवासी थे। वचपन में इन्होंने महाराज भगवानदासजी के दर्शन कर अपने जीवन को भगवद् भजन में समर्पित करने का निश्चय कर लिया। भगवानदासजी महाराज के मुखार-विन्द से निकले शब्दों ने इनके जीवन को ऊर्ध्वगामी बना दिया। 'मोती' नाम सुनकर भगवानदासजी ने सहज भाव से कहा—

कहे जन दोय भांति का मोती।
सीप एक काच का गोती॥

राम हेत में मोती साचा ।
हरिकी भक्ति बिना सब काचा ॥

यही वाणी सुन कर मन का रंग बदल गया—

बाणी सुण पलटयो मन रंगा ।
जनम सुधारण करी सत संगा ॥

इसी की मधुर स्मृति मुक्तरामजी महाराज को बराबर बनी रही। इन्हीं के ही शब्दों में—

बाल अवस्था बरस जु तेहरा ।
ता दिन भाग खुल्या है मेरा ॥

यह घटना सं० १८२५ के आसपास की होनी चाहिए, यह अनुमान यदि सही है, तो महाराज मुक्तरामजी की जन्म तिथि सं० १८१२ के आस-पास ठहरती है।

स्वामी मुक्तरामजी का बीकानेर आगमन हुआ। शहर के पश्चिम भाग के श्मशान में अपना आसन जमाया। रात दिन राम रटन की गूंज शुरू हुई। आस पास के लोग इस विरक्त राम-भक्त के दर्शन करने के लिए आने लगे। उस समय बीकानेर नरेश सूरतसिंहजी थे, ये भी दर्शन करने के लिए आया करते थे। जनता व राजा की ओर से मुक्तरामजी का अपार स्वागत-सत्कार हुआ। पर ये पूरे भजनानन्दी थे इनमें न धन लिप्सा थी और न यश लिप्सा। अवधूत की तरह जीवन-यापन करते थे। भ्रमर अजगरी वृत्ति ही उदर पूर्ति का साधन था।

मुक्तरामजी महाराज में पाण्डित्य, कवित्व व साधना का त्रिवेणी संगम था। ईश्वरीय प्रेम से भरे हुए इनके जो भाव निःसृत हुए, वे जीवन को ऊँचा उठाने वाले हैं। वैयक्तिक अनुभूतियों से अनुप्राणित वाणी का यह कल-कल्लोल पांडित्य की ऊर्मियों से तरंगायित है, जिसके तल प्रदेश में साधना की स्वच्छता, भावना की गंभीरता और अनुभव की शुभ्रता है। मुक्तराम जी महाराज की तपश्चर्या से पश्चिम दिशा का यह जन शून्य नीरव

स्थान रामभक्ति प्रचार का सबल साधना क्षेत्र बन गया ।

महाराज मुक्तरामजी ने सं० १८७७ फागण सुदि १४ शनिवार को लीला विस्तार किया। स्वामीजी की वाणी, उनका काष्ठ निर्मित जलपात्र व गुदड़ी आज भी पुनीत सम्पदा स्वरूप संतवाणी पुस्तकालय बीकानेर में एक मंजूषा में सुरक्षित है ।

स्वामीजी की चरण पादुका रामद्वारे में स्थापित है, जिस पर इनकी निर्वाण तिथि उत्कीर्ण है—

संवत् अठारे सौ सतंतरा, सुद फागण शनिवार ।
तिथ चौदस मिध्यान में, सन्त भये निरकार ॥

इसके बाद महाराज उदैरामजी, सेवारामजी, रामनारायणजी व तोलारामजी एक के बाद एक रामद्वारे में विराजे। महाराज उदैरामजी १८९१ के आसपास महाराज सेवारामजी सं० १९३२ कार्तिक वदि १४ शुक्रवार को व महाराज रामनारायणजी १९३२ माघ सुदि ७ को परम धाम पधारे । सेवारामजी महाराज के समय में राणावतजी साहिबा नंदकंवर बाईजी व दूसरे श्रेष्ठीवर्ग ने रामद्वारे में तिवारा तथा कुंड आदि का निर्माण कराया ।

महाराज रामनारायणजी के शिष्य तोलारामजी महाराज बड़े विद्वान् थे। ये उच्च कोटि के वैयाकरण व सन्त साहित्य के मर्मज्ञ पंडित थे । तोलारामजी महाराज का जन्म सं० १९१० में हुआ । इन्होंने दीक्षा सं० १९२५ में ली । इनका तिरोभाव १९७३ माघ वदि ११ शुक्रवार के दिन हुआ ।

तोलारामजी (तुलारामजी) महाराज के दो शिष्य इस समय मौजूद हैं। एक शिष्य गोविन्दरामजी महाराज अजमेर रामद्वारे में हैं, दूसरे स्वामी केवलराम बीकानेर रामद्वारे में हैं ।
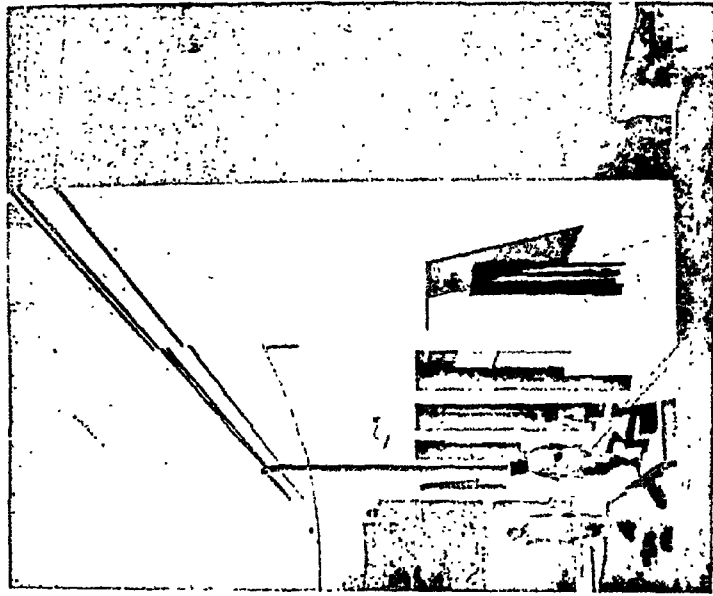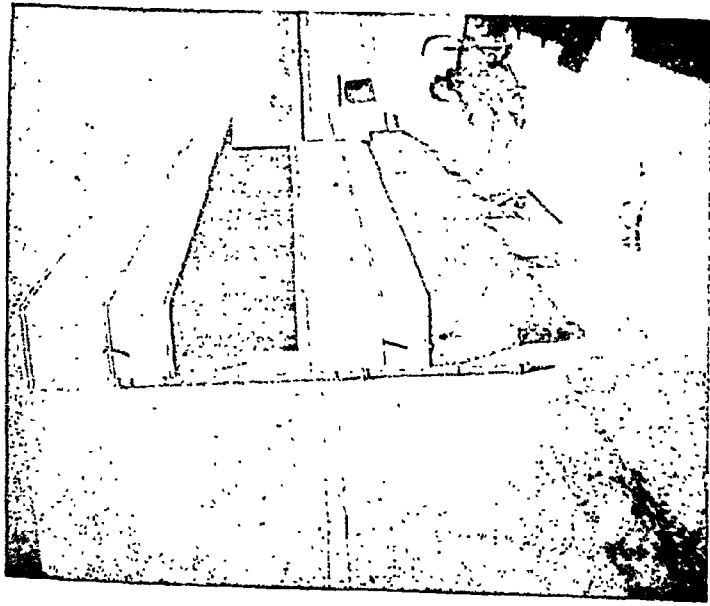
श्री स्वामी केवलराम आयुर्वेद सेवानिकेतन-ट्रस्ट भवन के दो विहंगम दृश्य

वैद्य केवलराम स्वामी

[१] जन्म— सं० १६५०

[२] दीक्षा— सं० १६५७

[३] भवन निर्माण— क. श्री तुलाराम साधु-आश्रम, श्री कोलायतजी; सं० १६८७

ख. बीकानेर में २० कमरों (शय्याओं) का आतुरालय सं० १६६४

ग. श्री स्वामी केवलराम आयुर्वेद सेवानिकेतन, बीकानेर; सं० २००१

घ. १० शय्याओं का दूसरा आतुरालय, बीकानेर; सं० २००५

ङ. सन्तवाणी पुस्तकालय, बीकानेर; सं० २००६

[४] ट्रस्ट निर्माण— सं० २००५ में सभी संस्थाओं का ट्रस्ट निर्माण किया गया, जिसके द्वारा औषधालय, कोलायत का आश्रम व सन्तवाणी पुस्तकालय संचालित हैं।

[५] भवन-दान— बुनियादी प्रशिक्षण हेतु राजस्थान राज्य को लगभग १ लाख का आतुरालय-भवन दान दिया गया; सं० २०१२ [७ जून १६५८ ई०]

[६] धार्मिक-कार्य— क. शंभु भेख; सं० १६८२

ख. बीकानेर में रामस्नेही सम्प्रदाय के पीठाचार्य वीत-राग श्री निर्भयरामजी महाराज का चातुर्मास; सं० १६८५

[७] आयुर्वेद-सम्मेलन— क. अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन २३वाँ, अधि-वेशन सं० १६८६ में प्रमुख भाग

ख. श्री राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के १२वें

अधिवेशन, निखिल भारतीय आयुर्वेद महा-
सम्मेलन [विशेषाधिवेशन] तथा श्री यादवजी
त्रिकमजी आचार्य हीरक जयन्ती महोत्सव में
विशेष सहयोग।

बीकानेर रामद्वारे के दो सन्त श्री आत्मारामजी व दीनरामजी हैं। श्री आत्मारामजी अपने सरल स्वभाव के लिये विख्यात हैं। ये जब कभी अपनी धुन में उच्च स्वर से भजन गाने या राम रट में लग जाते हैं तो मानो और सब कुछ भूल से जाते हैं।

द्वितीय खण्ड

[समीक्षा]

सन्तों की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी बानी ।
जानूं उसका भेद भला क्या, मैं अज्ञानी ॥

*

तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।

[अ] अरणभै वाणी का विस्तार

स्वामी रामचरणजी की अरणभै वाणी समुद्र की तरह विस्तृत है, अतल और अकूल है। सन्त साहित्य के मर्मी समीक्षक श्रीपरशुराम चतुर्वेदी ने ठीक ही लक्ष्य किया है कि "इनकी प्रवृत्ति किसी विषय का स्पष्ट विवरण देने की ओर अधिक जान पड़ती है और ये उसे पूरी शक्ति के साथ व्यक्त करते हैं। जान पड़ता है इन्होंने प्रत्येक बात का अध्ययन मनोयोगपूर्वक किया है और उसे स्वानुभूति के बल पर बतला रहे हैं।"[१]

स्वामीजी की वाणी का संग्रह इनके प्रधान गृहस्थी शिष्य माहेश्वरी वंशोद्भव भीलवाड़ा निवासी श्री नवलरामजी ने अत्यन्त योग्यता, अध्य-वसाय और निष्ठापूर्वक किया है, जिसकी संख्या अंगबद्ध ८००० श्लोक परिमाण है। तदनन्तर २८३९७ श्लोक परिमाण संख्या के संग्रह का कार्य आद्याचार्यजी के शिष्य परम पवित्र अद्वैत नैष्ठिक श्री रामजंनजी महाराज ने अत्यन्त पांडित्य और सौष्ठवपूर्वक सम्पन्न किया। इस प्रकार वाणी की श्लोक परिमाण संख्या ३६३९७ है।

वाणी में 'राम भजन, ज्ञान, वैराग्य और अहिंसा मुख्य कथन हैं और इनके अतिरिक्त राम नाम महात्म्य, भक्ति महात्म्य, पातिव्रत्य, स्वामी-धर्म, आश्रम धर्म, वर्ण धर्म, राज धर्म, साधारण धर्म, ब्रह्मचर्य, काम खंडन, कुसंग त्याग, नारी निन्दा, व्यसन निन्दा, मातृ-पितृ भक्ति, सत्संग, दास धर्म, दान धर्म, जीवन्मुक्त, ब्रह्म निष्ठा, ब्रह्म परिचय, गुरु शिष्य लक्षणादि अनेकानेक विषय सविस्तर प्रतिपादित हैं। इन महावाक्यों में यह अपूर्व विशेषता भी है कि प्रति शब्द राम नामांकित और प्रेम पूरित अनुभव,

---

(१) सन्त काव्य; पृष्ठ ५०५; श्री परशुराम चतुर्वेदी।

ब्रह्मरस सम्मिलित हैं।'[1]

श्री रामचरणजी महाराज की वाणी अभी तक प्रकाशित वाणियों में सबसे अधिक विस्तृत है और गुणोत्कर्ष में भी किसी से कम नहीं। 'इस दिव्य वाणी को संसार सागर तरने का सुगम सेतु'[2] कहा गया है; जो उचित ही है। वाणी द्वारा तत्कालीन स्थिति पर भी गहरा प्रकाश पड़ता है। समाज, व्यष्टि व समष्टि दोनों के जीवन को ऊँचा उठाने वाली व मुक्त करने वाली अनुभूत बातों से वाणी का वृहत् कलेवर आपूरित है। भाषा सरल व प्रसाद गुणमयी है जिससे सुनने वाले के हृदय पर सीधा प्रभाव पड़ता है। वाणी की प्रभविष्णुता का यही रहस्य है।

[आ] अनुबन्ध चतुष्टय

'नतु प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' के कथन के अनुसार इस ग्रन्थ के अनुबन्ध चतुष्टय का परिज्ञान आवश्यक है।

अधिकारी—सन्तों की वाणी का अधिकारी कौन है, यह विचारणीय प्रश्न है। जो आत्म-विस्मृत अज्ञ प्राणी है, वह सन्तों की वाणी को क्यों सुनेगा और क्यों पढ़ेगा! वह सन्तों की सुधा-प्रवाहिणी वाणी का अधिकारी नहीं। जो अपने स्वरूप को जानकर ब्रह्म रूप बन गया है, उसके लिए भी वाणी का कोई महत्व नहीं।

वस्तुतः सन्तवाणी का अधिकारी है—जिज्ञासु और मुमुक्षु। जिस व्यक्ति में षट् सम्पदा है; जो शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान इन षट् साधनों से सम्पन्न है, वह इस ग्रन्थ का अधिकारी है। स्वामी जी ने जिज्ञासु के गुणों की चर्चा करते हुए कहा है—जिज्ञासु वह है जिसका मन पर संयम हो, वासनाओं के विष को जिसने पचा लिया हो, खाने-पीने

---

(१) प्रस्तावना ; पृष्ठ ३; अणभै वाणी।

(२) " " "

में जो संयमी हो, राम भजन में जिसकी लौ लगी हो, जो साधुजनों की संगति करता हो, वही जिज्ञासु है। ऐसा व्यक्ति चाहे घर में रहे, चाहे वन में, एक ही बात है।[1]

इस "अणभै वाणी" के सच्चे अधिकारी भी इसी प्रकार के जन हैं। जो लोग सन्तवाणी का अध्ययन कोरे सामाजिक, राजनीतिक व साहित्यिक दृष्टि से करते हैं, वे मानो मानसरोवर के तट पर घोंघे, शुक्ति व कंकड़ बटोरने जाते हैं। आध्यात्मिक रस ही सन्तों का प्रतिपाद्य विषय है।

सम्बन्ध-वर्णन–ब्रह्म निःस्पृह, निराकार, निराधार सब का स्रष्टा और सर्वव्यापी है। जो दृष्टि गोचर होता है, जो मुष्टि ग्राह्य है, जो आकार व रूपात्मक है, वह सब माया का विपुल विस्तार है। ब्रह्म तो व्योम की तरह व्यापक है, उसका सुमिरन ही सार है।[2]

यही इस ग्रन्थ का स्वरूप है, इस स्वरूप के साथ ब्रह्म वाणी का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है। अधिकारी के साथ फल का प्राप्य प्रापक भाव सम्बन्ध है। अधिकारी और विचार का कर्तृ कर्त्तव्य भाव सम्बन्ध है। ग्रन्थ व ज्ञान का जन्य-जनक भाव सम्बन्ध है।

---

(१) जिज्ञासू जरणा लियां संयम राखै मंन।
धर्म मांहि धारा सदा तन को नांहि जतंन।
तन को नांहि जतंन अन्न जल सयम लेवैं।
राम भजन सूं रत्त नित्य निर्मल जन सेवैं।
रामचरण अति भावना कहा ग्रेही कहा बंन।
जिज्ञासू चरणा लियां संगम राखै मंन॥

(२) निस्प्रेही निर्वैरता निराधार निरकार।
सकल सृष्टि में रमि रह्यो सब को सिरजन हार।
सब को सिरजन हार राम सो ताहि भणीजे।
द्रष्टि मुष्टि आकार रूप माया ज गिणीजे।
रामचरण व्यापक व्योम ज्यों ताको सुमरण सार।
निस्प्रेही निर्वैरता निराधार निरकार॥

विषय वर्णन—जीव ब्रह्म का अंश है, जैसे सूर्य का प्रतिविम्ब। जब पर्दा हट जाता है। तो जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं।[१] जीव भाव को त्याग कर ब्रह्म भाव होना ही वाणी का विषय है।

प्रयोजन वर्णन— इस वाणी का एक मात्र प्रयोजन यही है कि जिज्ञासु राम नाम की रट लगाकर ब्रह्म का पद प्राप्त करे। जिस प्रकार सरिता का जल वहता-वहता अन्त में ठेठ सागर में जाकर मिल जाता है, नमक पानी में घुलकर एकाकार हो जाता है, वर्फ के गलने पर वह पानी से भिन्न कुछ नहीं है, जैसे पानी के वुलवुले जल मे अलग नहीं, समुद्र की लहरें जैसे समुद्र में ही वनती मिटती रहती हैं, उसी प्रकार जीव ब्रह्म का भी एकी भाव है।[२]

सर्व अनर्थ की निवृत्ति व परमानन्द प्राप्ति इस मोक्ष रूप वाणी का प्रयोजन है।

[इ] अंग-वद्ध विस्तार

सारी वाणी को अलग अलग विषयों के शीर्षक से अंगवद्ध कर दिया गया है। निर्गुण-साहित्य में यही पद्धति गृहीत है। दूसरे सन्तों की अपेक्षा इसमें नवीन अंगों का भी समावेश किया गया है। ब्रह्म, जीव व जगत् सम्वन्धी ऐसी कौन सी वात है, जो छूटने पाई है! साथ ही स्वामीजी ने अपने लक्ष्य को इस विस्तार में खोने नहीं दिया, वह स्पष्ट से स्पष्टतर है; जिस प्रकार दिशा-दर्शक यंत्र की सूई इधर उधर घूमने के वाद फौरन ही

---

(१) जीव ब्रह्म का अंश है, ज्यूं रवि का प्रतिविम्व होय।
घट पड़दा दूरा भयां, जीव ब्रह्म नहि दोय।

(२) राम नाम मुख गाय ब्रह्म का पद कूं पायो।
जैसे सरिता नीर ध्याय धुर समंद समायो।
जल की उत्पति लवण उलटि अपणो पद परश्यो।
पाला पाणी मांहि गलयां दूजो नहिं दरस्यो।
ज्यूं जल केरा वुद वुदा जल से न्यारा नांहि।
राम चरण दरियाव की लहरयां दरिया मांहि॥

साध, असाध, साध संगति, कुसंगति, साध पारख, साध महिमा, बाचक ज्ञानी, लच्छ ज्ञानी, अज्ञानी, ब्रह्म विवेक, काळ, चितावणी, मन, मन मूसा मन सूब, कायर, शूरातण, उपदेश, जिज्ञासा, शिख पारख, शिष्य निरणा, टेक, विचार, निरणा, हठयोग, भक्ति महिमा, माया, कामी नर, रहत, जरणा, साच, भ्रम विध्वंश, भेष और चांणक।

कुंडल्या के ४४ अंग—गुरुदेव, गुरु परमारथी, लोभी गुरु, सुमरण, बीनती, प्रचा, पतिव्रता, व्यभिचारिणी, कायर, शूरातण, सती, विश्वास, बे विश्वास, निरपख, विरक्त, निरगुण उपासना, साध, साध पारख, साध संगति, कु संगति, दया, लच्छ, उपदेश, जिज्ञासी, गुरु शिष्य पारख, शिष्य पारख, गुरु बेमुख, राम विमुख, सन्मुख बेमुख, अज्ञानी, विचार, निरणा, लोभी नर, काळ, चितावणी, मन, हठयोग, माया, कामी नर, निंदा, साच, भ्रम विध्वंस, भेष और चांणक।

रेखता के १५ अंग—गुरुदेव, भेष धारण, सुमरण, नाम निरणा, प्रेम प्रकास, प्रचा, विचार, शूरातण, सारग्राही, चितावणी, असाध, कामी-नर, साच, भेष और चांणक।

इस प्रकार श्री रामचरणजी ने ७ छन्दों में अनेक अंगों को बांधा हैं। गुरुदेव, सुमरण, प्रचा, जीवत मृत्तक, भ्रम विध्वंस, भेष और चांणक आदि विषय अनेक बार आये हैं; सभी के कहने का ढंग नवीन है, कोरी पुनरावृत्ति मात्र नहीं है। स्वामीजी महाराज जब वर्णन करने लगते हैं तो जमकर वर्णन करते हैं। विषय को स्पष्ट से स्पष्टतर व सर्वाङ्ग पूर्ण रूप से उपस्थित करते हैं, जिससे श्रोता उस रहस्य को अनायास ही सरलता से हृदयंगम करने में समर्थ हो सके।

[ई] ग्रन्थों की विवरणी

स्वामीजी की इस बृहद् वाणी के अतिरिक्त २३ ग्रन्थ और हैं, जिनमें छोटे व बड़े सभी प्रकार के हैं। यहाँ इन ग्रन्थों की विवरणी प्रस्तुत की जा रही है—

(१) गुरु महिमा—यह कुल २४ छन्दों की लघु कृति है। जैसे

नाम से स्पष्ट है, इसमें गुरु की महिमा का बहुत ही प्रभावशाली वर्णन किया है।

(२) नाम प्रताप—यह भी लघु कृति है, इसमें ७२ छन्द हैं। नाम की महिमा, भक्त वन्दना व नाम के प्रभाव से माया से मुक्त होकर ब्रह्म से मिलने का वर्णन है।

(३) शब्द प्रकाश—इसमें कुल २६ छन्द हैं। सद्गुरु से राम नाम पाकर शिष्य विश्वासपूर्वक नाम को निशि दिन रटता है तो निश्चय ही शब्द प्रकाश होता है। 'सुरति शब्द योग' का इनमें वर्णन हुआ है।

(४) अरणभै विलास—स्वामीजी का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ ३१ प्रकरणों में समाप्त हुआ है। प्रश्नोत्तर द्वारा विषय को सुगम बनाया गया है। ज्ञान, भक्ति व वैराग्य का सुन्दर वर्णन है। इस ग्रन्थ की महिमा में श्री रामजनजी महाराज ने उचित ही कहा है—

'याको है सवाद मीठो दीठो हम चाखि येह,
फीको लगै काम दाम रामजी सूं राग हैं।
उत्तम शवद सत्य नित जाकी शोभ भारी,
उचारी हैं गिरा ज्ञान अज्ञता को त्याग हैं।
भगती भजन मन जीतबे की गति कही,
गही जो विचारवान वोही वड भागी हैं।
अरणभै विलास महा सुक्ख को निवास जानूं,
वखानूं जो कहा येह परम वैराग हैं।

(५) सुख विलास—यह भी बहुत बड़ा ग्रन्थ है। १३ प्रकरणों में समाप्त हुआ है। कवित्त, सोरठा, झूलणा, गीतक, भुजंगी, निसाणी आदि विविध छन्दों में सत्संगति, नाम महिमा, कृतघ्न, माया, मोह, अहंकार आदि का प्रश्नोत्तर रूप में बहुत ही हृदयग्राही ढंग से वर्णन किया है।

(६) अमृत उपदेश—वाजी, मृत्यु, शिष्य, भक्ति की महिमा,

भक्ति के प्रकार, कुदास, अज्ञान, साध लक्षण, वाण्यां, माया, तृष्णा, चौर गति, जुवारी गति, साच झूठ को व्यौरो आदि विविध विषयों से यह ग्रन्थ विभूषित है। इसमें १५ प्रकरण हैं।

(७) जिज्ञास बोध—इस ग्रन्थ में २१ प्रकरण हैं। जिज्ञासु शिष्य की सभी शंकाओं का खुलकर समाधान किया है। गुरु भेद, शील, जीवत मृत्तक एवं भक्ति-ज्ञान-वैराग्य आदि विषयों की विशद व्याख्या इस ग्रन्थ में है।

(८) विश्वास बोध—इस ग्रन्थ में आत्मा शोध, आशा-तृष्णा लोभ खंडन, कुसंग त्याग, साध लच्छ आदि अनेक अंगो का वर्णन है। कुल २१ प्रकरण हैं। त्रिभंगी, अरल, तोटक, पद्धरी, जांणो सदरी आदि विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

(९) विश्राम बोध—तीनों तापों से वचकर मनुष्य किसी प्रकार गुरु की ओट में अखण्ड विश्राम पा सके, इसी का विशद वर्णन इस ग्रन्थ में है। इसमें ११ विश्राम हैं।

(१०) समता निवास—इस ग्रन्थ में मन्मुखी शिष्य, सुगरा शिष्य, कपटी शिष्य, लोभी गुरु आदि का वर्णन है। इसमें विविध छन्दो वद्ध ९ प्रकरण हैं।

(११) राम रसायण बोध—इस ग्रन्थ में संसार की दूसरी प्रकार की रसायणों को विषरूप वताया गया है और राम नाम की रसायण को ही सर्वोपरि स्थान दिया गया है, जिसको पीने से मनुष्य सारे द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है, जीव बुद्धि हट कर शिव बन जाता है—

(अ) और रसायण सब मन रंजन, अंजन मैं अटकावै।
राम रसायण है मन भंजन, गुरु रसाण बतावै।

(आ) जीव बुद्धि सब परिहरी, भये ज शीव अभंग।

(१२) चिन्तावणी— इसमें १२७ छन्द हैं। दोहा, सोरठा व चामर छंन्दों का प्रयोग किया गया है। संसार के मोह माया जाल में पड़े हुए

प्राणियों को सचेत करने के लिए यह ग्रन्थ लिखा गया है।

(१३) मन खंडन— दोहा, सोरठा व चौपाई में यह ग्रन्थ लिखा गया है। छन्दों की संख्या ३० है। मन को काबू में रखने के लिए उपाय बताये गये हैं।

(१४) गुरु शिष्य गोष्टि— इसमें गुरु शिष्य संवाद है। गुरु ने अत्यन्त संक्षेप में शिष्य की शंकाओं का निरसन कर ज्ञान, भक्ति व वैराग्य पर बल दिया है। यही संसार-सागर से पार होने का सुगम-मार्ग है। इसमें दोहा व झंपाल छन्द प्रयुक्त हुए हैं। कुल १४ पद्य आये हैं।

(१५) ठिग पारख्या— यह १५ छन्दों की लघुकृति है; पर, कथन में अत्यन्त वक्रता है। स्वामीजी ने अपने आपको ठग व उचक्का बताया है। ठग कैसा, जरा उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

हिम कूं ठिग्ग कहै सब कोई। सत्य कथै ले झूठ न होई।

× × × ×

कह संसार उचक्का हम कूं। उचकि लिया हम सत्य शब्द कूं॥
ऐसा हेरू ठग्ग उचक्का। जाकै लगै न जम का धक्का॥

(१६) जिंद पारख्या—इस कृति में सच्चे साधु का स्वरूप बताया है।

हिन्दू तुरक दोऊ सूं न्यारा।
निर्पख रहै रब्बदा प्यारा॥
कोइ न मत का पकडै बंध।
तत कूं ताय भया निर्धंध॥

(१७) पंडित संवाद— कोरी पोथियों की बात कहने वाले, पर जीवन में उन बातों को नहीं उतारने वाले ढोंगी पंडितों की स्वामीजी ने खूब खबर ली है—

कलिजुग के पंड़ित पाखँडी।
घर में कुबुद्धि करकसा रंडी॥

न्हाय धोय अपरश ह्वै बैठा।
मन में मैल चाहि का पैठा॥
काशी पढ्या उदर के हेत।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी श्रुति वेचक अथवा निरक्षर ब्राह्मणों की खूब भर्त्सना की है।[1]

सच्चा पंडित वह है, जो पिण्ड का शोधन करे और प्रवल मन को समझावे—

पंडित सोही पिंड कूं शोधै।
महा अपरबल मन कूं बोधै॥

(१८) लच्छ अलच्छ जोग— साधुओं द्वारा किस प्रकार जनता में आतंक फैलाया जाता था, इस ग्रन्थ में उसका बड़ा सटीक वर्णन है। सारा उपद्रव प्रत्यक्ष सा हो जाता है। साथ ही सच्चे साधुओं की मोहक झांकी भी दे दी गई है। स्वामीजी ने अन्धकार और प्रकाश दोनों को साथ साथ दिखा दिया है।

(१६) बेजुक्ति तिरस्कार— यह १८ छन्दों की एक छोटी सी रचना है। इसमें उन साधुओं को स्वामीजी ने बार बार धिक्कारा है, जो तरह तरह के विचित्र वेष धारण कर संसार को ठगते हैं या विषय भोगों में लगे हैं।

(२०) शब्द— यह भी छोटी सी रचना है। नाम महिमा के साथ-साथ कलियुगी साधुओं व ब्राह्मणों को फटकार बताई है।

(२१) गावा का पद— स्वामीजी ने पद भी बहुत से लिखे हैं। ग्रन्थों के बीच बीच में पद बराबर आते हैं। भैरव, आसा, कल्याण, सोरठ आदि विविध राग रगिनियों में ज्ञान, भक्ति व वैराग्य का वर्णन मिलेगा। कहीं विरहिणी आत्मा की पुकार है तो कहीं पिया के दिव्य सौन्दर्य की बांकी

---

(१) बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥
रामचरित मानस; उत्तर काण्ड

झांकी, कहीं नाम महिमा की रट है तो कहीं आत्म-दैन्य का सुष्ठु वर्णन। पद बहुत मधुर एवं गेय हैं। इसमें १०५ पद संगृहीत हैं।

(२२) दृष्टान्त सागर— लोक में जिस प्रकार प्रहेलिका (आड्यां) आदि के गोरख धंधे चलते हैं, उसी प्रकार इस ग्रन्थ में स्वामीजी ने जीव, ब्रह्म, सृष्टि आदि के रहस्यों को छिपा कर प्रकट किया है। सिद्धों की सन्धा भाषा व सन्तों को उल्ट बांसी की तरह इन प्रहेलिकाओं में भी ज्ञान को गोप्य रखा जाता है, जिससे वह अनधिकारियों के हाथ में न पड़े। थोड़ी चमत्कृत करने की भी इसमें छिपी आकांक्षा रही हो।

सात हाथ की लाकड़ी बीज बध्यो नव हाथ।

इस प्रकार की अनेक पहेलियाँ व दृष्टिकूट दिये गये हैं; साथ ही टीका भी दे दी गई है। इस ग्रन्थ की टीका श्री स्वामी रामजनजी ने की है। इसमें भावों का मुक्त प्रवाह नहीं है, कोरा पांडित्य और वाग्वैदग्ध्य है। टीका व वचनिका न हो तो इस ग्रन्थ को समझना मुश्किल हो जाय।

(२३) काफर बोध— यह भी आपका छोटा सा ग्रन्थ है।

सब मिलाकर इनकी वाणी व ग्रन्थों का वहुत विस्तार है सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़ने के लिए धैर्य व साधना की आवश्यकता है, साथ ही सुगरा होने की भी;[1] तभी इस रत्नाकर से अमूल्य रत्न पाये जा सकते हैं। क्षीर सागर के तट पर कोई प्यासा यदि तर्क छिद्रित चलनी ले जावे तो वह वहाँ से खाली और तृषातुर ही लौटेगा!

हमारा तेज स्वरूपी स्वामी रामचरणजी के चरणों में कोटिश: वन्दन है, जिनकी अपार अनुकम्पा से हमें इस वाणी के महा समुद्र से दो एक सुधा-सीकर प्राप्त हुए; हमारा जीवन तो इसी से धन्य है।

[उ] सन्तों का मध्यम मार्ग

डा० बडथ्वाल ने सन्त मार्ग को मूलत: प्रकाश का पथ कहा है।

---

१. इंमृत बरसैं संत जन, सुगरा पिवैं अधाय।
रामचरण गुरु ज्ञान बिन, नुगरा प्यासा जाय॥
— अणभै वाणी पृष्ठ २२

वास्तव में सन्तों ने स्वानुभूतियों के प्रकाश में जीवन की विडम्वनाओं और विशेषताओं को एक साथ देखा। इसी से सन्त-वाणी कोमल और मधुर है, साथ ही प्रचण्ड और उग्र।

सन्त मत की विचारधारा मूलतः अनवच्छिन्न है; ऊपरी परिवर्तन की लहरें भीतर की गहराई को हिला नहीं पाईं। सभी सन्तों का एक ही पथ है। दादूजी ने कहा है—

जो पहुंचे ते कहि गए, तिनकी एकै बात।
सवै सयाने एक मति, तिनकी एकै जात॥

स्वामी रामचरणजी ने यही वताया है कि जितने समझदार हैं, उनका एक ही मार्ग होता है। जो ना समझ हैं, उनके रास्ते गिने नहीं जा सकते—

समझया समझया एक पथ, पहुंचै निज घर मांहि।
रामचरण अण समझ का, गैला गिण्यां न जांहि॥[१]

सन्त सत्य का अन्वेषक होता है। वह सारे दुराग्रहों से मुक्त होता है। निष्पक्ष भाव से जीवन की राह में चलता है। निष्पक्ष के निकट ईश्वर है और जो अपने मत का पक्ष खींचता है, भगवान उससे दूर भागते हैं। 'पखा पखी' तो उलझन है। निष्पक्षता विना हम सुखी नहीं हो सकते—

मत की पख हरि दूरि है, निरपख राम नजीक।
रामचरण निरपख भया, जिन हीं पाई ठीक॥
पखा पखी उलझाड़ है, खैंचाताणीं होय।
रामचरण निरपख बिनां, सुखी न देख्या कोय॥[२]

सन्त का मार्ग अतिवादों को छोड़ कर चलता है। वह मध्य मार्ग का पथिक है। 'सन्तों ने प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्गों के मध्यवर्ती सहज मार्ग को ही अपनाया है और विश्व कल्याण में सदा निरत रहते हुए भूतल पर

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ५१
(२) " " " "

स्वर्ग लाने का स्वप्न देखा है।' [1] इस मध्य मार्ग के लिए सन्त स्पष्टतः ही बौद्धों का ऋणी है। 'महायान, योगाचार तथा गोरख पन्थ सभी मध्यम-मार्ग स्वीकार करते हैं। गोरखनाथी इसके लिये उस बौद्ध मत के ही ऋणी हैं, जिससे वे पृथक् हुए थे। गोरखनाथ ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

खाए भी मरिए अनखाए भी मारिए।
गोरख कहै पूता संजमिही तारिए॥
मधि निरंतर कीजे वास।
दृढ़ ह्वै मनुवा थिर ह्वै सास॥

अर्थात् भोजन करने पर भी मृत्यु होती है और न करने पर भी होती है। गोरख कहते हैं कि संयम द्वारा मुक्ति निश्चित है। मध्य का आश्रय ग्रहण करो तभी तुम्हारा मन दृढ़ होगा और तुम्हारा श्वास भी नियमित चलेगा। [2]

भगवान् बुद्ध का यही प्रतीत्य समुत्पाद या मध्यम मार्ग है। [3] उन्होंने कहा है, वीणा के तारों को इतना मत खींचो कि वे टूट जावें, इतना मत ढीला रहने दो कि उनसे राग भी न निकले।

रामचरणजी महाराज ने भी अपनी वाणी में मध्य मार्ग पर जोर दिया है। ये कहते हैं—'कोई घर छोड़ कर वन को जाता है, कोई घर में ही रहता है; रामचरण कहता है कि सन्त जन मध्य के मार्ग से जाता है। घर में चिन्ताएं जलाती हैं, वन में गर्व; सन्त दोनों को छोड़कर एक राम नाम में ही लवलीन रहता है। योग भी रोग, भोग भी रोग; इन दोनों को छोड़ दो। साधु मध्य मार्ग से चल कर परिपूर्ण आनन्द प्राप्त करता

(१) उत्तरी भारत की सन्त परम्परा।

(२) हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय; पृष्ठ ३०७-३०८; पाद टिप्पणी से उद्धृत।

(३) 'छोड़ कर जीवन के अतिवाद मध्य पथ से लो सुगति सुधार।' —महाकवि प्रसाद, 'लहर' में से।

है। कोई परलोक की आशा करता है, कोई ऐहिक सुख चाहता है ; पर, सच्चा सन्त तो दोनों को ही दुःख समझता है। कोई साकार को पूजता है, कोई निराकार का भक्त है ; सन्त बीच का मार्ग अपनाता है।'

कोई गृह तजि बन गया, कोई रहै गृह मांहि।
रामचरण वै संतजन, मधि के मारग जांहि॥
गृह मैं तो सांसो दहै, बन मांही अभिमांन।
राम चरण दोन्यूं तजै, संत भजन गलतांन॥
जोग भोग दोइ रोग है, राम चरण तजि दूर।
मधि मारग साधू चल्या, पाया सुख भरपूर॥
कोई आश परलोक की, कोई लोक का सुक्ख।
राम चरण संत राम का, देखै दोन्यूं दुःख॥
कोइ सेवै आकार कूं, कोई निराकार का भाव।
राम चरण वै संत जन, मधि का करै उपाव॥[1]

इस प्रकार सच्चा सन्त घर-वन, जोग-भोग, लोक-परलोक, निराकार-साकार, सगुण-निर्गुण इनके बीच में अपना पथ-सन्धान करता है, यही सन्त-मत का मध्यम मार्ग है। स्वामी जी ने कहा है कि यह मध्य मार्ग है—राम नाम, उसी का एक मात्र सुमरण। राम नाम निराकार-साकार, निर्गुण-सगुण सभी का केन्द्र स्थल है।

मधि मारग है राम नाम,
सुमरण भरिये भीख।

---

१. (अ) अणभै वाणी ; पृष्ठ ५०

(आ) मिलाइये—

ना हम छोड़ना ग्रहै, ऐसा ज्ञान विचार।
मद्धि भाव सेवै सदा, दादू मुकति दुवार।—दादू।

रामचरण हम क्या कहैं,
या अनन्त कोटि की सोख ॥[1]

सन्त-मत जोग की जटिल साधना से दूर सहज-पन्थ है। वह ऊवट (उद् वर्त्मन्) पथ है, इसके विपरीत गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने पथ भक्ति मार्ग को 'राज डगर' कहा है और महाकवि सूर ने 'काहे को रोकत मारग सूधो' कह कर इसका प्रशस्ति गान किया है। पर, सन्तों का मार्ग तो 'ऊवट' है। रामचरण जी महाराज की वाणी में जो 'ऊवट गैला' आया है, वह इसी राम सुमरण के लिए है—

सर्व जीव गेलै चलै, फिर फिर गोता खाय।
रामचरण ऊवट चलै, सो निर्भय घर जाय ॥
ऊवट गैला राम नाम, चालै विरला कोय।
कुळ मारग जेता गया, तेता परलय होय ॥[2]

सद् गुरु—

भारतीय संस्कृति में गुरु का बहुत ही ऊँचा स्थान है। गुरु की महिमा से भारतीय साहित्य भरा पड़ा है। गुरु को ईश्वर के समकक्ष बताया गया है। यों तो प्राचीन साहित्य में गुरु का सम्मानास्पद स्थान है; लेकिन निर्गुण साहित्य में गुरु की महिमा का विशद वर्णन है। प्रत्येक सन्त ने गुरु के लिये अपने हृदय के सहज उद्गार व्यक्त किये हैं और ऐसा लगता है कि वह ऐसा करते हुए थकता ही नहीं है। भावों के बहाव में वह इतना आगे बढ़ जाता है कि गुरु को ईश्वर से बड़ा बता देता है।

सन्त-साहित्य में आध्यात्मिक साधना है, जहाँ निगमागम का प्रवेश नहीं। उसका मार्ग नया है, वह आत्मिक साधना का सूक्ष्म पथ है, जहाँ कदम कदम पर भटकने का डर है, इसे वहां ऐसे पुरुष की आवश्यकता

१. अणभै वाणी ; पृष्ठ ५०

२. " " " "

है, जिसने उस रहस्य को जान लिया है। अतः गुरु की शरण में जाकर मुमुक्षु संसार के माया मोह से दूर हट कर आत्म साक्षात्कार करता है। यह सब गुरु की अहेतुकी अनुकम्पा विना संभव नहीं।

स्वामी रामचरणजी ने सद्गुरु का मुक्त हृदय से गुण गान किया है। गुरु के यशः स्तवन में इनकी वाणी का निर्झर फूट पड़ा है, वह रुकना ही नहीं जानता ! सद् गुरु की पहचान, शिष्य की पात्रता, गुरु की दयालुता, शिष्य का गुरु के चरणों में सर्वस्व समर्पण, गुरु का सामर्थ्य, गुरु के शब्द का अचूक अमोघ प्रभाव, लालची व अन्ध गुरु, स्वार्थी व मनोमुखी शिष्य, सुगरा नुगरा की पहचान आदि अनेक रूपों में गुरु की चर्चा हुई है। सद् गुरु-वन्दना का जब भी प्रसंग आया है, स्वामीजी गद् गद् वाणी से उसका वर्णन करते हैं; लेकिन जहाँ कंगले व मंगते गुरु की चर्चा चली है, वहां ये रोष दीप्त होकर उसको फटकारते व धिक्कारते नजर आते हैं।

सद् गुरु मेघ की तरह अपने उपदेशों की अजस्र वर्षा करते हैं, शिष्य जिज्ञासु होना चाहिये। फिर, अवश्य ही उसको सुफल मिलेगा।[1] सद् गुरु के उपदेश सुगरा को अमृत की तरह मीठे लगते हैं; लेकिन नुगरा तो उससे और अधिक विद्रूप बन जाता है।[2] गुरु तो गारुड़ी की तरह होता है, जो सारे विष को दूर कर देता है।[3] सद् गुरु यदि सच्चा मिले, तो सच्चा ही ज्ञान देते हैं, वे मन की खोट निकाल कर स्वर्ण की तरह निष्कलुष

---

१. सत गुरु बरसैं मेघ ज्यूं, शिख जिग्यासी होय।
रामचरण तब नीपजैं, निरफल जाय न कोय॥
अणभै वाणी; पृष्ठ ४।

२. सुगरा कूं सतगुरु सबद, लागै अमृत रूप।
नुगरा कूं भावै नही, उलटा होय विडरूप॥
अणभै वाणीः पृष्ठ ५

३. रामचरण गुरु गारडू, सब विष डारैं धोय।
वही; पृष्ठ ४

वना देते हैं।[1] जीव संसार कूप में पड़ा है, वह अपने बल बूते पर पार नहीं हो सकता। सद् गुरु ही सच्चे केवट हैं, जो पार लंघा सकते हैं।[2] यदि सद् गुरु संसार में न हो तो यहाँ साच झूठ का कौन निर्णय करेगा। यहाँ तो 'गुड़ खल' एक ही भाव विकती हैं।[3]

स्वामीजी ने गुरु के लक्षणों की भी विशद चर्चा की है। जो गिरि की तरह अतोल हो, समुद्र की तरह अथाह हो, चन्द्रमा की तरह शीतल हो, धरती की तरह धृतिशील हो, वही सच्चा गुरु है।[4] सभी ने गुरु को पारस बताया है, जो लोहे का सोना बना देता है; लेकिन हमें तो ऐसे पारस गुरु की आवश्यकता है, जो लोहे को छूकर पारस ही बनादे।[5] मैंने सब मतों की परीक्षा करके देख लिया है, सद्गुरु के मत के समान, दूसरा कोई नहीं है। गुरु ने मेरे भ्रम के पर्दे को हटा

---

(१) जो साचा सत गुरु मिलै, तो साचा देवैं ज्ञान।
मन को टांको काढिकै, कंचन करै निधान ॥
—अणभै वाणी; पृ० ४

(२) जीव परचो भवकूप, अपणै बल नहि पार है।
सत गुरु केवटरूप, राम नाम निज नाव है ॥
—वही; पृष्ठ ५

(३) रामचरण सत गुरु बिनां, सब जग भूला जाय।
साच झूठ की गम नही, खळ गुळ एकै भाय ॥
—वही; पृष्ठ ५

(४) गिरिवर जिसा अतोल है, सायर जिसा अथाह।
शशि समान शीतल सदा, धीरज ज्यूं वसुधाह ॥
—वही; पृष्ठ ३८

(५) पारस मिल कंचन करै, सो काचा परबोध।
पारस मिल पारस करै, ऐसा सत गुरु सोधि ॥
—वही; पृष्ठ ३८

दिया है और घर में ही सार तत्व को दिखा दिया है।[१] गुरु पीर की कृपा से सुख का स्रोत निकल पड़ा है, अब तो संसार के सारे दुःख दूर हो गये हैं। अब मुझे जो आनन्द मिल रहा है, उसके सामने इस पृथ्वी का राज्य तो क्या, स्वर्ग का ऐश्वर्य और ब्रह्मलोक का सुख भी अच्छा नहीं लगता।[२]

स्वामीजी ने कृतघ्न शिष्यों को भी बहुत फटकारा है। कृतघ्नियों को व्यभिचारिणी स्त्री की तरह बताया है; जो खाना तो 'खसम' का खाती है, पर प्रेम पराये पुरुष से करती है।[3] जो केवट के साथ दगा करता है और फिर तिरना भी चाहता है, यह असंभव है। ऐसा व्यक्ति तो अध बीच में ही डूबेगा।

स्वामीजी ने लोभी गुरु को **'खांड गलेपया मींगणा'** (उष्ट्र शकृत) कहा है, जो **'कदेन खुरमां होय'** किसी भी हालत में खुरमां (सादा पेठा) नहीं हो सकता; यदि कोई गलती से उसे खाने की कोशिश भी करे तो फिर दुबारा तो मुँह में रखने का नाम तक नहीं लेगा।

गुरु तो ऐसा करो, जिससे ज्ञान मिले। ऐसे मंगते को क्या गुरु बनाना, जो अपने शिष्यों से धान मांगता है।

---

(१) **सब मत देख्या जोय, सतगुरु मत सम को नही।**
भ्रम का पड़दा खोय, सार दिखाया घर मंही॥

—अणभै वाणी; पृष्ठ ३८

(२) **गुरु पीर कृपा सुख सीर खुली, जग दीरघ दुःख बिलावता है।**

× × × ×

कहा राज मही सुर साज सही, ब्रह्मलोक का सुक्ख न भावता है।

—वही; पृष्ठ १००

(३) **खाणा खावै खसम का, पर पुरुषां सूं हेत।**
यूं नुगरा व्यभिचारणी, नाम गुरु का लेत॥

—वही; पृष्ठ ४२

दाता सतगुरु कीजिए, जासूं पावै ज्ञान।
मंगता सूं कहा पाइये, जो शिख पै मांगै धान ।।

गुरु चंट और यदि चेला भी चंट मिल जाय तो फिर दोनों को ही डूबना है। ऐसा गुरु तो पाषाण की नौका है, जो खुद डूवेगा और दूसरों को भी डुबोवेगा।

जव गुरु अज्ञानी है तो विचारे शिष्यों को तो इधर उधर भटकना ही पड़ेगा। जव दूल्है के लार टपकती हो तो वेचारे वराती क्या करें !

पड़ै बींद मुख लाल तबै कहा करै वराती ।

× × × ×

शिख शाखा बिचल्या फिरै ज्यां गुरू ज्ञान गत होय ।[1]

गुरु तो ऐसा हो जो चौरासी का फंद काट दे। शरीर के रोगों का क्या, उनको दूर करने के लिये दवाइयाँ भी वहुत और वैद्य भी वहुत !

राम चरण तन रोग का, बहु दांरू वहु वैद ।
सत गुरु ऐसा कीजिये, काटै चौरासी की कैद ।।[2]

गुरु भी अन्धा और शिष्य भी अन्धा, दोनों ही 'हिया फूट' (ज्ञान चक्षुहीन) हों, तो फिर पार जाने का रास्ता ही क्या ! **'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।'** इन दोनों को वल वतलाने वाले ऊँट ही समझो, जो इधर उधर गाल वजाते घूमते हों। ऐसे गुरु-शिष्य तो संसार को सुरड़ (एक दम सफाचट) कर खाने की नीयत से ही वाने का घमण्ड किये डोलते हैं। उन्हें राम से कोई मतलव नहीं।

गुरु निरंध शिख अंधला, उभय मिले हिय फूट ।
फिरै जु गाल बजावता, जैसें बगदी ऊंट ।

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २१५
(२) ,, ,, ,, २१६

जैसे बगदी ऊंट, मई आयो ज्यूं डोलै ।
बांनां को अभिमान, बचन क्यूं का क्यूं बौलै ।
जगत सुरड़ खाता फिरै, होसी राम अरूठ ।
गुरु निरंध शिख अंधला, उभय मिले हिय फूट ।[१]

गुरु ज्ञानी हो और शिष्य अन्धा हो तो, चाहे गुरु कितना ही ज्ञान देने की कोशिश करे, वह सफल नहीं हो सकता । चाहे करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा एक साथ ही क्यों न उगें, उससे क्या अन्धे के नेत्रों में उजास हो सकता है ?

कोटिक चंदा ऊगवै, कोटिक अर्क उदोत ।
तो ही नेतरां अन्ध कै, कदै उजास न होत ॥[२]

कृतघ्न शिष्य अपनी करतूत से बाज नहीं आने का ! हाथी ने गधे का बड़ा उपकार किया, वह उसे ईख खिलाने के लिए खेत में ले गया; लेकिन गधा अपनी आदत से लाचार । हाथी पर दुलत्ती झाड़ने लगा—

रामचरण गैंवर कियो, खैंबर सूं उपकार ।
ईख चरावत अवगुणी, खर करी दुलतयां मार ॥[३]

शिष्य पेटू हो और गुरु कामी, तो फिर खरे खोटे की पारख कौन करे—

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २१७

(२) मिलाइये—

अ. फूले फले न बेत, जदपि सुधा बरसहिं जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिले विरंचि सम ॥

— गोस्वामी तुलसीदासजी

आ. अणभै वाणी; पृष्ठ ६५७ ।

(३) अणभै वाणी; पृष्ठ ६५८ ।

शिष्य मिलै पेटार्थी, गुरु काम रत होय ।
कुण परखै खोटा खरा, उभय स्वार्थी सोय ॥[१]

स्वामी जी महाराज की 'गुरु महिमा' नाम की एक लघु कृति भी बड़ी सुन्दर है, जिसका रामस्नेही सम्प्रदाय में बड़ा आदर है; इस रचना को नित्य-पाठ के रूप में व्यवहृत किया जाता है। यहाँ इसका प्रारंभिक अंश उद्धृत किया जा रहा है—

प्रथम कीजै गुरु की सेव ।
ता संग लहै निरंजन देव ॥
गुरु किरपा बुधि निश्चल भई ।
तृष्णा ताप सकल बुझि गई ॥
मैं अज्ञान मति का अति हीन ।
सत गुरु शब्द भया परवीन ॥
सत गुरु दया भई भरि पूर ।
भर्म कर्म सांशो गयो दूर ॥
गुरु की पूजा तन मन कीजे ।
सतगुरु शब्द हृदय धरि लीजे ॥[२]

सन्त या साध

पथ प्रदर्शक गुरु या शिष्य के मिल जाने पर भी साधक के लिए साधु व सन्त के संसर्ग में रहने की आवश्यकता है। जब तक उसके चतुर्दिक् आध्यात्मिक वातावरण परिव्याप्त न हो, तब तक मार्ग से हटने व फिसलने की संभावना है। निर्गुण–साहित्य में सन्त या साध की भूरिशः चर्चा व अर्चा है। स्थान स्थान पर उसका गुण-ग्राम गायन है।

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २१७
(२) " " " २०१

सन्त शब्द अनेक अर्थों में व्यवहृत है। साधारणतः सन्त का अर्थ श्रेष्ठ पुरुष है; पर, व्यवहारतः निर्गुण कवियों के लिए यह शब्द सीमित हो गया है।

सन्त शब्द के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ— (१) **'सनति संभवति लोकाननु गृह्णति'**— अर्थ – लोकानुग्रहकारी। (२) **'शं सुखं ब्रह्मानन्दात्मकं विद्यते यस्य'**— ब्रह्मानन्द सम्पन्न व्यक्ति। (३) **'सनोति प्रार्थितं फलं प्रयच्छति'**— अभीष्ट फलदाता। (४) **'अस भुवि'** से शतृ प्रत्यय होकर सत् शब्द बनता है, जिसके प्रधान दो अर्थ हैं— विद्यमान और श्रेष्ठ। वेदान्त सिद्धान्त में किसी भी पदार्थ की ब्रह्म को छोड़ कर स्वतंत्र सत्ता नहीं, ब्रह्म कल्पित समस्त विश्व में शुक्ति कल्पित रजत में इदंता के समान अधिष्ठान ब्रह्म संज्ञा का ही भान होता है, अतः त्रिकालाबाध्य ब्रह्म तत्व ही पारमार्थिक सत्ता-युक्त होने से सत् शब्द का वाच्यार्थ है। .... सत् शब्द का प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में 'सन्तः' ऐसा रूप बनता है। उसी का अपभ्रंश सन्त शब्द सत्पुरुषों के लिए हिन्दी में प्रयुक्त होता है।[1]

'जो भगवान का स्वरूप है वही सन्त का स्वरूप है। सन्त का कोई लक्षण नहीं बतलाया जा सकता। जिसमें सब हैं, जो सब है, जो सब से अलग है और जिसमें सब का अत्यन्ताभाव है, वही सन्त है।'[2] **'जगाच्या कल्याणा संतांच्या विभूति।'** संसार का कल्याण ही सन्तों की विभूति है।[3] त्रिकाल में एक रस रहने वाले आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार कर लेने से वे वस्तुतः सत् हैं। 'सत्' शब्द का अर्थ अस्तित्व का द्योतक है। इस जीवन से पूर्व और इसके अनन्तर अपनी ध्रुव सत्ता का जिनको प्रत्यक्ष ज्ञान

---

(१) 'वेद में सन्त' शीर्षक लेख— वेद दर्शनाचार्य श्री मण्डलेश्वर श्री स्वामीजी श्री गंगेश्वरानन्दजी महाराज; 'कल्याण' सन्त अङ्क; पृष्ठ ४६

(२) सन्त का स्वरूप— श्री उड़िया बाबाजी के विचार; 'कल्याण' संत अङ्क; पृष्ठ ३

(३) सन्त तुकाराम।

हुआ है।[1] अस्तीति सन्---जो है वह संत— संत के सिवाय अन्य का होना न होना बराबर हैं।[2]

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने सन्त शब्द की व्युत्पति दो प्रकार से मानी है। वह 'सत्' के बहु वचन से हो सकती है, जिसका हिन्दी में एक वचन में प्रयोग हुआ है, अथवा शान्त का अपभ्रंश रूप हो सकता है, जैसा पाली भाषा में होता है। पहली व्युत्पत्ति से सन्त के माने होंगे--- जो सत् हैं अथवा जिसे सत् की अनुभूति हो गई है ; दूसरी से जिसकी कामनाएँ शान्त हो गई हैं। दोनों अर्थ सन्त पर ठीक उतरते हैं।[3] सन्त शब्द का प्रयोग प्रायः बुद्धिमान्[4], पवित्रात्मा[5], सज्जन[6], परोपकारी[7], वा सदाचारी[8], व्यक्ति के लिए किया जाता है। धम्मपद में यह शब्द शान्त के अर्थ में आया है।[9]

'सन्त' शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ चाहे कोई हो, पर यह तो स्पष्ट है कि सन्त साक्षात् कृतधर्मा पथिकृत ऋषि है ; वह दुःख-सुख के द्वन्द से अतीत है, उसकी कथनी-करणी के बीच सामंजस्य है। वह निःस्पृह, निर्वैर,

(१) 'सन्त चर्चा' शीर्षक लेख— पं० श्रीकृष्णदत्त भारद्वाज; 'कल्याण' संत अङ्क पृष्ठ ६५।

(२) 'सन्त या सन्' शीर्षक लेख— देवर्षि पं० रामनाथ शास्त्री; 'कल्याण' संत अङ्क पृष्ठ ६५।

(३) योग-प्रवाह ; पृष्ठ १५८, लेख—सन्त

(४) सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः

—कालिदास

(५) प्रायेण तीर्थाभिगमोपदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः

—भागवत ; १, १६, ८

(६) बंदो सन्त असज्जन चरणा। दुख प्रद उभय बीच कछु बरणा।

—रामचरित मानस।

(७) 'सन्तः स्वयं परहिते विहिताभियोगः।' —भर्तृहरि।

(८) 'आचार लक्षणो धर्मः, सन्तश्चाचार लक्षणाः।' —महाभारत

(९) 'सन्तं अस्स मनं होति।' —अर्हन्त वग्ग ; गाथा ७।

शान्त, निःसंग और अलिप्त है। उसी सन्त या साध के गुण निर्गुणोपासक कादियों ने गाये हैं। ऐसे ही सन्तों के 'शबद' जब सामने आते हैं, तो ऐसा अनुभव होता है 'जैसे हिमाचल की शुभ्र रजत रेखा किसी ने मानस क्षितिज पर' खींच दी हो।[१]

अणभै वाणी में साध या सन्त का विशद वर्णन हुआ है। जिसके नेत्र व वचन निर्मल हों, हृदय उदार हो। नाम का आधार हो, वह साधु शिरोमणि है। लोभ, मोह, हिंसा व गर्व-गुमान से दूर हो। जिसकी दुर्मति मिट गई हो, यह साधु का लक्षण है। वह एक मात्र अलक्ष्य की ही आशा रखता है और किसी की भी नहीं।

निर्मल नैंन बैंन भए निर्मल, निर्मल चित्त उदार।
रामचरण वे साध सिरोमणी, निर्मल नाम अधार॥
लोभ मोह हिंसा नहीं, मैं तैं गर्व गुमान।
रामचरण दुर्मति मिटी, तब साधू लछ परमांन॥
आसा एको अलख को, दूजी आसा नांहि।
तन मन दे हरि सूं मिलै, तो पहुंचे निज गांई॥[२]

सन्त लोग स्वाद, संग्रह व श्रृंगार का तिरस्कार करते हैं। वे तो केवल 'राम रत्त' ही होते हैं और संसार से विरक्त।

संग्रह स्वाद सिगार, रामचरण ए जगत सुख।
संतां कै तस्कार, जे जनरत्ता राम सूं॥
संत रता निज राम सूं, जगत रता न जिताय।[३]

साध तो ब्रह्म मय अखण्ड विश्व में जल में मीन की तरह विचरण करता है—

(१) श्री वियोगी हरि —सन्त-सुधा-सार; 'दो शब्द' पृष्ठ ५
(२) अणभै वाणी; पृष्ठ १६
(३) " " " १८

साध दशूं दिश कूं बिचरै ऐसें
नीर बिषै जैसें मीन रहावै।

× × ×

रामचरण दशूं दिश ब्रह्म ही
ब्रह्मज्ञानी ब्रह्ममय बिचरावै ॥[1]

स्वामीजी ने साध को राम का रजपूत कहा है, जो सांसारिक मोह ममता की फौज से बड़ी बहादुरी के साथ लड़ता है। साध व शूरवीर का यह रूपक बहुत सुन्दर बन पड़ा है—

चढ़ी काल् की फौज बींण दुनियाँ कूं खावै।
साहि शब्द समशेर संत कोइ दाव चुकावै।
निशि दिन रहै सुचेत अणीं आव ही मोड़ै।
छीलर कूं छिटकाय नेह सागर सूं जोड़ै।
रामचरण ये संतजन राम तणां रजपूत।
जिनकूं देख्यां थर हरै धर्म राय का दूत ॥[2]

सच्चा सन्त वह है, जो छीलर ताल को छोड़ कर सागर से अपना नाता जोड़ लेता है— मीराँ ने भी 'म्हारो भयो समदराँ सीर' कहकर उस घर से ताली लगने की बात कही है। तभी तो मन का द्वन्द व संशय छिन्न-मूल हो सकता है।

सच्चा साधु सारे वाह्याडम्बरों को छोड़कर विरक्त भाव से संसार में विचरण करता है। संसार में सारा झगड़ा तो 'मान व

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ८८
(२) " " " १११

उदर' का है[1]— सन्त उससे उदासीन हो 'राम रत्ता' होता है। सन्त तो 'परगट रामरूप' है।

[ऊ] दार्शनिक धरातल

सन्त-वाणी की आधारशिला स्वानुभूति है; जिसके बल पर वे कोरे शास्त्र ज्ञान सम्पन्न पर अनुभूति-शून्य पंडितों को ललकारते रहे। अधिकांश सन्त बहुश्रुत थे, बहु पठित नहीं थे; उन्हें अपनी अपरोक्षानुभूति का ही संबल था, उसी का विश्वास था और वही उनके गर्व का कारण थी।

विचारणीय प्रश्न यह है कि सन्तों की वाणी का अध्ययन दार्शनिक दृष्टि से करना समीचीन है या नहीं। इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। सन्त-वाणी का अवगाहन करते समय यह सत्य दृष्टि से ओझल नहीं होना चाहिये—

'ये दार्शनिक न होकर आध्यात्मिक महापुरुष मात्र थे।' पर साथ ही यह समझना भी ठीक नहीं है; जैसा कि डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने कहा है—'लोग साधारणतः यही समझते रहे कि इन अशिक्षित सन्तों के दार्शनिक विचार अस्पष्ट, अपरिणमित, क्रम रहित और असम्बद्ध है। किन्तु यह स्थिति वास्तविक नहीं है। इसके विपरीत निर्गुण सम्प्रदाय एक ऐसी विचार धारा प्रस्तुत करता है जो सुसंगत

---

(१) मांन उदर के कारणैं शठ एता करै कलाप।
कहुं पंडित कहुं गुंणी कहुं रंग राग सुनावै।
कहूं विचल बहु वाच कहूं मौनी होइ जावै।
कहूं नग्न संन्यास कहूं कंथा कोपीना।
कहूं कर पातर नांहि कहूं कर कमंडलु लीना।
जगत् मुग्ध डहकावणीं जिसो भांड को साप।
मांन उदर के कारणैं शठ एता करै कलाप॥

—अणभै वाणी; पृष्ठ ११५

है और उसके उपदेशों के आधार पर एक विशिष्ट पद्धति का निर्माण किया जा सकता है।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता दूसरी थी। उनका कहना है 'निर्गुण पन्थ के सन्तों के सम्बन्ध में यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिये कि उनमें कोई दार्शनिक व्यवस्था दिखाने का प्रयत्न व्यर्थ है। उन पर द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि का आरोप करके वर्गीकरण करना दार्शनिक पद्धति से अनभिज्ञता प्रकट करना है।[2]

पं० परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में 'सन्त लोग दार्शनिक नहीं थे और न उन्होंने इसके लिये कभी दावा ही किया है। वे लोग धार्मिक व्यक्ति एवं साधक थे। परम तत्व के विषय में किसी बात का वैज्ञानिक ढंग से निरुपण करना अथवा तद् विषयक प्रत्येक प्रश्न की जांच के लिये कोरे तर्क की कसौटी लिये फिरना उनका स्वभाव न था।'[3]

निःसंदेह सन्त कोई दार्शनिक सिद्धान्तों से एक दम बंधकर नहीं चलते थे। फिर भी उनकी वाणी का अध्ययन करते समय हमारे मन में सहज जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि वे ब्रह्म, जीव, जगत् व माया आदि के सम्बन्ध में अपने क्या विचार रखते हैं और भारतीय प्राचीन दार्शनिक पद्धति से कहाँ तक साम्य व वैषम्य लिये हुए हैं! इसी दृष्टि से सन्तों का अध्ययन एक दम व्यर्थ हो, ऐसा नहीं लगता। बहुत से विद्वानों ने इस दिशा में प्रयास किये हैं, जो श्लाघ्य हैं।

सन्त सार ग्राही थे, अतः बहुत से विचारों का एक स्थान पर आ जाना स्वाभाविक है। विद्वान् अपनी रुचि व आग्रह के अनुसार वाणी के ही प्रमाण से एक सन्त को अलग अलग सिद्धान्तों का अनुयायी बताते रहते हैं।

---

(१) हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय; प्रस्तावना— च।

(२) हिन्दी साहित्य का इतिहास; पृष्ठ ६२;
सं० २००३ का संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण।

(३) सन्त काव्य; भूमिका—पृष्ठ २१।

डा० बड्थ्वाल ने सन्त-साहित्य का बहुत आलोडन-विलोडन किया था। उनका कहना है 'हमें उनमें कम से कम तीन प्रकार की दार्शनिक विचारधाराओं के स्पष्ट दर्शन होते हैं। वेदान्त के पुराने मतों के नाम से यदि उनका निर्देश करें तो उन्हें अद्वैत, भेदाभेद और विशिष्टाद्वैत कह सकते हैं। पहली विचारधारा के मानने वालों में कबीर प्रधान हैं। दादू, सुन्दर दास, जग जीवनदास, भीखा और मलूक उनका अनुगमन करते हैं। नानक और उनके अनुयायी भेदाभेदी हैं और शिवदयालजी तथा उनके अनुयायी विशिष्टाद्वैती। प्राणनाथ, दरिया द्वय, दीन दरवेश, दुल्हे शाह इत्यादि शिव-दयाल की ही श्रेणी में रखे जा सकते हैं।'[१]

जिस तरह से इस चिन्तन की धारा बह रही है, उससे तो यह स्पष्ट सा है कि श्री रामचरणजी महाराज भी विशिष्टाद्वैतवादियों के अन्तर्गत हैं। दरिया द्वय विशेषतः रैण के दरियावजी महाराज और राम-चरणजी महाराज की विचार-सरणि में गहरा साम्य है।

यों रामचरणजी महाराज रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में आते हैं। रामानुजाचार्यजी विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक थे। विशिप्टाद्वैत के सिद्धान्त आगे चलकर स्वामी रामानन्दजी के व्यक्तित्व से नया मोड़ ले लेते हैं। साकार की कट्टरता व ब्राह्मण-शूद्र भेद में कमी आने लगती है। स्वामी रामानन्दजी ने समाज के निम्न स्तर को अपने शिष्य रूप में स्वीकार कर रामानुजी परम्परा से भिन्न पथ अपनाया। उसके बाद निर्गुण पंथियों का प्रबल प्रवाह चारों ओर बह चला। राजस्थान में गलता उसका केन्द्र बना, वहीं की शिष्य परम्परा में स्वामी सन्तदासजी हुए, उनके शिष्य कृपारामजी और कृपारामजी के शिष्य रामस्नेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक आराध्य रामचरणजी महाराज।

---

(१) [अ] हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, तीसरा अध्याय पृ० ११५
[आ] अंडर हिल ने कबीर को विशिष्टाद्वैतवादी और फर्कुहर ने कबीर को भेदा भेदवादी बताया है, लेकिन यह मत विद्वानों को स्वीकार्य नहीं।

रामचरणजी महाराज की 'अणभै वाणी' विशेषतः सन्त परम्परा की सम्पूर्ण विशेषताओं से सम्पन्न है। स्वामीजी की प्रमुख विचारधारा-अद्वैतवाद की है, जिसमें विशिष्टाद्वैत की विचारधारा भी अन्तर्मुक्त हो गई है। यों तो कबीर में भी भेदा-भेदी व विशिष्टाद्वैती विचारों के समर्थन में उनकी वाणी के अंश खोजे जा सकते हैं; पर, ये विकास के सोपान हैं। वाणी का अध्ययन खण्डशः न करके समग्र वाणी को एक साथ लेकर दार्शनिक विचारों का अध्ययन किया जाना चाहिये। हमें देखना चाहिये कि वाणी का मूल सूत्र क्या है, जो उसमें आद्यन्त अनुस्यूत है।

सन्त साहित्य में एक ही बात जो अनुभूतियों की कमी-बेशी के अनुसार या अनुभूतियों की पहुँच के अनुसार अनेक प्रकार से कही गई है।[1] अन्तर मात्रा का है, विपरीत अनुभूति का नहीं है। कहीं-कहीं साधना के उत्तरोत्तर विकास के साथ साथ पूर्व के स्तर छूटते जाते हैं और आगे का पथ प्रशस्त होता चलता है। कहीं-कहीं एक ही सन्त में जो विचार-भेद मालूम होता है, वह प्रारंभिक सोपानों के कारण—जिनको वह आगे चलकर छोड़ता जाता है।

सन्त विनोबा ने सन्तों का वर्गीकरण निर्गुण-निराकार व सगुण-साकार की मान्यता के आधार पर किया है। उनकी मान्यता है—

'कुछ ज्ञानी निर्गुण निराकार का ध्यान करते हैं, जो सब कल्पनाओं से रहित है। उसका ध्यान करने वाले अक्सर 'ओंकार' को पसन्द करते हैं। लेकिन राम, गोविन्द, नारायण, हरि आदि नाम लेकर भी निर्गुण निराकार का भावन कर सकते हैं। कबीर, नानक आदि में ही नहीं, तुलसीदास तक में यह पाया जाता है। दुनियां के सारे साहित्य में निर्गुण निराकार का सब से श्रेष्ठ प्रतिपादन उपनिषदों में मिलता है।

कुछ ध्यानी नाम के साथ सगुण निराकार का ध्यान करते हैं। अक्सर हम जहां निर्गुण-निराकार को छोड़ते हैं, सगुण साकार में आ जाते हैं। लेकिन इन दोनों के बीच सगुण निराकार की भी एक भूमिका होती है।

---

(१) एकं सत्, विप्राः बहुधा वदन्ति।—श्रुति।

इसमें भगवान् को निराकार मानते हुए भी दया, वात्सल्य आदि अनन्त गुणों के परम आदर्श के तौर पर माना जाता है।'[1]

इस प्रकार विनोवाजी के अनुसार मूलतः तीन प्रकार के सन्त होते हैं—

(१) निर्गुण-निराकार (२) सगुण-निराकार (३) सगुण-साकार। इस दृष्टि से स्वामी रामचरणजी की वाणी में भगवान का सगुण निराकार रूप आया है; पर, सगुण के होते हुए भी वह अलिप्त है—व्योमवत्; यही उसका वैशिष्ट्य है और यही मध्य भूमिका है।

आगे चलकर विनोवाजी यह भी स्वीकार कर लेते हैं कि 'हमारे सन्तों की पाचन शक्ति प्रखर होने के कारण ये सारे भिन्न भिन्न दर्शन उनको विरोधी नहीं मालूम होते, वल्कि इन सव को वे एक साथ हज़म कर लेते हैं।[2]

निष्कर्ष यह है कि सन्त विचार-धारा एक संश्लिष्ट विचार-धारा है। इसका मतलव यह नहीं कि सन्तों ने जान वूझ कर इधर उधर की वातों को वटोर कर कोई अपना मत चलाया हो। सन्त तो सम्प्रदायों व पन्थों के विरोधी थे। वे सारग्राही थे, जहाँ उन्हें 'सत्' की अनुभूति हुई, उसे स्वीकार कर लिया। आचार्य क्षितिमोहन सेन के शव्दों में 'उनकी विश्वव्यापी क्षुधा' है, जहाँ भी उन्हें सत्य मिला, उसे समेट लिया।

'अणभै वाणी' में भी स्थान स्थान पर ब्रह्म, जीव, जगद् व माया सम्वन्धी विचार आये हैं। उनके आधार पर दार्शनिक चिन्तना की जा सकती है। पर, सच वात तो यह है कि सन्त-वाणी निर्गुण व सगुण की सीमा में भी नहीं वांधी जा सकती। सन्त स्वतंत्र विचारक होता है, उसका चिन्तन स्रोत निर्वन्ध होता है, उसको सीमावद्ध करना कठिन है। कवीर को कोई विशिष्टाद्वैतवादी, कोई द्वैताद्वैतवादी व कोई अद्वैतवादी वताता है। 'डा० व्रह्मचारी के मत से उसमें व्याप्तिवाद, प्रतिविम्ववाद और स्वरूपवाद

---

(१) सन्त-सुधा-सार; प्रस्तावना; पृष्ठ १३-१४

(२) „ „ „ „ „ १५

समान रूप से परिव्याप्त है।'[1] किन्तु पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर की साखी के साक्ष्य से प्रमाणित किया है 'हद्द या सीमा में मनुष्य बसते हैं, बेहद्द या सीमा भरण में साधु बसते हैं। पर असल सन्त वह है जो इन दोनों को छोड़ गया है, सीमातीत असीम का प्रेमी है।'[2] अधिकांश सन्तों की वाणी में जो ब्रह्म का रूप निरूपण हुआ है, वह कबीर की तरह द्वैत-अद्वैत, निर्गुण-सगुण इन सबसे परे है। वह परात्पर है।

रमतीत राम

रामस्नेही सम्प्रदाय का सबसे प्रिय शब्द राम है, उसी राम से स्नेह करने के कारण इनका नाम रामस्नेही सार्थक है। राम शब्द का अर्थ है— जो सब जगह, सब में रमण करता है। यह राम दाशरथि राम नहीं है।[3] यह एक शब्द में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का सृजन करने वाला है।[4] यह निरंजन ब्रह्म है।[5] ब्रह्म नित्य है।[6] यह अचल अखण्ड अभंग है, इसका नाश कभी नहीं हो सकता। यह सत शब्द है।[7] न देश है, न काल है। न

---

(१) निर्गुण-धारा; बैजनाथ-विश्वनाथ; पृष्ठ १३०।

(२) हद बेहद दोनों तजी, अवरन किया मिलान।
कहँ कबीर ता दास पर, वारों सकल जहान।
—कबीर; पृष्ठ २१५

(३) रमतीत राम गुरुदेव जी, पुनि तिहूं काल के संत।
—अणभै वाणी; पृष्ठ ३।

(४) करता करे एक शब्द में, अनन्त कोटि ब्रह्मंड।
—अणभै वाणी; पृष्ठ १७।

(५) निकट निरंजन ब्रह्म है। „ „ „ २६।

(६) ब्रह्म नित्य माया अनित्य; „ „ „ ३७।

(७) अचल अखंड अभंग नित नाश कदै नहीं होय।
रामचरण सत शब्द है, नहचै कीजे सोय।
—अणभै वाणी; पृष्ठ २७।

शुभ है, न अशुभ है, न भेद है, न अभेद है; वह आत्मपति और परमात्मा है।[१] राम घट घट व्यापी है।[२] राम निराकार है।[३] वह निराधारों का आधार है। सबका सिरताज है। अनाथों का नाथ है। गरीब निवाज है।[४] वह न श्वेत है, न श्याम, न रक्त है और न हरित; वह सत, रज और तम से परे है। वह न दृष्टि का विषय है और न मुष्टिग्राह्य है। उसका नाम सब काम को तृप्त करता है।[५] वह पतित पावन है।[६] वह सर्वाङ्गपूर्ण है, उससे कुछ भी खाली नहीं है।[७]

ब्रह्म का यह निरूपण शांकर अद्वैत के अनुकूल ज्यादा है। शांकर मत के अनुसार ब्रह्म एक अखंड तथा अद्वितीय है। ब्रह्म के अतिरिक्त किसी

---

(१) देश काल पुनि शुभ अशुभ, भेदाभेद सु नांहि।
आत्मपति परमात्मा, बरत रह्यो सब ठांहि॥
—अणभै वाणी; पृष्ठ २७।

(२) ऐसें घट घट राम है। „ „ „ ४७।

(३) शब्द ब्रह्म निरकार है। „ „ „ ५४।

(४) निरधारां आधार सकल शिरताज है,
अन्नाथूं के नाथ गरीब निवाज है।
„ „ „ ७६।

(५) स्वेत जर्द अरु रक्त सब्ज नहि श्याम रे।
सत रज तम त्रिय पास नहीं किस जाम रे।
दृष्टि मुष्टि नहिं नहिं परै रमैया राम रे।
परिहां रामचरण तिस नाम तृप्ति सब काम रे।
—अणभै वाणी; पृष्ठ ८३।

(६) पतित उधारण बिड़द तुम्हारो, अबकै राम पतित कूं त्यारो।
अजामील गणिका सी त्यारी, उनसूं मैली नीति हमारी॥
—अणभै वाणी; पृष्ठ ६६२।

(७) सर्वंग पूरण राम है कहुं खाली कह्या न जांहि।
—अणभै वाणी; पृष्ठ ३२८।

की भी सत्ता नहीं। ब्रह्म स्वजातीय, विजातीय और स्वगत भेद से शून्य है। श्री रामानुजाचार्य ब्रह्म को एक व अखण्ड अवश्य मानते हैं, किन्तु उसे निरंश नहीं मानते। जीव व जगत् ब्रह्म के अंश हैं। रामानुजाचार्य जी ब्रह्म को निर्गुण व निर्विशेष नहीं मानते। आनन्द, दया आदि का ब्रह्म में निधान है, अतः निर्गुण नहीं।[1]

रामचरणजी महाराज ने ब्रह्म को गरीब निवाज, अनाथों का नाथ आदि भी कहा है; यह वैष्णवी भक्तों के अनुसार ब्रह्म का सगुण निरूपण है। स्वामीजी ने कहीं कहीं भगवान् के अवतार लेकर भक्तों के कष्ट दूर करने की बात भी कही है।

ब्रह्म-जीव

शंकर मत में ब्रह्म और जीव की एकता सिद्ध है। जीव ब्रह्म का ही आभास अथवा प्रतिबिम्ब है, वह ब्रह्म के ही समान नित्य मुक्त और स्वप्रकाश है; रामानुज के मत से यह सिद्धान्त ठीक नहीं। विशिष्टाद्वैत के अनुसार जीव ब्रह्म का अंश है, दोनों में अंशांशि भाव सम्बन्ध है। रामानुज मत में जीव ब्रह्म का न आभास है, न प्रतिबिम्ब और न वह नित्यमुक्त है। जीव अणु है, ब्रह्म है विभु; जीव है अल्पज्ञ, ब्रह्म है सर्वज्ञ। ऐसी दशा में दोनों का भेद नितान्त असंभव है।

'अणभै वाणी' में 'जीव व शीव' के एक होने की बात जगह जगह पर प्रतिपादित है। यद्यपि यहाँ 'अहं ब्रह्मास्मि' व 'शिवोऽहम्' की रट नहीं लगाई गई हैं; फिर भी जीव ब्रह्म की एकता का वर्णन खूब हुआ है। कहीं कहीं स्वामीजी ने जीव को ब्रह्म का अंश बताया है, पर आगे चलकर भ्रम का पर्दा हटने पर दोनों को एक भी बतला दिया है। इस प्रकार ब्रह्म व जीव सम्बन्धी विचार भी शांकर मत के अनुकूल ज्यादा है, हां; अंशांशि भाव व जीव के दैन्य की चर्चा रामानुज-मत के मेल में भी कही जा सकती है।

---

(१) विस्तार के लिए देखिए— भागवत सम्प्रदाय;
श्री बलदेव उपाध्याय; पृष्ठ २१२

जीव ब्रह्म का अंश है, ज्यूं रवि का प्रतिविम होय ।
घट परदा दूरा भयां, ब्रह्म जीव नहिं दोय ॥[1]

यहाँ जीव को ब्रह्म का अंश बता कर तुरन्त ही रवि का प्रतिविम्ब बता दिया और दोनों की अद्वैत स्थिति आगे चलकर कह दी गई। यह अंशांशि भाव भी रामानुज मत के मेल में नहीं है।[2]

आत्मा व परमात्मा के एकाकार होने के चित्र अनेक स्थानों पर आये हैं—

राम रसायण अजब सार का सार रे ।
पीया प्रेम उपाय गया जग पार रे ।

---

(१) मिलावें—

अ. जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तथ किथो गियानी ।
—कबीर ।

आ. घूंघट का पट खोल रे तोहि राम मिलेंगे । —कबीर ।

(२) महात्मा कबीर भी जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं। 'कहु कबीर यहु राम को अंश।' जहाँ तक अंशांशि भाव का सम्बन्ध है, वह अद्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी और विशिष्टाद्वैतवादी तीनों को ही मान्य है। किन्तु तीनों के मतों में अन्तर है। द्वैताद्वैतवादियों का मत है कि ब्रह्म अखण्ड और अपने स्वरूप में पूर्ण है। फिर भी उसमें अनेक शक्तियाँ हैं। यह शक्तियाँ ही उसका अंश है। यद्यपि प्रत्येक शक्ति दूसरे से भिन्न है तथापि ब्रह्म से सब का तादात्म्य है।....विशिष्टाद्वैतवादी जीव को ब्रह्म का शरीर मानते हैं। जीव और ब्रह्म दोनों चेतन हैं। ब्रह्म विभु है। जीव अणु है। ब्रह्म और जीव में सजातीय और विजातीय भेद नहीं, स्वगत भेद है। ब्रह्म पूर्ण व जीव खण्डित है। अद्वैतवादियों का मत इन दोनों से भिन्न है। वेदान्त सूत्र में कहा है 'जीव ब्रह्म का अंश और तन्मय भी है।'

—कबीर की विचारधारा; डा० गोविन्द त्रिगुणायत; पृष्ठ २२६।

नित्य निरंजन राम मिल्या जाइ दास है ।
परिहां रामचरण निज ज्ञान भयो परकाश है ॥[1]

जैसें धूंम गगन में लीना, उलट न पाछा आया वे ।
अम्बर सूं मिल अम्बर हूवा, तन आकार बिलाया वे ।
× × × ×
निराकार निर्लेप निरंजन, पूर्व थांन मिलाया वे ।
लहरि बुदबुदा जलतें हूवा, जल में उलटि समाया वे ।[2]

जीव व परमात्मा के मिलन को जल व नमक के एकाकार मिलन के सदृश बताया, यह आत्म-ब्रह्मैक्य का प्रतिपादन है--

जल सेती पैदा भया नाम धर्या तब लोंन ।
जल में मिल जल ही भया, लोंन कहै अब कोंन ।
लोंन कहे अब कोंन आप आपो बिसराया ।
यूं जन जगपति का जांन राम भज राम समाया ।[3]

माया व जगत्

निर्विशेष ब्रह्म से सविशेष जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई, इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए माया के स्वरूप को जानना चाहिये । माया ही सृष्टि है । शांकर मत में माया न सत् है, न असत् है, यह दोनों से भिन्न अनिर्वचनीय है । वह त्रिगुणात्मिका व ज्ञान विरोधिनी है, लेकिन ज्ञान के उदय होने से माया का नाश हो जाता है ।

सन्त कवियों ने माया के सर्वव्यापी रूप का बड़ा भयंकर वर्णन

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ५४०
(२) अणभै वाणी ; पृष्ठ ५४०
(३) अणभै वाणी पृष्ठ ६६८

किया है, उसकी चपेट से कोई नहीं बच पाता। रामचरणजी ने 'माया कादो' कहा है। हर्ष-शोक का कारण भी यह माया है—

माया का संग दोष सूँ उपजे हर्ष रू सोग।

सारी सृष्टि माया की उत्पत्ति हैं, एक ब्रह्म को छोड़कर—

सब माया की पैदास है, एक ब्रह्म नां पैदा।
ब्रह्मा विष्णु महेश लग, माया कीया कैद।[1]

स्वामीजी ने इस माया को 'पापणी' कहा है—

रामचरण ई पापणी बहुता राख्या मार।

रामजी की यह माया बड़ी विकट है, जिसका अद्भुत खेल प्रतिपल विश्व-रंग मंचपर होता रहता है—

नाटक अनंत छल छंद भांति भांतिन के,
त्रिगुण किरत बपु चौवीसूँ धराया है।
रामहीचरण याकी कहां लूँ बणाय कहूं,
लीला अदभूत यह रामजी की माया है।[2]

माया कहीं लक्ष्मी के रूप में है, कहीं नारी और कहीं तृष्णा; पर, माया का यह 'मंडाण' क्षणिक है—

माया तणा मंडाण सब नहचै थिरता नांहीं।

माया की छाया में रहने वाला कभी सुखी नहीं हो सकता, यह दुःख रूप है—

माया की छाया बशै जे कदेन सुखिया होय।

माया का नाम तो कमला (कोमल) है, पर इसका बन्धन बड़ा कठोर है—

---

(१) अणभै वाणी पृष्ठ ५५
(२) ,, ,, ,, ,,

देखो कमला नाम है अरु करड़ा जाका बंध ।
सुर नर सबही बांधिया करि करि छल् बल् छंद ।
करि करि छल् बल् छंद बहुत बिधि आडो आवै ।
तपसी जोगी जती मजल नहीं पहुंचण पावै ।[1]

माया का एक सूक्ष्म रूप और है, वह है—मान बड़ाई । बहुत से तपस्वी कंचन कामिनी को तो जीत लेते हैं, पर इस 'झीणी माया' के शिकार हो जाते हैं, फलतः अपने गन्तव्य को प्राप्त नहीं कर सकते—

रामचरण झीणी माया मान बडाई सबकूँ खाया ।

अद्वैत के अनुसार यह सारा संसार मिथ्या है, यह माया का परिणाम है और ब्रह्म का विवर्त[2] हैं । संसार मृग मरीचिका है । रज्जु में सर्प अथवा शुक्ति में रजत की जैसे भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार संसार भ्रान्ति रूप है । तत्वतः यह कुछ भी नहीं है । विशिष्टाद्वैत के अनुसार जगत् भी ब्रह्म का अचित् अंश है, अतः असत्य नहीं ।

स्वामी रामचरणजी महाराज ने संसार की नश्वरता व क्षण भंगुरता का स्थान स्थान पर वर्णन किया है, जिससे लोग राम की शरण में जाकर अक्षय सुख प्राप्त करें । यह संसार शीत कोट व मृग मरीचिका-वत् है—

शीत कोट[3] संसार अथिर सब बीर रे ।
माया छक सुख राज मरीची नीर रे ।

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ७०२

(२) तत्व में अतत्व के भान को ही विवर्त कहते हैं— 'अतत्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदाहृतः ।'

(३) शीत कोट या सीकोट— मरुभूमि में ग्रीष्म के दिनों में तो सूर्य की किरणों से पानी की भ्रान्ति होती है, उसे मृगतृष्णा, मरु मरीचिका आदि कहते हैं, उसी प्रकार सर्दी के दिनों में सूर्योदय के कुछ पहले पश्चिम

मन मृग्गा सत जान प्यास घर दोरि हैं।
परिहां देखत जाय विलाय रहै शिर फोरि हैं।
शीत कोट की ओट पोट पाला तणी।
ज्यूँ मृग तृष्णा नीर सीर दरिया घणी।
ऐसें यो संसार अथिर हैं वीर रे।
परिहां रामचरण भजि राम निर्भय सुख थीर रे।[1]

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी सृष्टि के मिथ्यात्व को बड़े सुन्दर ढंग से दिखाया है, 'विनय पत्रिका' का यह कितना सुन्दर पद है—

जागु, जागु. जीव जड़ ! जोहै जग जामिनी।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन दामिनी ॥१॥
सोवत सपनेहूँ सहै संसृति सन्ताप रे।
बूड्यो मृग-वारि खायो जेवरी को साँप रे ॥२॥
कहैं वेद बुध तू तो बुझि मन मांहि रे।
दोष—दुख सपने के जागे ही पै जांहिं रे ॥३॥
तुलसी जागे ते जाय ताप तिहूँ ताय रे।
राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥४॥

दिशामें 'कोट कंगूरे' बुर्ज आदि से युक्त नगर सा दिखाई देता है; देखने वाला भ्रमित हो जाता है। थोड़ी देर बाद सूर्य के प्रकाश के साथ वह न जाने कहां उड़कर गायब हो जाता है, उसे सी (शीत काल) से बना हुआ कोट-किला-कहते हैं; यही शीत कोट है। दार्शनिकों को संसार के मिथ्यात्व प्रदर्शन के लिए ये दो उदाहरण मरुभूमि से मिले हैं। शीत कोट ही गन्धर्व नगर है। कर्नल टॉड ने भी राजस्थान के इतिहास में अपनी यात्रा के विवरण में एक स्थान पर'सीकोट' के अद्भुत दृश्य को देखने का उल्लेख किया है।

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २५०

इस मिथ्या सृष्टि में केवल ब्रह्म ही सत्य है, उसी की पारमार्थिक सत्ता है। यही विचार स्वामीजी ने अपनी वाणी में व्यक्त किये हैं—

सिरज्या सो सब झूठ है साचा सिरजन हार।

× × × ×

तन मन धन झूठो सबै झूठो कुल परिवार।
झूठै झूठो पकड़ियो झूठो करत बिह्वार।
झूठो करत बिह्वार झूठ ये लोक बडाई।
झूठां मै पचमरचो साच की समझ न आई।

× × × ×

मन कल्पित संसार सूं मति बांधै यारी।'

[आ] सुरति-शब्द-योग

सन्त मत का दूसरा नाम सुरति-शब्द-योग है। यह शब्द योग सन्त मत का प्राण है, मर्म है, उसका सार है, सर्वस्व है। यह सन्त मत का मध्यम मार्ग है, इसमें न तो सिद्धों जैसी महा मुद्रा की साधना है और न हठयोगियों जैसी कृच्छ्र काय साधना। यह लय योग है, यही सहज समाधि है। सभी सन्तों ने 'परचे' के अंग में इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही प्राणवन्त, हृदय स्पर्शी और उल्लासपूर्ण वर्णन किया है।

निर्गुण-पन्थ में साधना का प्रारंभ नाम जप से होता है। यह जप प्रारंभिक रूप में जिह्वा की क्रिया है; पर, धीरे धीरे उसके साथ मन का योग हो जाता है और सुमरण बन जाता है। 'सुमरण वास्तव में आध्यात्मिक दशा में है, जिसमें हृदय अपने आराध्य की ओर झुकता है।' आगे

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २५०

चलकर साधक में 'अजपा जाप' प्रारंभ हो जाता है। अजपा जाप[1] में सब प्रकार की बाह्य क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं। साँस साँस में सहज रूप में नाम जप चलता है। उसके बाद साधक अनाहत नाद को सुनता है, तब जाकर सुरति शब्द में समाती है। कबीर ने इसी को यों लिखा है—

जाप मरे अजपा मरे, अनहद यों मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ताहि काल नहि खाय॥

यह नाम सुमरण ही मंत्र योग है, इसी का नाम सुरति शब्द योग है।

सुरति शब्द योग की व्याख्या करते हुए डा० बडथ्वाल ने लिखा है— 'वह योग जिसके द्वारा सुरति एवं शब्द का संयोग सिद्ध होता है और उक्त सीमाएँ शब्द में फिर से लीन हो जाती है; शब्द योग अथवा सुरति शब्द योग कहलाता है और वह शब्द सर्व प्रथम भगवन्नाम के रूप में मुँह से निकलता है और अन्त में स्वयं शब्द रूप ब्रह्म हो जाता है। इसे सहज योग

---

(१) अ. उस प्रकार की उपासना की पद्धति व स्थिति जिसमें सभी प्रकार के बाह्य साधनों के प्रयोग छोड़ दिये जाते हैं और अन्तः क्रिया मात्र चलती हैं।

—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय; परिशिष्ट—३७७।

आ. वह जप जिसमें किसी प्रकार के स्थूल साधनों का उपयोग न हो; जैसे नामोच्चारण, माला फेरना, किसी अन्य प्रकार से नामों को गिनना आदि। सिद्ध साहित्य में इस प्रकार के जप की चर्चा है। नाथ पंथियों ने इसी प्रकार रात दिन में आने जाने वाले २१,६०० साँसो के आवागमन को अजपा जाप कहा है।·········कबीर ने नाथ पंथियों की पद्धति के अनुसार ही एक श्वास को ओहं दूसरे को सोहं बताया तथा इन्हीं आने जाने वाले साँसो के द्वारा होने वाले जप को 'अजपा जाप' कहा।

—हिन्दी साहित्य कोश; पृष्ठ ९—१०;

(१०) आत्मा की आध्यात्मिक किरण[1]

राजस्थानी भाषा में आज भी 'सुरता' शब्द का प्रयोग 'ईश्वरोन्मुख ध्यान' के लिये प्रचलित है। 'सुरता' का प्रचलित अर्थ उर्ध्वगामिनी चित्तवृत्ति है।

डा० धर्मवीर भारती ने 'हिन्दी साहित्य कोश'[2] में सुरति शब्द पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, 'सुरति व निरति इन दो शब्दों का सन्तों के साहित्य में अत्यधिक महत्व है; किन्तु उनके उद्भव और अर्थ पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ा है। कुछ विद्वानों ने सुरति का अर्थ स्रोत या चित्त प्रवाह किया है। चित्त प्रवाह विज्ञानवाद की याद दिलाता है, किन्तु इस अर्थ में सिद्ध, नाथ या सन्त, किसी ने भी इस शब्द का प्रयोग नहीं किया है। हिन्दी में 'सुरति' के कई अर्थ हो सकते हैं— प्रेम क्रीड़ा, स्मृति, श्रुति।

सिद्धों के दोहों में जहाँ सुरति शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ इसके अर्थ में कोई अस्पष्टता व दुरूहता नहीं है। सरहपा इसे कमल—कुलिश योग के अर्थ में— मैथुन क्रीड़ा द्योतक मानते हैं, 'कमल कुलिश वेवि मज्झठिअ जो सो सुर अ विलास' (दोहा कोष), किन्तु नाथ–सम्प्रदाय में इसका अर्थ बदल गया। ज्ञात यह होता है कि गोरख ने इसके मैथुन परक अर्थ का बहिष्कार कर इसको श्रुति (नाद या शब्द) के अर्थ में ग्रहण किया। नाथ सम्प्रदाय का बहुत पुराना नाम शब्द-सुरति-योग भी बताया जाता है। 'गोरख वानी' में एक स्थान पर गोरख मछीन्द्र संवाद में बताया गया है कि 'सुरति शब्द की वह अवस्था है जब वह चित्त में स्थित रहता है, शब्द अनाहत नाद है, ब्रह्माण्ड व्यापी। निरति इन दोनों से परे निरालम्ब स्थिति, जिसे सहज स्थिति भी कह सकते हैं।' किसी ने निरति को निर्ऋति से व्युत्पन्न माना है। डा० बडथ्वाल ने इसका अर्थ निरतिशय आनन्द किया है। कई विद्वान् निरति का अर्थ नर्तन या नृत्य करते हैं।

---

(१) डा० रामकुमार वर्मा

(२) पृष्ठ ८५७

पं० परशुराम चतुर्वेदी ने 'सुरति को जीव का निर्मल रूप बताया है, जिसमें हमारे सत्य का निर्मल रूप बराबर झलकता रहता है।[1]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में साधारणतः 'रति' प्रवृत्ति को कहते हैं। निरति बाहरी प्रवृत्ति की निवृत्ति को और सुरति अन्तर्मुखी वृत्ति को कहते हैं।[2] आचार्य क्षितिमोहन सेन ने सुरति का अर्थ प्रेम और निरति का वैराग्य किया है।

डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने बहुत से विद्वानों की मान्यताओं का निरसन कर सुरति का अर्थ 'बहिर्मुखी आत्मा' किया है। उनका यह दावा है कि उन्होंने वास्तविक अर्थ की खोज करली है। लेकिन, लगता है कि यह शब्द आज भी सन्तों की समस्त वाणी के अवगाहन की अपेक्षा रखता है। आत्मा को 'बहिर्मुखी' या 'अन्तर्मुखी' विशेषणों से युक्त करना उचित नहीं। 'सुरति' जैसा कि पहले लिख दिया गया है, राजस्थानी भाषा में यह शब्द आज भी **'सुरतां'** के रूप में प्रख्यात है, जिसका अर्थ है **'चित्त की ऊर्ध्वगामिनी वृत्ति'** जिसको साधक लोग पदों में स्वयं को सावधान करने के लिए सम्बोधन करते रहते हैं—

मन्दिर में कांई ढूँढती फिरै हे म्हारी सुरता !

अथवा

सुरतां भीलणी हे ! रावजी बुलावे महलां आव ।

इसी को 'हेलि' भी कहा जाता है—

म्हारी हेली ! ए जग में वेरी कोई नहीं ।

जब सुरत का शब्द में योग हो जाता है, तो अलौकिक आनन्द व दिव्य उल्लास का स्रोत उमड़ पड़ता है। रस के मेघ बरसने लगते हैं, बिना सूर्य चन्द्र के भी प्रकाश हो जाता है, इस योग की सिद्धि के बाद फिर सांसारिक कार्य करते हुए भी सन्त सहज समाधि स्थिति को बनाये रख

(१) उत्तरी भारत की संत परम्परा; पृष्ठ २०४

(२) कबीर की विचारधारा; पृष्ठ ३१३

सकते हैं। यह समाधि क्षणिक नहीं, जो व्युत्थान काल में जाती रहे। यह सन्तों की स्थायी समाधि है, यह उनकी सुरतां की शब्द ब्रह्म में मिलकर एकाकार हो जाने की अद्वय स्थिति है। सभी सन्तों में 'परचा या प्रचा' अंग में अपनी इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही उदात्त व अवदात्त वर्णन किया है। यह वर्णन सन्त-वाणी का उत्तुंग गिरि शिखर है,जहाँ से उनकी रसानुभूति रजतोज्ज्वला निर्झरिणी की तरह शतधा फूट पड़ी है। यह विषय अनुभव गम्य है। वाणी व मन का विषय नहीं। फिर भी अनन्त कृपालु सन्तों ने अपनी विमल वाणी द्वारा उस पीयूषधारा के कतिपय कणों को इतस्ततः विकीर्ण करने की असीम अनुकम्पा की है।

सुरति शब्द योग की चार चौकियाँ

राम ही चरण वै देश की सैन कूं
मरहमी संत बिन लखै न कोई।

सचमुच मर्मी व रहस्यदर्शी सन्तों का यह अगम्य प्रदेश है, उसे कैसे जाना जा सकता है, कैसे कहा जा सकता है ! वह अनुभवैकगम्य है।

● पहली चौकी ●

प्रथम नाम सत गुरु से पाया।
श्रवणां सुन के प्रेम उपजाया।

संसार की नश्वरता से अभिभूत साधक किसी अमर आनन्द की खोज के लिये निकलता है। जिज्ञासा लेकर वह गुरु की खोज करता है। सद् गुरु जब साधक को पात्र जानता है तो उसे 'राम नाम' मंत्र देता है। गुरु से नाम श्रवण करके उसके साथ साधक प्रेम का नाता जोड़ लेता है। यह प्रेम निष्काम व वासना गन्ध हीन होता है। प्रेम के द्वारा साधक में नाम-जप के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अब साधक रात दिन उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, जीवन की प्रत्येक क्रिया में नाम-जप को चालू रखता है। साधक को अनुभव है कि इस प्रकार रात दिन नाम-जप में लगे रहने से जिह्वा के अग्रभाग से अमृत रस की धारा प्रवाहित होने लगती है। साधक

अब एकान्त चाहने लगता है और सांसारिक भीड़-भाड़ तथा वार्तालाप से दूर हट जाता है।

नाम-जप करते करते उसके हृदय में नामी से मिलने की उत्कट लालसा जाग्रत हो जाती है। उसके न मिलने के कारण साधक के हृदय में वियोग जाग पड़ता है। यह वियोग-साधना सन्त साहित्य की अमर देन है।

साधक के हृदय में विरह की आग रात दिन जलती है, उस जलन में आनन्द का अनुभव होता है। सन्तों की विरहिणी आत्मा पिय मिलन के लिए तड़पती रहती है। विरक के भुजंग ने डस लिया है, अब राम गारड़ू मिले तो विष उतरे।

रामचरण बिरहा भवंग, डस्यौ कलेजो आय।
राम गारडू बिष हरै, जे कोय देत मिलाय॥[1]

विरह की आग में लहू जल गया है, शरीर सूख कर कांटा हो गया। दूसरा दुःख तो सहलूँ, मुझ से विरह का दुःख सहा नहीं जाता।

बिरह अग्नि सब तन दह्यौ, लोही रह्यो न मांस।
राम पियारे दरस बिन, नाभि न बैठे सांस॥
दूजा दुख सबही सहूं, पिव दुख सह्यो न जाय।
रामचरण बिरहनि कहै, बेग मिलो हरि आय॥[2]

सभी सन्तों ने विरह का मर्मभेदी वर्णन किया है। कबीर, दादू आदि सन्तों की विरहानुभूति बड़ी तीव्र थी। सूफी साधकों ने तो सारी सृष्टि को ही विरह की आग में जलता देखा है। महाराज रामदास जी ने भी विरह की व्यथा का हृदय द्रावक वर्णन किया है—

अन्तर दारुण अति घणी, पिंजर करै पुकार।
नैण रोय राता किया, तो कारण भरतार॥

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १०
(२) ,, ,, ,, ११

कुंजर झूरै बन्न कूं, सूवा अंबा काज।
विरहिन झूरै पीव कूं, कबै मिलो महाराज ॥
रैण विहाणी जोवताँ, दिन भी वीतो जाय।
रामदास विरहिन झुरै, पीव न पाया माँय ॥[1]

विरह को छुरी बताया है, जिसने हृदय को काट दिया है। विरह की घटाएँ उमड़ रही हैं, नेत्रों से अश्रु वह रहे हैं और चित बिजली की तरह चौंक पड़ता है।

बिरह घटा घररात नैंण नीझर झरै।
चित चमंकै बीज कि हिरदो ओल्हरै।
बिरहनि है बेहाल दयाकर न्हालियो।
परिहां रामचरण कूं राम वेग संम्हालियो ॥

बिरहा कर ले करद कलेजा काटि है।
पीव न सुणैं पुकारिकि हिरदा फाटि है।
सबै वटाऊ लोग न पूछै पीड रे।
परिहां रामचरण विन राम करै कुंण भीडरे ॥[2]

यह विरह की तीव्र व्यथा साधक के हृदय में राम मिलन की उत्कट प्यास जाग्रत कर देती है। वह रात दिन सुमरण करने लग जाता है। उसको न अन्न अच्छा लगता है, न पानी भाता है और न ही नींद सुहाती है। वह केवल अपने प्रिय से मिलने को छटपटाता है, रोता है, तड़-पता है। उसकी व्यथा को कौन जानता है; या तो वह या रमैया। यही तीव्र विरह व्यथा उसकी साधना को अग्रसर करती है और यही 'सुरति' को जाग्रत करके उसे 'शब्द' की ओर उन्मुख करती है।

---

(१) श्री रामस्नेही धर्म प्रकाश; पृष्ठ १६१, १६६

(२) अणभै वाणी; पृष्ठ ७७

सन्त चरणदासजी ने विरहिणी का सच्चा चित्र अंकित किया है—

गद गद बाणी कंठ में, आँसू टपकै नैन।
वह तो विरहिन राम की, तलफति है दिन रैन॥

दादूजी ने विरह के महत्त्व को दिखाते हुए बताया है कि मूल में विरह ही सुरता को जगाता है—

विरह जगावै दरद को, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरत को, पंच पुकारै जीव॥

रामचरणजी महाराज ने इस अनुभूति का मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा है कि—

रसना व कंठ से जब साधक राम नाम का सुमरण करता है तो साधक को अमृत-पान जैसी अनुभूति होने लगती है, वह अनुपम मिठास का अनुभव करता है। साधक को पानी पीने तक की इच्छा नहीं होती, इस भय से से कि कहीं यह अमृत दूर न हो जाय। नस नस आनन्द के मारे नाचने लगती हैं, उनमें एक सिहरन का अनुभव होने लगता है। मुख से वाणी का निकलना बन्द हो जाता है। आँखें मुँद जाती हैं, पलक-कपाट खुलते नहीं! कण्ठ ध्यान की यही पहचान है कि फिर साधक संसार की कोई चर्चा नहीं सुनता। रोम रोम शीतल हो जाते हैं, हृदय गद् गद् हो जाता है, श्वास प्रवाह रुकने सा लगता है और आँखों से आँसू झरने लगते हैं। साधक ऐसी विचित्र स्थिति में अपने को पाता है—

तब रसना शिर छूटै धारा, चलै अखंड नहिं खंडे लगारा।
जल पीवन की श्रद्धा नांही, मति यो अमृत दूरि होइ जांहीं।
रस पीवत क्षुधा सब भागी, कंठाँ शब्द टग टगी लागी।
नाड़िनाड़िमें चलै गिलगिली, सुखधारा अतिबहै सिल सिली।
मुख सूं कछू न उचरे बैना, लग्या कपाट खुलै नहीं नैना।
श्रवणां चर्चा सुणैं न कोई, कंठ ध्यान यह लक्षण होई।

कंठ के ध्यान कंप कंपी जागैं, रोम रोम सीतंग सो लागैं।
हियो गद् गद स्वास न आवैं, नैणा नीर प्रवाह चलावैं।[1]

●दूसरी चौकी●

इस प्रथम सोपान को तय करने के बाद साधक के हृदय प्रदेश में शब्द ब्रह्म का प्रकाश जाग पड़ता है। प्रेम का प्रकाश हो जाता है, अन्धकार गल जाता है, विरह की जलन शान्त हो जाती है। भ्रम, कर्म व संशय सब विदूरित हो जाते हैं। हृदय में अखण्ड ध्वनि जाग उठती है—

शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा,
ज्यूं रैण अंधेरा चंद प्रकाशा।
भर्म कर्म सांसो भयो भागी,
हिरदै ध्वनी अखंड लिवलागी।[2]

शब्द परकाश हिरदै भया परम सुख,
प्रेम का चांदणा तिमिर भागा।
विरह की तृपि शीतल भई पिवत्र पी,
रोम रोम ही रोम झड़ अधिक लागा।[3]

●तीसरी चौकी●

अब वह ध्यान ध्वनि हृदय से चरणों की ओर—नाभि-प्रदेश की ओर—जाती है। शब्द गुंजार से नस नस जाग उठती है, रोम रोम गाने लगते हैं, सांसों नाड़ियाँ मंगल गीत गाने लगती हैं। वहाँ मन-भ्रमर बहुत आनन्द पाता है—

---

(१) अणभै वाणी पृष्ठ २०६
(२) " " " २०६
(३) " " " १९२

हिरदा सूँ लै धरणी गई, नाभि कमल में चेतन भई।
शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे, रोम रोम में होई रही रागे।
नौसे नारी मंगल गावे, तहां मन भंवरा अति सुख पावे।[1]

●बीच का मार्ग●

नाभि के बाद शब्द उलट कर मेरुदण्ड होकर गगन [सहस्रार-कमल] की ओर यात्रा प्रारंभ करता है। मेरु की बीस घाटियों को लांघना पड़ता है। वही मार्ग त्रिकुटी का स्थान है, यहाँ इडा, पिंगला व सुषुम्ना का संगम त्रिवेणी है; यहाँ पर स्नान कर निर्मल होकर शब्द सुरति के साथ सुषुम्ना के झीणें पथ (पिपीलिका-मार्ग) से गगन के गवाक्ष की ओर जाता है।

अब तो शब्द गगनकूं चढ़िया।
पछिम घाटि होइ कै अनुसरिया॥
घाटी बीस मेरू की छेकी।
इकबीसै गढ़ गया बिशेखी॥
पहिलो बैठी त्रिकुटी छाजे।
जाके ऊपर अनहद बाजे॥
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया।
निर्मल होय आगे कूं ध्याया॥[2]

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां झाझे जल झूलि के, निर्मल होय निराट॥

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २०७

(२) ,, ,, ,, ,,

अब त्रिवेणी न्हाइ कै, कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलघ सुख, यों कोइ चौथा देश ॥[1]

● चौथी चौकी ●

यह साधना की अन्तिम भूमिका है, जहाँ सुरति शब्द को पकड़ कर एकमेक होकर शाश्वत सुख लूटती है। सुरति–सुन्दरी के साथ शून्य-महल में पूर्णानन्द-पुरुष ररंकार का यह महा-मिलन और तज्जन्य आनन्द का विस्मयकारी वर्णन—यही सन्त-साधना का अनर्घ अक्षय कोष है। उस लोक के वर्णन में सन्तों की लौकिक भाषा भी एक नई झंकृति व वर्णच्छटा के साथ जैसे किसी अप्सरी के रूप में कंकणों के क्वणन, नूपुरों के रणन से झण झणायमान होकर नर्तन कर उठी है।

गगन मण्डल 'घोर अणहद नाद' से गूँज उठा है। झालरी, वीणा, मृदंग, सहनाई, बांसुरी का मधुर निःस्वन; चंग, उपंग, भेरी, नरसिंहे की मेघ-गर्जन; मंजीर, ढोलक, गिड़गिड़ी की गड़गड़ाहट घुंघरू का रुणझुणु रुणझुणु शब्द तथा अनेक प्रकार के वाद्यों की समवेत ध्वनि ने महामिलन के उपयुक्त वातावरण सृजन कर दिया है। चारों ओर प्रकाश है, जहाँ न सूरज है न चाँद और न तारे; यह ध्वनि न श्रवण ग्राह्य है और न प्रकाश चक्षु ग्राह्य।

'गगन गोख' में एक अचरज हुआ। यहाँ एक ही पुरुष है, वह वपुहीन है, पंचतत्व रहित है, वहाँ पाला पानी में मिल गया है, नदी सागर में मिल गई है, झिलमिल नूर प्रकाशित है। अनन्त कोटि सूर्यों का प्रकाश है।

पर, यह बात अतोल है। मुख से कहने पर उसका तोल हो जायगा! बस, रहने दो उस बात को। वह जैसी है वैसी है। पवन को हाथ में कौन पकड़ सकता है, आकाश को अपने बाहु-पाश में कौन आबद्ध कर सकता है।

अनहद की गर्जना हो रही है। आकाश से रस झर रहा है।

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २०७

बिजली चमक रही है। परिपूर्ण सागर है, तट पर हंस बैठा है। हंस समुद्र में मिल रहा है, हंस में सागर समा रहा है। दोनों ओत प्रोत हैं, यहाँ द्वैत का नाम तक नहीं।

सभी परिपूर्ण हैं। सागर भरा है, गागरी भरी है, नागरी भरी है और उसकी गागरी भरी है! कहीं रिक्तता नहीं। परिपूर्णानन्द का एकच्छत्र अखण्ड शासन है!

इसी प्रसंग में सन्तों ने सुरति व शब्द के मिलन के प्रसंग में होली का भी खूब वर्णन किया है। मेंहदी रचाकर नव-वधू सुरति का शब्द के साथ पाणिग्रहण और 'गगन के गोख' में मिलन का महानन्द—इसके वर्णन में सन्तों की वाणी कहीं कुण्ठित नहीं हुई। पर, अन्त में उन्हें लगा, यह सारा प्रयास व्यर्थ है! उस अतोल अमाप को तोलने व मापने का बाल-प्रयास मात्र है। उसके बाद उनकी वाणी एकदम खामोश हो जाती है! आनन्द, आनन्द, आनन्द! पूर्ण आनन्द!!

कबीरजी ने 'अणहद' तूर का बेहद वर्णन किया है—

अणहद बाजे नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अंत्तरि प्रगटै, लागे प्रेम धियान॥

कबीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।
निस अंधियारी मिटी गई, बाजे अनहद तूर॥[1]

दादूजी की वाणी भी उस महानन्द में ओत प्रोत है—

ऐसा अचिरज देखिया, बिन बादल बरसै मेह।
तहं चित चातृग ह्वै रह्या, दादू अधिक सनेह॥

दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करै कलोल।
सुख सागर सूभर भरया, मुक्ता हल अनमोल॥[2]

---

(१) —कबीर ग्रन्थावली; पृष्ठ १६

(२) —स्वामी दादू दयालजी की वाणी; पृष्ठ ६५

स्वामी रामचरणजी ने इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है, उल्लास साकार हो उठा है।

[रेखता][1]

घोर अनहद् की गिगन गिरणइया, होत बहुसोर नहीं कहत आवै।
झालरी वीणा मरदंग सहनाईयां, वांसुरी ताल झुंणकार लावै ॥
भेरि रणसिंग करनाल वंक्या वजै चंग अरु उपंग गति करत न्यारी।
एक इक नाद में राग नाना उठै मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी ॥
मंजीरा मान धधकार धोलक करै गिड़गिड़ी राग मोहो चंग वाजै।
रुणझुंणूं रुणझुंणूं नृत्य जूं घूघरु घंटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै ॥
रच्यो कोतूल अति काया अस्थूल में सुखमना नीर फुम्वार वर्षै।
परम ही जोति का चांदणा चहुं दिशा पुरुप भरपूर नहि आन दर्षै ॥
पुरुप रंकार जहां सुरति मिली सुन्दरी सुन्य से महल विश्राम किया।
पूर्णानन्द कूं परसि निर्भय भई पीव की सेझ सुख लूटि लीया ॥
अंग सूं अंग मिल संग छांडै नहीं सुणत जहां राग मस्ताक होई।
राम ही चरण वै देश की सैंन कूं महरमी संत विन लखै न कोई ॥
गगन का गोरव परि जोख ऐसी बणी संतकोइ ध्यान धरि सुक्ख लूटै।
अगमही शब्दकी ध्वनी जहां होइरही अखंडझुंणकार नहितारटूटै ॥
वात कासूं कहूं कोण मानै यहै, भर्म की भूलसैं तर्क ऊठै।
रामहीचरण यह घोर सुण खुसि भया मिल रही सुरति अव नांहि छूटै॥
गगन ही मण्डल में एक अचरज भया वपु विना पुरुप इक रमत देखा।
पांच ही तत्व सूं रहित वो पुरुष हैं नांहि कोइ तासकै रूप रेखा ॥
अगम अगाध अतोल अम्माप है, वार नहि पार नहि गम्म लेखा।
रामहीचरण वा देश में राम रहे, उलटि नहीं बहुर कोइ वरत भेखा ॥

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १६२-१६३।

सुरति शब्द योग
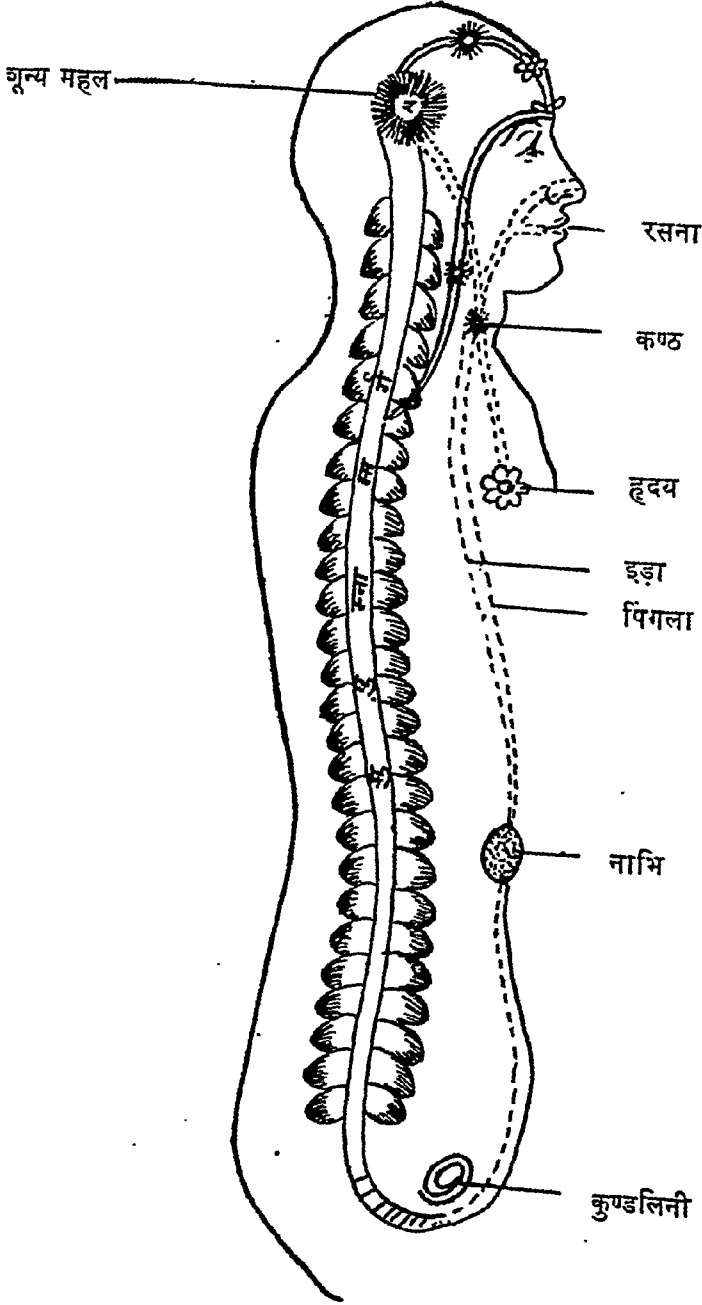
यही योगियों की निर्विकल्प समाधि है, यही असम्प्रज्ञात स्थिति है। चारों ओर परिपूर्णता ही दीख पड़ती है—

पाला गल् पांणी हुवा झिलमिल एक प्रकाश।

× × ×

सागर भर भरि सागरी नागरि भरी समांहि।
नागरि भरि गागरि भरी चंचल झलकै नांहि।
चंचल झलकै नांहि रहै सागर कै ढेवै।
धरी भरी भरपूर सोर शीतल् सुख लेवै।
रामचरण खाली रह्यां छीलर जाचग जांहि।
सागर भर भरि सागरी नागरि भरी समांहि॥[1]

'अणहद' की गर्जन व रस झरने का कितना सुस्पष्ट वर्णन है—

अनहद गरजै नभ झरै, दामिनि ज्योति उजास।
रामचरण सुनि सायराँ, हंसा करत निवास॥[2]

सागर व हंस का यह ओतप्रोत भाव सुरति व शब्द का योग ही है—

सायर तट हंस बैठा जाई। सायर हंस में रह्या समाई॥
ओत प्रोत भया द्वैत न दर्शै। सन्त गरक ब्रह्म सुख कूं पर्शै॥[3]

अब तो नित्य ही होली खेलने का आनन्द रहता है—

[राग जैतश्री धमाल]

पिया संग प्यारी, ऐसें नित खेलत फाग।
रसना राम उचार सुहागिनि पिय सूं प्रीति बधावै।
काम कपट पड़दा करि न्यारा, अरस परस गुण गावै।

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १४२
(२) ,, ,, ,, २०७
(३) ,, ,, ,, २०७

सन्त पलटू साहिब ने भी इसी प्रकार फाग खेलने का मादक वर्णन एक पद में किया है—

जानी जानी पिया हो, तुमको पहिचानी ।।टेक।।
जब हम रहती बारी भोली, तुम्हरो मरम न जानी ।
अब तो भागि जाहु पिया हम से, तब हम मरद बखानी ।।
बहुत दिनन पर भेंट भई है, फाग खेलन हम ठानी ।
धन सम्पत लै खाक मिली तन, तजि कै मान गुमानी ।।[1]

पर, यह विषय बुद्धि विलास का नहीं, केवल साधना का है। गुरु की कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसके पा लेने के बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। सुरत शब्द में समा गई है और शब्द सुरत में। जो कुछ होना था, वह हो चुका है। सन्त साहित्य इसी अलौकिक आनन्द की अनुभूतियों से ओतप्रोत है। सन्तदासजी ने इस अनुभूति का मार्मिक वर्णन करते हुए कहा है—

बात अगम की सन्त दास,
समुझत कोइ नांहि ।
हलाबोल मन होइ रह्या,
हलाबोल पद मांहि ।।
सुरत समांणी शब्द में,
शब्द सुरत ही मांहि ।
होणा था सो होइ रह्या,
अब कुछ होणा नांहि ।।[2]

---

(१) पलटू साहब की बानी (भाग तीसरा); पृष्ठ २२

(२) अणभै वाणी; पृष्ठ १६

[ए] सन्त साधना में मुक्ति का स्वरूप

जीवन थैं मरिबो भलौ, जौ मरि जानैं कोइ।
मरनैं पहली जे मरें, तो कलि अजरावर होइ॥[1]

धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं। भारतीय जीवन का ध्येय पूर्णता को प्राप्त करना है, यह पूर्णता ही मोक्ष है। मोक्ष या मुक्ति के सम्बन्ध में दार्शनिकों, भक्तों व भिन्न भिन्न सम्प्रदायों की अलग अलग मान्यता है। हमारा विवेच्य विषय यह है कि भारतीय दर्शन में मुक्ति का क्या स्वरूप है और सन्त मत में मुक्ति किस प्रकार गृहीत है।

आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति को ही अधिकांश मनीषियों ने मोक्ष माना है। चार्वाक् दर्शन मरण को ही अपवर्ग मानता है, उसका परलोक व पुनर्जन्म में विश्वास नहीं।[2] जैन दर्शन में कर्म के आत्यन्तिक क्षय को मोक्ष कहा गया है। बौद्ध दर्शन में आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति को निर्वाण कहा गया है और इसे इन्होंने दुःख निरोध के नाम से अपने चार आर्य सत्यों में निरूपित किया है। वैभाषिक मत में निर्वाण दो प्रकार का है— सोपाधि शेष तथा निरुपाधि शेष। सोपाधि शेष जीवन्मुक्ति की अवस्था है और निरुपाधि शेष विदेह मुक्ति की।

वैदिक षड्दर्शन में न्याय के मत में दुःख से अत्यन्त विमोक्ष ही अपवर्ग है।[3] गृहीत जन्म का नाश भविष्य जन्म की अनुत्पत्ति ही 'अत्यन्त' विमोक्ष या मुक्ति है। नैयायिकों के मत में मुक्त आत्मा में सुख का भी अभाव होता है। निःश्रेयस् या मुक्ति दो प्रकार की है— अपर और पर। आत्म तत्व की प्रत्यक्ष अनुभूति होने पर अपर निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है, पर प्रारब्ध कर्म बने रहते हैं। प्रारब्ध कर्मों के क्षीण होने के बाद पर-निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है। वैशिषिक दर्शन में भी न्याय की भाँति दुःख

---

(१) कबीर ग्रन्थावली; पृष्ठ ६४

(२) मरणमेवापवर्गः।

(३) तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः।

की अत्यन्त निवृत्ति तथा आत्मा के विशेष गुणों के उच्छेद को ही मुक्ति माना है। सांख्य के अनुसार प्रकृति से विमुक्त होकर पुरुष का एकाकी हो जाना ही कैवल्य या मोक्ष है।[1] योग दर्शन में सांख्य की तरह मोक्ष को कैवल्य नाम से अभिहित किया है। मीमांसकों के अनुसार दृश्य जगत् के साथ आत्मा के सम्बन्ध का विनाश ही मोक्ष है।[2] अद्वैत वेदान्त दर्शन में आत्मैक्य ज्ञान उत्पन्न होने पर सद्यः आनन्द का उदय होजाता है। प्रपंच विलय ही वेदान्त की मुक्तावस्था है।

वैष्णव भक्ति धर्म पांचरात्र के अनुसार 'ब्रह्म भावापत्ति' ही मोक्ष है। श्रीमद्भागवत में भक्ति स्वयं भी साध्य स्वरूपा है, जो रागानुगा है, स्वतः ही कमनीय है; साधक उसके अतिरिक्त किसी मोक्ष की कामना नहीं करता। श्री रामानुज को जीवन्मुक्ति मान्य नहीं, वे केवल विदेह मुक्ति ही मानते हैं। वैकुण्ठ में भगवान् का दासत्व ही परम मुक्ति है। श्री वल्लभाचार्यजी ने भी क्रम मुक्ति और सद्योमुक्ति का विचार किया है। मर्यादा मार्ग का अनुयायी अक्षर सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है, यही क्रम मुक्ति है। परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति तो भगवान के अनुग्रह (पुष्टि) प्राप्त भक्तों को ही होती है। तभी उसमें तिरोहित आनन्द का अंश पुनः प्रादुर्भूत हो जाता है। मुक्ति, कैवल्य, मोक्ष, निर्वाण, निःश्रेयस्—यही भारतीय जीवन का ध्येय रहा है।[3]

अब देखना है कि सन्तों ने किस प्रकार की मुक्ति को दिखाया है। सन्त-सम्प्रदाय में जीवन मृतक ही मुक्ति का श्रेष्ठ निदर्शक है। संसार में रहते हुए, देह के होते हुए, अपने मन को मार देना और अपनी लौ निरन्तर ब्रह्म में रख कर तदाकार हो जाना—यही सन्तों के मुक्त पुरुष का स्वरूप है, जिसको जीवन्मुक्त, मरजीवा या जीवन मृतक कहा गया है।

---

(१) द्वयोरेकतरस्य वा औदासीन्यमपवर्गः [सां० सूत्र, ३]

(२) प्रपंच सम्बन्ध विलयो मोक्षः।

(३) मुक्ति सम्बन्धी उक्त बातों के लिखने में 'हिन्दी साहित्य कोश' से सहायता ली गई है। पृष्ठ ५९९ से ६०१।

जीवन मृतक की पहचान यह है कि वह देह बुद्धि से बिलकुल हट जाता है। अपने शरीर से अलिप्तता व निःसंगता की वृत्ति धारण कर लेता है।

जीवत मृतक होय रहै, तन सूं तांतो तोड़।
रामचरण रत रामसूं, तो काल जाय मुंह मोड़ ॥[1]

जीवन मृतक को अपने शरीर की सुध बुध नहीं रहती। उसकी दशा छिपीं नहीं रहती है। वह संसार के झगड़े से दूर रहता है और सब से 'निर्वैरता' का भाव रखता है—

जीवत मृतक की दशा, छांनी रहती नांहि।
रामचरण निरबैरता, लिपै नही जग मांही ॥[2]

जीवत मृतक होय रहै, तजि पाखंड अभिमांन।
रामचरण मन राम रत, सदा रहै गलतांन ॥[3]

कमल पानी में पैदा होता है, पानी में रहता है; पर, वह पानी के ऊपर रहता है; इसी प्रकार जीवन्मुक्त भी संसार में रहते हुए व्यवहार में 'पद्म पत्रमिवाम्भसा' कार्य करता है; पर, उसकी वृत्ति सदैव ब्रह्म की निर्मल ज्योति के साथ क्रीडा करती रहती है।

ज्यूं कमलां जल मांहि शोक शांसा सैं न्यारा।
शत्रु मित्र सम गिणै ज्ञान लछ लियां ज धारा ॥
राम कहै भ्रम ना दहै यूं गृह भक्ति सधि पांहि।
अहूं ममत बांधै नही अरु तन सुख साधै नांहि ॥[4]

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ २८।
(२) " " " २८।
(३) " " " २८।
(४) " " " ८६१।

राम भजै तजि कामना, करि मैली चितवन हांणि ।
रामचरण गत बासना, सो जीवन मुक्त जांणि ।[1]

[ऐ] लोक-पक्ष

सन्त-वाणी का उद्देश्य केवल अरूप को रूप देना मात्र नहीं। निःसन्देह सन्त-साधना मूलतः अन्तर्मुखी है, व्यक्ति केन्द्रित है, उसका प्रधान प्रयोज्य है— व्यष्टि के लिये निःश्रेयस् का पथ प्रशस्त करना। पर, साथ ही सन्त दयालु हैं; वे जब संसार को कष्ट क्लेशों के कर्दम में फंसा देखते हैं, तो उनके नवनीत से कोमल हृदय से लोक-मंगलकारिणी वाणी निकल पड़ती है, जो व्यक्ति व समाज दोनों के लिए लाभप्रद है। सन्तों को इसीलिए सुधारक भी कहा जाता है। सन्त के लिए 'समाज सुधारक' होना बड़ा गौरवपूर्ण कार्य नहीं है। जो कण कण में एक अखंडित सत्ता को देखता है, उसके द्वारा जो कुछ कहा जायगा उसमें लोकहित की भावना तो रहेगी ही। उपकार करना यह तो सन्त का स्वभाव ही है। उसकी समस्त विभूति दूसरों के लिए समर्पित है। उसका एक एक साँस संसार के कल्याण के भाव से ओत-प्रोत है। संसार की भलाई के अलावा वह और कर ही क्या सकता है। भलाई करना सन्त का स्वभाव है और शायद विवशता भी !

सन्तों की वाणी आज भी उपयोगी है, कल भी उपयोगी थी और आगे भी उपयोगी रहेगी। उसमें समाज को या सम्पूर्ण मानव जाति को शक्ति देने की असीम सामर्थ्य है। कोई भी राष्ट्र केवल धन के बल पर, वैज्ञानिक आविष्कारों के बल पर, अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों के बल पर या अन्तरिक्ष विजय के बल पर, महान् नहीं बन सकता; राष्ट्र की गरिमा की आधारशिला—चरित्रवान् व्यक्ति है। सन्तों की वाणी में व्यक्ति व राष्ट्र के चरित्रगठन की अद्भुत शक्ति होती है। प्रेम, दया, अहिंसा, सत्य, उपकार आदि के वे उदात्त भाव हैं; जिनके अभाव में मनुष्य बर्बर हिंस्र पशु मात्र रह जायगा। यह विजिगीषा, यह जिघांसा, यह रणोन्माद—मानवता के लिये

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ८६१ ।

कलंक है। सन्तों ने प्रारंभ से ही अपनी वाणी द्वारा नैतिकता, शील, सदाचार, निष्ठा व त्याग का उद्घोष किया है; राह भूले संसार को समझाया है। यह और बात है कि धन-पद-लिप्सु लोगों ने न सुना हो या सुनकर भी उनकी अवहेलना कर दी हो। भगवान् वेद व्यास ऊर्ध्वबाहु हो कहते रहे, समझाते रहे; पर लोगों ने पूरा लाभ नहीं उठाया—

ऊर्ध्वबाहु विरोम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।

सन्त का काम समझाना है। वह युग युग से समझाता आ रहा है। कौन सुनता है, कौन नहीं सुनता, इसकी उसे पर्वाह नहीं। वह अपनी आत्मा की आवाज को स्पष्टता व निर्भीकता से बुलन्द करता है। उन सन्तों के 'सबद' के बाण सुनने वालों को सीधे लगते हैं। उनके बाहर तो घाव नहीं; पर, भीतर चकनाचूर हो जाता है।

सन्त वाणी की दो धाराएँ हैं—एक धारा सींचती हुई बहती है—जीवन के उपवन को; पर मानव जीवन में जो अशिव है, अशुभ है, जीवन में जो जड़ता, अन्ध विश्वास, वैर-विरोध, हिंस्र भाव हैं— उसके लिए सन्त वाणी की दूसरी धारा प्रलयवन्या बन कर उसे बहाती; डुबाती; उखाड़ती, गिराती—प्रचण्ड वेग से बही है। सन्त के एक हाथ में निर्माण का वरदान है तो दूसरे में ध्वंस का अभिशाप। निर्माण व ध्वंस दोनों कार्य सन्त वाणी एक ही भाव से एक ही वृत्ति से करती है। वहाँ न हर्ष है न विषाद।

सन्त वाणी का प्रमुख गुण है; निर्भीकता। सन्तों को जो कुछ बुरा लगा, उसका विरोध तेज, कड़े, खरे, नुकीले शब्दों में खुल कर किया, उसका भण्डाफोड़ किया, यह कार्य अत्यन्त निर्भयतापूर्वक पर आसक्ति शून्य, द्वेष शून्य केवल मात्र मंगल की पुनीत भावना से अनुप्राणित होकर किया गया। इस कटुता में भी अद्भुत मिठास है। जब सन्तों ने निर्माण की बात कही तो बड़े प्रेम से, स्नेह सने मधुर शब्दों में। सन्त वाणी का आध्यात्मिक पक्ष चाहे समाज के लिए अगम्य हो, लेकिन उनके द्वारा चरित्र को ऊँचा उठाने वाले जो उपदेश दिये गये हैं, उनसे मानव जाति सदैव ही लाभ उठा सकती है। अन्ध विश्वासों व बाह्याडम्बरों की विडम्बना सन्त वाणी द्वारा

जिस रूप में दिखाई गई हैं; वह समाज का नेत्रोन्मीलन करने के लिए पर्याप्त है।

सन्तों का कार्य मेघ माला के समान है। जिस प्रकार समुद्र से जल पाकर मेघ-माला विश्व भर में छा जाती है और अपने मधुर शीतल जल से तप्त धरित्री को शीतल, शान्त व उर्वर बनाती है; उसी प्रकार सन्त जन भी मेघ की तरह चारों ओर फैलकर त्रिविध-तापों से जलती झुलसती मानव जाति को निःश्रेयस् की जल-धाराओं से अभिषिक्त कर देते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने सन्तों को 'जंगम तीर्थराज' कहा है, सचमुच सन्त-जन चलते फिरते तीर्थराज प्रयाग हैं। सन्तों को नवनीत-मृदुल कहा गया है, पर तुलसीदासजी को यह स्वीकार नहीं, उन्होंने सन्तों का महत्व कितनी विदग्धता से व्यतिरेक पूर्वक वर्णित किया है—

'सन्त हृदय नवनीत समाना ।
कहा कविन पै कहत सुजाना ॥
निज परिताप द्रवै नवनीता ।
पर दुःख द्रवै सु सन्त पुनीता ॥

सन्तों की वाणी ने लोक-मंगल के लिये मधुर व कटु दोनों प्रणालियों को अपनाया है। एक को हम विधि-मुख प्रणाली व दूसरी को निषेध-मुख प्रणाली कह सकते हैं। लक्ष्य एक है, गन्तव्य एक है, साध्य एक है—अन्तर केवल भिन्न भिन्न पथों का है, साधनों का है। हमें क्या करना चाहिए—यह विधि है और हमें क्या छोड़ना चाहिए—यह निषेध है।

समुद्र में जहाज चल रहा हो, प्रचण्ड लहरें हों, घना अंधेरा हो, झंझा के झोंके हों, ध्रुवतारा घनाच्छन्न हो! उस समय कर्णधार को पथ भ्रष्ट होने से बचाने वाला एक मात्र दिशा-सूचक यंत्र होता है। दिशा-सूचक यंत्र के बल पर मल्लाह घबड़ाता नहीं है और वह जहाज को तूफानों से निकाल कर किनारे पर पहुँचा सकता है।

सन्त-वाणी भी अन्धेरे में भटकती, तूफानों से टकराती मानवता के

लिए दिशा-सूचक यंत्र है, जो उसे बराबर गन्तव्य-पथ का निर्देश करती है। सन्तों की वाणी हमारे लिए ज्योतिः स्तम्भ है, उससे हमें हमेशा प्रकाश मिलता रहता है। जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए सन्तों की वाणी में निमज्जन करना हमारे लिए हमेशा ही श्रेयस्कर है।

विधि-मुख

मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है, उन गुणों की अनेक बार अनेक रूपों में 'अणभै वाणी' में चर्चा हुई है। उन गुणों को अपनाने से यह धरती स्वर्ग बन सकती है, हमारा व्यावहारिक बाह्य जीवन सब प्रकार से सुखी, सम्पन्न और स्पृहणीय बन सकता है।

आज हमारी कथनी और करणी में बहुत अन्तर है। हम कहते कुछ हैं—करते कुछ हैं। कथनी और करणी में केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही मेल या सामंजस्य आवश्यक हो, ऐसी बात नहीं है। इस व्यावहारिक जगत् में हमारे व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में 'कथनी और करणी' का अन्तर जितना कम होगा, हमारा जीवन उतना ही क्लेशों, परेशानियों और यंत्रणाओं से मुक्त होगा।

स्वामीजी ने कोरे 'वाचिक ज्ञानी' का विरोध किया है—

गीताँ में पक्वान्न गाय, कुंण तिरपत होई।
कागद लिखीज आगि, वृच्छ बन जलै न कोई॥
रामचरण कृतबं बिनां, सीखो सुणो निशंक।
कुछ हासिल प्रापति नही, जैसें लहरी शंख॥[1]

बातें सब मालूम हों, पर यदि उन्हें जीवन में उतारने की ओर ध्यान नहीं दिया तो उससे कुछ भी प्राप्त नहीं होने का! **'मन मोदक नहिं भूख बुझाई'** वाली बात है। कागजों में लिखी हुई अग्नि क्या वनों के वृक्षों को जला सकती है? इसी प्रकार कोरी कथनी थोथी है, निःसार है।

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ११५

हम यदि जीवन में कुछ भी प्राप्त करना चाहते हैं तो हमारा अपने ध्येय के प्रति 'नहचै' हो, लक्ष्य के प्रति विश्वास हो।

'विश्वास बिना नर आश करै निशिवासर ही जक नाहिं परै।'

बिना विश्वास व निष्ठा के कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

'रामचरण विश्वास बिन नर दुखिया जग मांहि।'

सत्य की महिमा भी स्वामीजी ने खूब गाई है। **'नही साच कूं आंच साच कूं राम उबारै'** यह सही है कि आज झूठ का आदर है, सत्यवादी को परेशान होना पड़ता है; लेकिन, एक दिन सत्य की विजय निश्चित है। सत्य को अपनाने के लिए मनुष्य को निष्पक्ष बनना चाहिए, निष्पक्ष हुए बिना सत्य का प्रकाश नहीं मिलने का।

पक्ख पात सू मति बंधै, कीजे साच पिछांण।
निरपख होय सुख लीजिये, पख मैं खैंचातांण॥[1]

मनुष्य की पहचान उसके साथियों से होती है। संगति का जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। सत्संगति से जीवन बन जाता है और कुसंगति से बिगड़ जाता है। स्वामीजी ने सत्संगति की महिमा खूब गाई है। गलियों का गन्दा पानी गंगा में मिलकर निर्मल हो जाता है, पारस को छूकर खटीक की छुरी भी सोना हो जाती है; यह अच्छी संगति का शुभ प्रभाव है—

पांणी गली गलीच को, गंग भयो मिल गंग।
ज्यूं कंचन छुरी खटीक की, पारश कै परसंग॥

रामचरण आनन्द अति, निर्भय आठूं जाम।
सो सुख है सत्संग मैं, सो नहीं दूसरी ठाम॥[2]

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १४७

(२) " " " १५२

मनुष्य की गुण गरिमा तो इसी में है कि उसमें दया, उदारता, सन्तोष, प्रेम, अहिंसा व सबके प्रति मैत्री भाव हो; यदि मनुष्य इन गुणों से शून्य हो, तो वह मनुष्य कहलाने का ही अधिकारी नहीं। दयाहीन मनुष्य का तो मुख ही नहीं देखना चाहिये। निर्दय मनुष्य मनुष्य नहीं, वह तो शैतान है।

दया बिहूणां मांनवी, जा का मुक्ख न देख।
दयाहींण जमदूत है, कहा जगत कहा भेख॥

हिरदै दया संतोष धन, अरु राम भजन अधिकार।
रामचरण जाका सुफल. मनुष जन्म अवतार॥[1]

मनुष्य को कर्मण्य तो बनना चाहिये, लेकिन वह यदि आठों पहर 'हाय! हाय!' करता फिरे तो उसका जीवन कभी भी सुखी नहीं हो सकता। 'सन्तोषी सदा सुखी' का मतलब यही है कि प्रयत्न करता रहे, फल जो मिले स्वीकार करले—फल के लिए असन्तोष न हो और न उसके कारण कर्म में ही शैथिल्य हो।

निरधन धनधारी दुःखी, कोई सुखी सन्तोषी संत।

× × × ×

हाय हाय करता फिरै जो तृष्णा दाझ्या जोय।
जे सहस्र लाख क्रोड्यां बधै पैंकदेन तिरपति होय।
पैंकदै न तिरपति होय आश धर अजक्या फिरि है।
भरै भूमि भंडार तोहो ममता ..हि भरि है॥[2]

सन्तों का पथ शूरों का पथ है, कायरों का नहीं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने के लिए आत्म-बलि देने वाले शूरवीरों की आव-

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ५३।
(२) " " " ८६६।

श्यकता है, कायर और भीरुओं से कोई कार्य नहीं हो सकता। महात्मा गांधी भी 'अहिंसा शूरवीरों का शस्त्र है,' बार बार कहते रहे। 'अणभै वाणी' में शूरपणें पर बहुत लिखा गया है। सच्चा वीर अपनी भुजाओं से अर्जित सम्पत्ति का भोग करता है, वह परमुखापेक्षी नहीं होता।

मारी खावै आपणी, सोही सिंह शार्दूल।
पर मांरी भूंठण भखै वै श्वान स्याल समतूल।

दर्शन करना हो तो शूरों का करो, कायर को देखने मेरी बलाय जावे—

रामचरण शूरातणां, दर्शन कीजै जाय।
कायर मुँहुं काला किया, जाकै जाय बलाय॥[1]

शूर का अपमान कौन कर सकता हैं, अपमान तो दूर, उसे कोई 'रैकारा' भी नहीं दे सकता।

सुगरा शूरा सिंह कै, रेकारो ही गाल्।
नुगरा कायर गीदड़ा, गाल् न सकै समाल्।
लूँण उजाल्ै स्यांम को, शूरा भाजै नांहि।
खड़ा रहै रंण मांहि राग सिन्धू की भावै।
सुंण सुंण बाह्वै तेग, कर्म सब मार उड़ावै॥
रामचरण इक शूर पर कायर वार किरोड़।[2]

कबीर जी ने भी 'सूरातन' की मुग्ध वाणी से प्रशंसा की है—

गगन दमामा बाजिया, पड्या किसांनै घाव।
खेत बुहारया सूरिवैं, मुझ मरणै का चाव॥[3]

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ४५।
(२) ,, ,, ,, १४६।
(३) कबीर ग्रंथावली; पृष्ठ ६८।

सूरा तब ही परखिये, लड़ै धणीं के हेत ।
पुरिजा पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत ॥[1]

स्वामीजी ने पातिव्रत धर्म की महिमा को सम्यक् रूप से दिखाया है। पतिव्रता के रूप में इन संतों की आत्मा एकनिष्ठ भक्त व सन्त को देखती है, जो केवल एक अखण्ड ब्रह्म के प्रति ही अनुरक्त है। पतिव्रता उनके लिए अनन्य निष्ठ सन्त का प्रतीक है, जो वहु देवोपासना के जंजाल से छूट कर एक मात्र ब्रह्म में ही अपनी वृत्ति को, अपनी लौ को, निविड़ भाव से लगाये हुए है। जिस प्रकार पतिव्रता पति के चरणों में अपना सर्वतो भावेन समर्पण कर देती है, उसी प्रकार सच्चा भक्त भी अपना सर्वस्व भगवान् को सौंप देता है। यह शरणापन्नता या प्रपत्ति का भाव साधक के लिये आवश्यक है।

पतिबरता पति सूं कहै, सुण हो कंत सुजांण ।
मीन नीर सम होय रही, बिछड़त तजूं परांण ॥[2]

पतिव्रता अपनी टेक पर अडिग है, अचल है। चाहे सूर्य पश्चिम में ऊग आवे, गंगा उलट कर वह चले, पर वह दूसरा पति नहीं कर सकती।

सांई मेरा एक है, दूजा सब ही वीर ।
रामचरण दूजा नां करूं, जो गंगा उलटै नीर ॥
गंग जमन उलटी बहै, सहै सीस खुरसांण ।
दूजा सांई ना करूं, जो पच्छिम ऊगै भांण ॥[3]

इसके विपरीत जो ईश्वर पर विश्वास न रख कर इधर उधर मारा

---

(१) कबीर ग्रन्थावली; पृष्ठ ६६ ।

(२) अणभै वाणी; पृष्ठ १५

(३) ,, ,, ,, ,, १५

मारा फिरता है, उसकी अन्त में दुर्दशा होती है, वह व्यभिचारिणी स्त्री की तरह है।

रामचरण बिभचारिणी, पति कूं देवै पूठ।
आन धरम सनमुख रहै, भई जगत की झूठ॥
इक पुरुषां आणंद मैं निसि दिन रहै खुस्याल।
रामचरण बिभचारिणी अष्ट जांम बेहाल॥[1]

जो अपने पण (प्रण) को भूल बैठी तो उसे घर घर की पणिहार होना ही पड़ेगा—'घर घर की पणिहार' लोकोक्ति का यहाँ सुष्ठु प्रयोग हुआ है—

पण पकड़ी हरि भक्ति की, सो पणिहारी नार।
रामचरण अब हरि करी, घर घर की पणिहार॥[2]

व्यभिचारिणी का सम्मान तो चार दिन का है, अन्त में उसका काम अपने 'पीव' ही से पड़ता है—

दिनां च्यार जोबन छतां, जारां कै सनमांन।
रामचरण बिरधा भयां, पीव करै हैरांन॥
जब सिर ऊपर खसम था, सक्यो न कोई जोय।
रामचरण पति घर नहीं, अपणावै सब कोय॥[3]

स्वामीजी ने पति के संग सती होने वाली नारी के गौरव-गान में उस साधक को अपनी कल्पना में रखा है, जो ब्रह्म के लिए अपने आपको मिटा देता है।

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १६
(२) ,, ,, ,, १६
(३) ,, ,, ,, १६

सती सला मैं पैसता, तन मन बीसर जाय।
जीव बस्यो है पीव मैं, निजर न आवै लाय ॥[1]

सत्संग खेतर राम बर सुरिता जोषिता होय।
मैं तैं लकड़ी बृह अग्नि, असल सती बा जोय ॥[2]

[सांग रूपक का स्पष्टीकरण—(१) सत्संग—श्मशान (२) राम—पति (३) सुरति—सती होने वाली स्त्री (४) मैं तैं (माया ममता)—लकड़ी (५) बृह (विरह)—अग्नि]

निषेध-मुख

"अणभै वाणी" में आडम्बरों का खूब विरोध किया गया है। समाज के अन्ध विश्वासों और जड़ रूढ़ियों पर कड़ा प्रहार किया गया है। मूर्ति पूजा, तीर्थाटन, वहु देवोपासना, कन्या विक्रय, हिन्दू मुसलमान का भेद भाव, पेट्ट जटाधारी साधुओं का उपद्रव—सभी का बुरी तरह विरोध किया गया है। वाणी का वज्र प्रहार भ्रम विध्वंसन में वरावर होता रहता है।

मिट्टी की बनी हुई गौरी-पूजा का तमाशा स्वामीजी को वहुत वुरा लगा—

लाद गार की गौरी बणाई, पांणी दे दे सांधी।
होय कर्ता कर जोड़ खड़ी है, ऐसी दुनिया आंधी ॥
ले शिर पर सरवर ले चाली, आनंद कर कर गाई।
रामचरण दह ऊंडै बोई, कपड़ा ले घर आई।[3]

मूर्ति पूजा का जोरदार खण्डन किया गया है, मन्दिर मस्जिद भ्रम का खेल है—

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ४६
(२) „ „ „ „ ४६
(३) „ „ „ „ ६५

हम भी पूजी प्रतिमा, साच धारि मन मांहि ।
रामचरण दुख पीड की,कबहू बूझी नांहि ॥
रामचरण पाषांण कै, दुनियां लागै पाय ।
साधु मिलावै राम सूं, ताकै निकट न जाय ॥[1]

वे मसीत वे देहुरै, भर्म्या फिरै निराट ।
रामचरण हिंदू तुरक, निकस्या एकै घाट ।[2]

स्वामीजी ने धर्म के सभी आडम्बरों का तिरस्कार किया है । पूजा, पाठ, नमाज, एकादशी, मक्का-द्वारका-सभी ढोंग हैं । इनसे अन्तर की शुद्धि नहीं हो सकती—

हिन्दू हरि पूर्व कहै, पश्चिम मुसलमान ।
दशूं दिशा हरिजन कहै तिम चर जोति समान ॥
क्या देवल क्या द्वारका, क्या मक्का महजीद ।
क्या रोजा एकादशी, क्या कर्म ईद बक्रीद ॥
क्या कर्म ईद बक्रीद, भर्म मैं भूल्या दोई ।
अलह इल्फ भरपूर, राम सुमर्यां सुख होई ॥
दुब्ध्या दोजिख जाईये, क्या मुसलमान क्या हींद ।
क्या देवल क्या द्वारका, क्या मक्का महजीद ॥[3]

मूर्ति पूजा के नाम पर मदिरा की धार व रक्त के छींटे देखकर स्वामीजी महाराज तिलमिला उठते थे—

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ६६
(२) ” ” ” ” १७६
(३) ” ” ” ”

माथै टींचै कागला, देव न सकै उडाय ।
रामचरण भोली दुनी, भैंरू दर्शरण जाय ।।
जा घर लोही छांटिये, दीजे मद की धार ।
रामचरण वा पथर को, दुनियां कै अधिकार ।।[1]

आत्मोद्धार का मार्ग भीणा है, 'क्षुरस्य धारा निशिता' के समान है, हम चाहे कितने ही इधर उधर भटकें, लेकिन तत्व का हाथ आना गुरु कृपा के विना मुश्किल है। रामचरणजी महाराज ने वाहरी ढोंगों की खूब भर्त्सना की है—

कोइक काशी में वेद पढ़ै,
पुनि कोइक करवत शीश चढ़ावै ।
कोइक हाड हिवाला में गालत,
कोइ केदार को कांकरण ल्यावै ।
कोइक बुडि मरे जलधार में,
कोइक जीवत ही गड जावै ।
रामचरण विना गुरु ज्ञानहि,
भीणू सो मारग हाथ न आवै ।
कान फटयां लिंगचाम कटयां,
यूं राम रीझै नही मूंड मुंडायां ।।[2]

सभी प्रकार के मादक द्रव्यों का जोरदार निषेध किया है तथा स्वांगधारी साधुओं को खूब फटकारा है—

कै आफू कै भांग तमाखू, घोटा कूंडी लार ।
भक्त हुवा पण राम न जाणै, अमलां का अधिकार ।।

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १७८
(२) ,, ,, ,, ६६

भक्त हुवा छा भजन करण कूं, भजन रह गया दूर ।
भांग तमाखू लागकर, कर्म किया भरपूर ॥
पेट भरण कै कारणैं, पहरचा भेष अनेक ।
रामचरण हरिनाम बिनि, कारिज सरै न एक ॥[1]

हिंसा व मांस भक्षण की निन्दा की गई है। मुल्लाओं के बांग देने को भी कोसा गया है। 'माला के साथ चाला' करने वाले भी स्वामीर्ज के व्यंग्य-वाण के शिकार हुए हैं—

● हिंसा का विरोध ●

काजी कलमां पाक है, तो खड़ी पछाडै कांहि ।
हिंसा नर नापाक है, कह कुरान कै मांहि ॥
सब जीवां खुद खुद्दाम है, पैगंबर की पैदास ।
रामचरण कर कर्द ले, काजी करत बिनास ॥

● मांस भक्षण की भर्त्सना ●

सेवा सालिगराम की, मुख गीता पाठ करै ।
जीव मार भक्षण करै, साईं सूं न डरै ॥
रामचरण नर देह का, अन पांणी है खज्ज ।
ताहि छांडि माटी भखै, मूरख खाय अज्ज ॥
बडा जुलम जिव मारतां, कोपै सिरजनहार ।
रामचरण ले जीव का, बदला बार हजार ॥

---

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ ८८ ।

●बांग का विरोध●

सकल जिहांन मैं रमि रह्या, मुल्ला एक रहीम ।
बांग सुरणावै कूरण कूं, बहरा नाहिं करीम ॥[1]
घाल कान में आंगली, मुल्लां करै पुकार ।
बांग देय सो कूरण है, जाका करो विचार ॥

बहुत से साधु भीख को भी बेचते रहते हैं, उनको स्वामीजी ने जी भर कर कोसा है—

भीख बेचकर दाम दुनी कूं देय उधारा ।
जिन बेच्यो गुरु मांस धर्म सब कियो प्रहारा ॥

इस प्रकार समाज में जो कुछ अशुभ, अमंगल व अशिव था, उसका विरोध करना रामचरणजी महाराज ने अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा । यह विरोध सुधार की भावना से अनुप्राणित था । इस ताड़ना में मां की ममता थी, इस फटकार में दुलार की भावना थी । यह दवाई की कड़वाहट थी, जो बीमारी को छिन्न-मूल करने के लिये आवश्यक है ।

[ओ] कला-पक्ष

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने हिन्दी के मध्यकालीन सन्त साहित्य की विशेषताओं का उद्घाटन करते हुए लिखा है—

'मध्ययुग के साधक कवियों ने हिन्दी भाषा में जिस भाव-धारा का

---

(१) मिलावो—

अ. कांकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥
आ. मुल्ला चढ़ि किलकारिया, अलख न बहिरा होय ।
जेहि कारन तू बांग दे, सो दिल ही अंदर जोय ॥

— कबीर साखी-संग्रह; १७५-१७६, सातवां संस्करण

ऐश्वर्य विस्तार किया है, उसमें असाधारण विशेपता पाई जाती है। यह विशेपता यही है कि उनकी रचनाओं में उच्च कोटि के साधक एवं कवियों का एकत्र सम्मिश्रण हुआ है। इस प्रकार का सम्मिश्रण दुर्लभ है।

स्वच्छ जल का स्रोत जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ से अपने आन्तरिक वेग के साथ स्वतः ही उत्सरित होता है, उसी प्रकार इन कवियों की भाव-धारा अपने शुद्ध आनन्द की प्रेरणा से स्वतः प्रवाहित हुई थी।'[1]

वास्तव में सन्त-साहित्य का अध्ययन भाव की दृष्टि से ही मुख्यतया होना चाहिये। साहित्य के अलंकार, छन्द आदि की दृष्टि से सन्त-साहित्य का विशेप महत्व नहीं। जो लोग भापा को अलंकृत देखने के अभ्यस्त हैं, उन्हें सन्तों की भापा नीरस मालूम होगी। सन्तों की वाणी का सौन्दर्य स्वाभाविकता, स्वच्छता, भाव गाम्भीर्य और अनलंकृति में है। लोक-भापा में भावों को स्वच्छ शैली में प्रकट किया गया है। साधारण से शब्दों को आन्तरिक आलोक से मंडित कर दिया गया है।

श्री वियोगी हरिजी ने सन्त वाणी में अलौकिक महारस की अनुभूति की है। उनको साहित्यिकों का यह कथन अर्थ शून्य सा जँचा कि 'इन सन्तों की अटपटी रचनाओं में न तो साहित्यिकता है न सरसता, न संगीत की लय है और न कला की ऊँची अभिव्यंजना है और भापा भी उनकी ऊबड़ खाबड़ सी है।' इन साहित्यालोचकों का यह प्रयास श्री वियोगी हरिजी को लगा कि 'रीति ग्रन्थों का फीता लेकर वे साहित्यालोचक सन्त वाणी का असीम क्षेत्रफल निर्धारित करने गये थे—चौकोर बंधे तालाव पर धीरे-धीरे सरकती हुई नौका जैसे असीम सागर के विखरे वैभव को मापने पहुँची थी!'[2]

'अणभै वाणी' की भापा लोक भापा के वैभव को लिए हुए है। सन्त साहित्य में प्रचलित सभी छन्दों का प्रयोग इसमें हुआ है। तरह तरह की राग रागिनियों में भी पदों का विन्यास हुआ है

---

१. सुन्दर ग्रन्थावली (भाग १); प्राक्कथन; पृ० ४-५।

२. सन्त-सुधा-सार; दो शब्द; पृष्ठ ५।

भाषा की आधार-भूमि राजस्थानी है, जिस पर खड़ी बोली, ब्रज, पंजाबी आदि भाषाओं की शब्दावली से जड़ी हुई है। अरबी–फारसी के शब्दों का भी प्रसंगानुसार प्रचुर प्रयोग हुआ है।

राजस्थानी भाषा की लोकोक्तियाँ भी स्थान स्थान पर प्रयुक्त हुई हैं, जिससे अभिव्यक्ति में नवीन दीप्ति आ गई है।

दोहा, चौपाई, सोरठा, चन्द्रायणा, सवैया, कुण्डल्या, झूलणा, रेखता, निशाणी, त्रिभंगी, झंपाल, पद्धरि, अरेल आदि छन्दों का बहुत प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियों के कारण भाषा बहुत समृद्ध व सूक्ति प्रधान बन गई है—

(१) रोयां मिलै न रावड़ी तो रोयां कुण दे राज
(२) घर घर की पणिहार
(३) आँधा मूसा थो थो धान
(४) ओछा जल की माछली कदे न पावै चैन
(५) गांव गल्यां गुर गीदड़ा, अरु घर घोड्या रजपूत
(६) खांड गलेपरां मींगणा कदै न चुरमा होय
(७) विधवा बनड़ा गाय मगन होय नाच है
(८) लाडी जोवै बाटड़ी चढ़ बाबाजी री गोख

'दृष्टान्त सागर' में स्वामी रामचरणजी महाराज ने अपने पांडित्य का खूब प्रदर्शन किया है। प्रहेलिका, दृष्टि कूटक व वंसियों की शैली को अपनाया है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। चन्द्रमा को 'तुंगी (रात्रि) तिलक' कहा है। इस प्रकार के शब्दों को समझने में मस्तिष्क को पूरा व्यायाम करना पड़ता है—

भूमि डसन रिपु तासु रिपु, जा शिख पर असवार।
ता सुत बाहन ज्यूं फिरै, काछ लंपट संसार ॥

[भूमि डसन—उदेई। रिपु—मुर्गा। रिपु—बिलाव। शिख—सिंह। असवार—भवानी। सुत—भैरूं। बाहन—कुत्ता। अर्थात् कामी संसार कुत्ते की तरह भटकता है।]

इस प्रकार सारा 'दृष्टान्त सागर' पाण्डित्य व वाग्वैदग्ध्य से भरा पड़ा है। यह रामचरणजी महाराज की स्वाभाविक शैली नहीं है। 'अणभै वाणी' में दो प्रकार की शैलियाँ हैं। जहाँ अपने हृदय की भक्ति व वैराग्यपूर्ण अनुभूतियों का प्रकट करना है, वहाँ भाषा का स्वच्छ, मधुर व सरल प्रवाह है। जहाँ समाज के अन्ध विश्वासों, रूढ़ियों और आडम्बरों को विडम्बित करना है, वहाँ भाषा कड़कती-गरजती चलती है। पदों की भाषा अपेक्षित मधुर है।

असल में स्वामीजी के लिए भाषा तो भावों को वहन करने के लिए वाहन मात्र है। भाषा का शृंगार नहीं, भावों का ही ध्यान है। इसी भाव सम्पदा में सन्तों का वैशिष्ट्य है। **'भाव अनूठो चाहिये, भाषा कैसी होय'** के ये मानने वाले थे। 'अणभै वाणी' में भावों की पुनरावृत्ति चाहे हुई है; पर, भावों को स्पष्ट से स्पष्टतर और स्पष्टतर से स्पष्टतम बनाने की दिशा में स्वामीजी को शत प्रतिशत सफलता मिली है।

राजस्थानी भाषा के शब्दों, मुहावरों व लोकोक्तियों की दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत काम का है, अनुसन्धित्सु छात्रों को इस दिशा में भी प्रयत्न करना चाहिए। उनका प्रयास लाभप्रद ही होगा।

सब मिलाकर यह 'अणभै वाणी' का भावपक्ष प्रौढ़ और समृद्ध है। कला पक्ष में सहज सरलता व अकृत्रिमता है। इस वाणी का सौन्दर्य कटे छंटे उपवन का सा नहीं; सहज भाव से बढ़ने वाले वन-खण्ड का है।

[औ] शाश्वत-सन्देश

'सन्त एक ऐसे लोक का सन्देश लाता है जो शाश्वत है; जिसमें देश और काल अपने भेद भूलकर एक में मिलते हैं, जिसे हम प्रेम का लोक कहते हैं, प्रेम ही मानवीय हृदय की वास्तविक शक्ति है। जिस क्षण मन में प्रेम का उदय होता है, मानव के लिए सेवा और भक्ति का अपूर्व द्वार खुल जाता है।.........वह अपने चारों ओर सतयुगी भावों का स्पन्दन उत्पन्न करते हैं।'[१]

---

(१) डा० वासुदेव शरण अग्रवाल— 'सन्त' शीर्षक लेख; पृष्ठ ६; 'साहित्य सन्देश' का सन्त साहित्य विशेषांक; जुलाई—अगस्त १९५८।

आज के वैज्ञानिक व भौतिकवादी युग में जब कि चारों ओर अविश्वास, घृणा व युद्ध का वातावरण है, उस समय सन्तवाणी के अमर सन्देश की तो और भी आवश्यकता है। सन्तों का सन्देश सार्वकालिक, सार्वभौम होता है। सन्तों की वाणी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व समस्त विश्व के लिए कल्याणकारी है। सन्त-वाणी का मूलाधार सामाजिक अन्तर्विरोधों, विभेदों और विभिन्नताओं में अन्तर्निहित मानवतावादी एकता है। उनका दृष्टिकोण उदार व मुक्त है, उसमें जीवन के उन्नयन की असाधारण शक्ति है।

सन्तों का मार्ग त्याग का है, भोग का नहीं; विनय का है, दंभ का नहीं; प्रेम का है, द्वेष का नहीं; उदारता का है, संकीर्णता का नहीं; भेद ऊपरी तह पर हैं। 'मृत्तिका ही सत्य है और सब वाणी का विजृंभण मात्र है।'[1] 'कनक कुण्डल न्यायेन' सब में एक ही ब्रह्म तत्व प्रोद्भासित है। सन्त-साधना की सुदृढ़ मूल भित्ति अहिंसा, सत्य, प्रेम, दया, क्षमा व समन्वयात्मक एकता से निर्मित है; जिस पर उनकी वाणी का अभ्रंलिहा भाव प्रासाद खड़ा है।

सन्त वाणी में शाश्वत सन्देश है, उसी आधार पर मानवता को द्वेप, घृणा, अविश्वास की पंकिल भूमि से निकाला जा सकता है। सन्त-वाणी सुधा का अविरल प्रवाह है।

सब एक ही है, सब में वही है; फिर द्वैत कहाँ !

रमईयो सब मैं रमि रह्यो हो ।
हां हो कहुं नांहि कह्यो नहि जाय ।टेक।
अवनी उदक दारु मैं हुतभुक, पुष्प गंध तिल तेल।
पय मैं घिरत परशि परिपूरण, ऐसेंहो मिल्यो है सुमेल।[2]

सन्तों की ऐसी ही वाणी विश्व में बन्धुता, सहृदयता व उदारता का वातावरण उत्पन्न कर सकती है। ऐसी ही वाणी से व्यक्ति का चरित्र

(१) वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्

(२) अणभै वाणी; पृष्ठ १०००।

निर्मल बन सकता है, समाज सुधर सकता है और विश्व में शान्ति का अटल साम्राज्य स्थापित हो सकता है। 'तुमुल कोलाहल कलह' भरे और गर्मी से जलते झुलसते विश्व के लिए सन्त-वाणी सजल बरसात है और पतझड़ से उदास मानवता के लिए सन्त-वाणी मन्द मलयानिल है।

तृतीय खण्ड

[स्वरूप]

रामचरण ईं भेष कूं,
निवण करै सब कोय।
कपट रहित हरि कूं भजै,
तब हरि परसन होय॥

[अ] रामस्नेही सन्तों की विशेषताएँ

रामस्नेही शब्द का अर्थ है— राम से स्नेह ~~प्र~~ प्रम करने वाला इस सम्प्रदाय में संसार के प्रति निर्वेद का भाव है और समस्त संचित प्रेम का एक ही केन्द्र है, एक ही लक्ष्य है—रमतीत राम, एम मात्र राम। राम भी दाशरथि नहीं, अणु से लेकर महत् तक रमण करने वाला राम, जो आगे चलकर ररंकार मात्र रह जाता है। राम के प्रति सहज रागानुभक्ति का प्राधान्य होने के कारण ये राम-स्नेही कहलाते हैं। स्नेह के स्थान पर प्रेम शब्द रखा जा सकता था, लेकिन प्रेम शब्द सांसारिक भोग्य पदार्थों के साथ जुड़ सा गया है, इसकी आध्यात्मिक आभा मन्द सी पड़ चली है, संभवतः इसीलिये स्नेह को स्वीकार किया गया है। स्नेह का एक अर्थ तेल भी है, इससे हृदय की स्निग्धता भी व्यंजित हो जाती है। राम के प्रति यह प्रगाढ़, सान्द्र व निविड़ राग का भाव ही नेह या स्नेह है। अतः 'राम-स्नेही' शब्द सार्थक व समीचीन है। इस 'रामस्नेही' शब्द की छाप स्वयं सारंगपाणि से वृन्दावन के मार्ग में आद्याचार्य जी को मिली थी, जो आगे चलकर सम्प्रदाय की आख्या के रूप में गृहीत हुई।

रामस्नेही सन्तों की चाल-चलगत निरीह भावापन्न है, ये बिलकुल 'रामजी की गाय' बनकर रहते हैं, अपने व्यवहार में 'कीड़ी को भी ऐल' नहीं देते। श्मशान की छत्रियाँ इनका आवास, फूटी हाँडी इनका पात्र और कोपीन व थोड़े से वस्त्र—इनका परिधान। रात दिन ररंकार की ध्वनि, गुरु-वाणी पठन और अजगरी वृत्ति—इन्हीं विशेषताओं से इस सम्प्रदाय का प्रचार प्रसार राजस्थान, मालवा, गुजरात व दिल्ली आदि प्रदेशों में तेजी के साथ हुआ। आज यह सम्प्रदाय भी युग की विषम परिस्थितियों का कुछ शिकार हो चला है, फिर भी अभी तक अग्नि-स्फुलिंग भस्मावृत मात्र हुए हैं। अब भी समय है कि वह विगत तेजस्विता, वह शक्ति एवं वह प्रभ

विष्णुता की ज्योति फिर जगमगाई जा सकती है।

● रामस्नेही के लक्षण ●

सच्चा रामस्नेही कौन है, इसकी कसौटी स्वामी रामचरण जी ने अपनी अणभै वाणी में प्रस्तुत की है। आचार्य चरण ने अनेक स्थानों पर रामस्नेही के लक्षण बताये हैं—

[क] इष्ट राम रमतीत आन कूं पूठ दई है
पग नंगे गुरु दर्श दया की मूँठ गही है
विषय त्याग विष वचन हांसि खिलवत नहि जांणैं
जूवा चोरी परलुब्धि झूठ कपटाँ नहि राखै
भांग तमाखू अमल अखज मद पांन न चाखै
पांणी वरतै छांणि कै निरखपाँव धरणींधरै
वै रामसनेही जांणिये सो कारज अपणो करै।[1]

[ख] रामस्नेही राम का. नहीं आन का दास।

[ग] कु वसनां काने करै, दे उपदेस अभंग।
आप तिरे त्यारै अवर, या रामसनेह्यां रंग॥

[घ] रामस्नेही साध सो, ऐसी लछता मांहि।
मुख सूं कछु मांगै नहीं, संग्रह हरसां नांहि।
संग्रह हरसां नांहि राम बिन ओर न जांने।
आसण सुमरण अचल चंचलता मन की भांनै
संजम शील संतोष सत दया धर्म उपजांहि।
रामस्नेही साध सो ऐसी लछता मांहि।

(१) अणभै वाणी; पृष्ठ १२२

इस वाणी के प्रकाश में कहा जा सकता है कि रामस्नेही संत के निम्न लक्षण हैं— (१) एकमात्र राम का इष्ट, (२) बहु देवोपासना से विमुखता, (३) नंगे पैर, (४) गुरु दर्शन, (५) दयालुता, (६) विषय त्याग, (७) विष वचन त्याग, (८) हँसी तमाशा त्याग, (९) हानि लाभ के अवसर एकमात्र हरि का विश्वास, (१०) जूआ, चोरी, लोभ, झूठ, कपट का त्याग, (११) भांग, तम्बाखू, अफीम आदि मादक द्रव्यों का निषेध (१२) मदिरा-मांस का त्याग, (१३) पानी छान कर पीना, (१४) देखकर पैर रखना, (१५) अयाची, (१६) संयम, शील, सन्तोष व सत्य का साधन।

श्री जगन्नाथजी ने इन्हीं के आधार पर कुछ विस्तार करके ३२ लक्षण रामस्नेहियों के लिखे हैं।

रामस्नेही साधुओं की पहली विशेषता अहिंसा के प्रति गहरी निष्ठा है। पानी को दुहरे गाढ़े वस्त्र से छान कर पीने का अनेक स्थानों पर वर्णन है। पानी को कम उपयोग में लाना, छानने के बाद बची 'जीवाणी' को पुनः जल में मिला लेना, यह अहिंसक वृत्ति का ही विस्तार है। रामस्नेही सन्त जो हरे फल को तोड़ना व पेड़ से दातुन तोड़ने तक में हिंसा का भाव मानते हैं, वे पशु हिंसा का तो जोरदार निषेध करेंगे ही, इसमें सन्देह ही क्या है! देखकर पैर रखने व नंगे पैर चलने के मूल में भी यही अहिंसा वृत्ति है। 'वस्त्र पूतं पिबेज्जलम्' अथवा 'दृष्टि पूतं न्यसेत् पादम्' को इन सन्तों ने अपने जीवन में पूरा उतारा है।

पानी को गलणा (वस्त्र छन्ना) से छानने का उपदेश रामस्नेही सन्तों ने अनेक बार दिया है। महाराज संग्रामदासजी भी इसे भूले नहीं—

जीवां रो जूहर करे परभाते ही जाय।
कांई है इनमें नफौ यूं तो म्हंने बताय।
यूं तो म्हंने बताय पड़े है टोटो भारी।
गाढ़ो गलणो राख देवड़ो चोखो लोटो।
चतुराई सूं छांण ने संग्रामदास कहै न्हाय।
जीवां रो जूंहर करे परभाते ही जाय।

रामस्नेही सम्प्रदाय में पानी को छानने, वर्तन में रखने, काम में लाने व जल छन्ने सम्बन्धी अनेक 'जुगतों' को व्यवहार में लाया जाता है। इस सम्बन्ध में पूरी सतर्कता वरती जाती है।

रामस्नेही सम्प्रदाय में सभी मादक द्रव्यों का पूर्णतया निषेध है। रामद्वारे में रसोई बनाने, रात में प्रकाश करने, दीपक रखने आदि की भी मनाही है। इस आचार संहिता के पालन में युग प्रवाह के साथ अब शैथिल्य आ चला है। साधु-जीवन आडम्बरहीन, विलासहीन व निर्मल हो, इसकी ओर रामस्नेही सम्प्रदाय में विशेष ध्यान रखा गया है।

पर, अब अधिकांश रामद्वारों में पुरानी परम्पराएँ लड़खड़ा गई हैं। पहले रसोई नहीं वनती थी, अब वनने लगी है; पहले दीपक नहीं जलता था, अब दीपक तो क्या, विजली के प्रकाश की जगमगाहट शुरु हो गई है; रामस्नेही साधुओं में पहले की मजवूत परम्पराएँ ढीली हो रही हैं। आवश्यकता है एक वार पुनः नवीन उन्मेष के साथ इस सम्प्रदाय में प्राण संचार किया जाय। कुछ रूढ़िपरक अन्ध विश्वास जन्य प्रथाओं के स्थान पर युग की पुकार के साथ आध्यात्मिक दृष्टिकोण को ठेस न पहुँचाने वाली प्रवृत्तियाँ अपनाई जानी भी सामयिक व आवश्यक हैं। यह कार्य वीतराग व धर्मनिष्ठ साधुओं के द्वारा ही संभव है। रामस्नेही सम्प्रदाय में अब भी त्यागी, तपस्वी, वाग्मी व उदार वृत्ति के साधुओं की कमी नहीं है; उनके द्वारा देश में धर्म व आध्यात्मिकता की 'पाल' पुनः वांधी जा सकती है, जो भौतिकवादी प्रचण्ड लहरों का प्रत्यावर्तन कर सके।

यह सब संभव है। उसका मार्ग एक ही है कि महाराज रामचरणजी के कठिन त्याग वैराग्य को पुनः जाग्रत किया जाय। खांडे की धार पर चला जाय। काजल की कोठरी में उजला कपड़ा रखने के समान यह कठिन व्रत है। यह कठिन व्रत है, इसीलिए गौरवशाली है, इसीलिए आवश्यक है, इसीलिए शिरसा वन्द्य है। महाराज संग्रामदासजी ने आचार्यपाद की प्रशंसा में यह कुण्डलिया लिखा है, यह केवल प्रशंसोद्गार मात्र नहीं

अपितु सच्चे रामस्नेही के लक्ष्य का अचल ध्रुव तारा है—

रामचरण महाराज को कठण त्याग वैराग ।
सूतो सिंह जगावणो उड़े पलीता आग ।
उड़े पलीता आग धार खांडा की वहणो ।
काजल का घर मांहि ऊजला कपड़ा रहणो ।
संग्रामदास जन राम का लागण दे नहिं दाग ।
रामचरण महाराज को कठण त्याग वैराग ॥

इस कठिन त्याग वैराग्य का पथ आग की लपटों का मार्ग, सूते शेर को जगाने के समान खतरनाक है। प्रचंड झंझा के बीच में आध्यात्मिक साधना की दीप-शिखा अहर्निश जलती रहे, तभी आज के भौतिकता से परिव्याप्त निविड़ अन्धकार में प्रकाश फैलाया जा सकता है।

आज का युग भाग रहा है, उड़ रहा है, राकेट के द्वारा अनन्त अन्तरिक्ष का रहस्योद्घाटन करने में लगा है; पर, उसका साधना प्रदेश, उसका चारित्र्य, उसकी मानवता खतरे में है। साधुओं की साधना के द्वारा उसकी मानवता को बचाया जा सकता है। रामस्नेहियों का वह रंग फीका पड़ने लगा है, उसमें नवीन दीप्ति लाई जा सकती है। तभी आचार्यचरण की यह वाणी सार्थक की जा सकती है—

आप तिरे त्यारै अवर, या रामसनेह्यां रंग ।

[आ] परिधान : स्वरूप व दैनिक चर्या

श्री स्वामी रामचरणजी महाराज को चाटसू ग्राम वास में वहाँ के एक श्रद्धालु वैश्य भक्त ने हिरमच से रंगे वस्त्र भेंट किये थे, तब से रामस्नेही संत हिरमच से रंगे हुए वस्त्र पहनते आ रहे थे। अब वस्त्रों का रंग गुलाबी हो गया है। साधु कोपीन धारण करते हैं तथा चादर के दोनों किनारों को दोनों पार्श्वों के पीछे से लाकर गर्दन पर बांध लेते हैं, इसे 'ब्रह्म चोला' कहा जाता है। एक दूसरी चादर और लपेटी जाती है। बैठते समय इतना अधिक

ध्यान रखा जाता है कि पैर की अंगुली भी न दिखाई दे, पूरा शरीर चादर से ढका रहे। माथे पर भी चादर ओढ़ ली जाती है। चादर की इतनी सजड़ गाती मारी जाती है कि वस्त्र इधर उधर उड़े नहीं और सुविधापूर्वक रामत की जा सके।

रामस्नेही सन्त के पास गुरुवाणी का एक गुटका, तुम्बी या कठारी होती है। धातु-पात्र का रामस्नेही उपयोग नहीं करता। हाथ में चन्दन की माला, गले में चन्दन की कण्ठी और भाल पर गोपीचन्दन का (श्री) तिलक—यही रामस्नेही का स्वरूप है।

प्रातः वाणी का पठन व गुरु को साष्टांग प्रणाम, यह उसकी दैनिक चर्या है। गृहस्थी लोग जब आते हैं तो 'रामजी राम राम महाराज' कह कर अभिवादन करते हैं, इसके उत्तर में रामस्नेही सन्त 'राम राम, राम राम' कह कर इस अभिवादन को स्वीकार करता हैं। सन्त लोग आपस में भी इसी प्रकार से अभिवादन प्रत्यभिवादन करते हैं।

जो रामस्नेही सन्त केवल कोपीन धारण करते हैं और चादर का व्यवहार नहीं करते, उनकी इस सम्प्रदाय में विदेही संज्ञा है, वे अवधूत भी कहलाते हैं। जो साधु कठोर मौनव्रत की साधना करते हैं, वे इस व्रत की पूर्णता के बाद मौनी या मुनिजी कहलाते हैं। मुनि-साधु हिरमची परिधान नहीं पहनते, वे काली चादर या चोगा पहनते हैं।

प्रसाद ग्रहण रात में नहीं किया जाता। सूर्य के प्रकाश में ही भोजन करने का नियम है। सन्त लोग मस्तक को मुंडित रखते हैं। दूसरे संन्यासी जो मुंडित होते हैं, वे शिखा धारण नहीं करते; पर, रामस्नेही साधु शिखा रखते हैं।

[इ] पीठ-स्थान व फूल डोल

रामस्नेही सम्प्रदाय का पीठ-स्थान शाहपुरा है। यही शाहपुरा आचार्य रामचरणजी से लेकर आजतक उसी प्रकार धार्मिक दृष्टि से एक सा वन्द्य स्थान है। पीठस्थान का मुख्य भवन 'राम निवास धाम' कहलाता है।
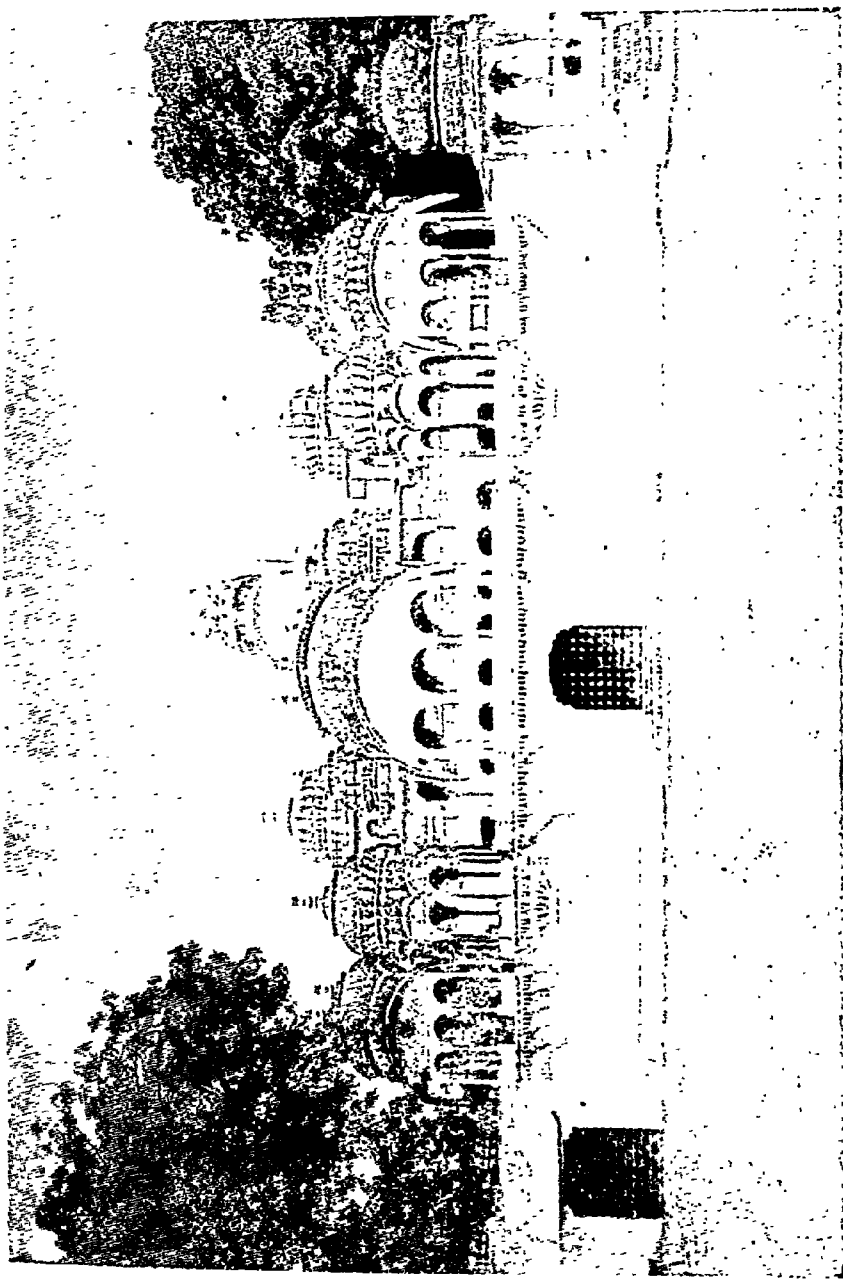
श्री रामनिवास धाम, शाहपुरा (राजस्थान)

'राम निवास धाम' श्वेत संगमर्मर से निर्मित बहुत ही भव्य व कलापूर्ण भवन है। इसका मुख्य द्वार 'सूरज पोल' कहलाता है। सूरज पोल में घुसने के बाद बारह द्वारी के लिए दो सीढ़ियाँ हैं और पोल के द्वारों के बीच में सुन्दर छतरियाँ बनी हुई हैं। ये छतरियाँ संगमर्मर एवं संगमूसा की बनी हुई है जो अत्यन्त भव्य व आकर्षक मालूम होती हैं। छतरियों में राजस्थान के मध्यकालीन स्थापत्य कौशल का निदर्शन हुआ है, राजसी वैभव को दिखाने वाला यह विशाल सन्त-धाम राजन्य वर्ग व जनता के श्रद्धा, सम्मान व प्रेम का प्रतीक है।

सूरज पोल में सीढ़ियाँ ऊपर की ओर जाती हैं। उसके बाद बारह द्वारी का ठाट दिखाई देता है। अनेक स्तंभो पर बना हुआ यह स्थान बहुत रमणीय है। ऊँचे स्थान पर आसीन आचार्य व सन्तों से, आस पास एक ओर बैठी बहिनों व दूसरी ओर बैठे हजारों श्रद्धालु भाईयों से यह स्थान अतीव नयनाभिराम व चित्ताकर्षक लगता है। फिर चारों ओर बहती हुई राम भक्ति की पावनी धारा तो इस स्थान को और भी अधिक गौरवान्वित कर देती है।

इसके बाद आचार्य का निवास कक्ष, भाण्डार, वस्त्र भाण्डार व सरस्वती भांण्डार हैं। इस 'राम निवास धाम' के एक ओर आचार्यो का समाधि स्थल है तो दूसरी ओर राजाओं का श्मशान है।

'राम निवास धाम' में भोजन के लिए साधु मृत्तिका पात्र को उपयोग में लाते हैं, यहाँ धातु पात्रों का प्रयोग निषिद्ध है।

'राम निवास धाम' के प्रबन्ध के लिए आचार्य द्वारा एक भण्डारी नियुक्त किये जाते रहे हैं जो सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होते हैं। श्री नानूरामजी महाराज पाली वालों ने आचार्य श्री निर्भयरामजी के समय से अब तक बड़ी योग्यतापूर्वक इस पद पर रह कर कार्य किया। अब वृद्धावस्था के कारण ये स्वेच्छया त्याग पत्र देकर विश्राम कर रहे हैं और वर्तमान में यह उत्तरदायित्व श्री बलीरामदासजी महाराज बोरसद (गुजरात) वाले वहन कर रहे हैं।

फूल डोल

रामस्नेही सम्प्रदाय में 'फूल डोल' का बहुत महत्त्व है। इस सुअवसर पर दूर दूर के श्रद्धालु भक्त, सन्त जन व पर्यटक एकत्र हो जाते हैं, उस समय शाहपुरा में बहुत चहल पहल रहती है और धार्मिक चर्चा का पुण्य-प्रवाह बह चलता है। यह उत्सव पहले ४० दिन तक रहता था; पर, अब २५ दिन तक रहता है— फाल्गुन सुदि ११ से चैत्र सुदि ५ तक। इन २५ दिनों में भी यह उत्सव चैत्र वदि १ से चैत्र वदि ५ अर्थात् ५ दिन तक बृहत् रूप से होता है। यह ५ दिन का उत्सव ही 'फूल डोल' कहलाता है।

यह सन्त-समागम का स्वर्णावसर है। वाणी-वाचन, राम भजन, रात्रि जागरण आदि की खूब धूम रहती है। श्रद्धालु भक्त सन्तों की खूब अभ्यर्थना करते हैं। 'रामजी राम राम महाराज' की ध्वनि से समस्त वातावरण मुखरित हो उठता है।

यह सम्प्रदाय इस समय भी बहुत अनुशासन बद्ध है। जो साधु धर्म के मुख्य नियमों व व्रतों से च्युत हो जाता है, उसे सम्प्रदाय से बहिष्कृत कर दिया जाता है। सम्प्रदाय से निष्कासन के दण्ड का निर्णय इसी अवसर पर किया जाता है। इस प्रकार फूल डोल का यह उत्सव धार्मिक गठन को सुदृढ़ व शुद्ध करने का एवं आत्मालोचन व आत्म विकास का सुअवसर प्रदान करता है।

इस अवसर पर चातुर्मास का भी निर्णय किया जाता है। दूर दूर के स्थानों के गृहस्थी आकर अपने नगरों में पीठाचार्यजी से चातुर्मास करने की प्रार्थना करते हैं। साधुओं व गृहस्थों से परस्पर विचार-विमर्श के बाद चातुर्मास के निर्णय की घोषणा होती है। जिस नगर में चातुर्मास करने का निर्णय किया जाता है, वहाँ के प्रार्थी निवासियों को गुरु वाणी का गुटका चैत्र वदि ५ को दे दिया जाता है। यह गुटका चातुर्मास की स्वीकृति का सूचक है। चातुर्मास आषाढ़ सुदि ११ से प्रारंभ होता है और आसोज सुदि १० दशहरे के दिन परिसमाप्त हो जाता है। चातुर्मास करने के लिए पीठाचार्य के साथ साधु मण्डली पैदल रामत (पद यात्रा) करती है। इससे

आस-पास के श्रद्धालु लोग भी सत्संगति का पूरा लाभ उठाते रहते हैं।

[ई] पीठाचार्य के चुनाव की जनतांत्रिक प्रणाली

रामस्नेही सम्प्रदाय में गादीधर आचार्य के लीला विस्तार के बाद नये पीठाचार्य का चुनाव जनतांत्रिक पद्धति से किया जाता है। यह पद्धति इस सम्प्रदाय के गौरव को अक्षुण्ण रखे हुए है। जिस समय सम्प्रदाय की स्थापना के साथ साथ ही इस पद्धति को अपनाया गया, उस समय भारतवर्ष में राजा का पुत्र राजा और किसी सम्प्रदाय के आचार्य का प्रधान शिष्य ही पीठाचार्य या प्रधानाचार्य पद प्राप्त करता था। यह आश्चर्य की बात है कि चारों ओर सामन्ती वातावरण के होते हुए, राजा व जमीदारों के प्रभावशाली युग में यह प्रणाली किस प्रकार रखी गई और कैसे विकसित हुई।

जनतंत्र में चुनाव का अधिकार प्रत्येक वयस्क को है, तथा बहुमत से विजय का निर्णय होता है। जनतंत्र की इस चुनाव प्रणाली में दो दोष स्पष्ट ही हैं, एक तो किसी आदमी का स्वयं किसी स्थान के लिए खड़ा होना और दूसरे बहुमत से विजय का निर्णय होना। लेकिन पीठाचार्य के इस चुनाव में ये दोष नहीं हैं।

दिवंगत आचार्य की तेरहवीं या पूर्व निर्धारित समय पर रामस्नेही गृहस्थ व रामस्नेही सन्त सभी एकत्र होते हैं। आचार्य के चुनाव में गृहस्थों व साधुओं दोनों को समान अधिकार प्राप्त हैं। सारे भारतवर्ष के रामस्नेही सन्त व गृहस्थ इसमें भाग लेते हैं। गृहस्थों व साधुओं के प्रतिनिधियों की पहले अलग अलग सभाएँ होती हैं और उसमें विचार विमर्श के बाद सर्व सम्मति से किसी एक सन्त को आचार्य बनाने का निर्णय किया जाता है। कोई भी रामस्नेही सन्त, चाहे वह पीठस्थान का शिष्य हो, खालसा का हो या थांभायत हो, आचार्य पद के लिए मनोनीत किया जा सकता है। पहले किसी भी सन्त या गृहस्थी को मालूम नहीं होता कि कौन आचार्य पद को अलंकृत करने वाला है। गृहस्थों व सन्तों के प्रतिनिधियों की निर्णायक समिति बारह द्वारी के ऊपर छत्र महल में बैठ कर निर्णय

करती है और नीचे हजारों की भीड़ निर्णय को जानने के लिए सोत्सुक खड़ी रहती है। निर्णायक लोग निर्णय करके नीचे आते हैं और उस संत को जिसे उन्होंने चुना है—हाथ पकड़ चुपचाप ऊपर ले जाते हैं तथा वहाँ गुदड़ी व अलफी पर बैठा देते हैं, यह आचार्य बनाने की मूक घोषणा है। इसके बाद दूसरे दिन वे सन्त विधिवत् आचार्य के पद पर आसीन होते हैं। उस सुअवसर पर शाहपुरा के राजा, उदयपुर महाराणा के प्रतिनिधि व बैदला रावजी तीनों अपने अपने राज्यों की ओर से पूरा सम्मान प्रदर्शित करते हैं।

आचार्य के चुनाव की यह पद्धति सब प्रकार से सन्तोषप्रद है। इस चुनाव के सुअवसर पर साधु व गृहस्थी दोनों को बराबर का अधिकार देकर वस्तुत: दो आश्रमों के बीच का व्यवधान मिटा दिया गया है। साथ ही सारे रामस्नेही सन्तों में से सभी इस पद के योग्य हैं. यह इस चुनाव की ध्वनि है। इसमे सन्तों में छोटे बड़े, खालसा थांभायत का भेद भी समाप्त कर दिया गया है। यह चुनाव अत्यन्त शान्त व मधुर वातावरण में सम्पन्न होता है। इसमें सभी प्रसन्न और सभी सन्तुष्ट रहते हैं। गृहस्थी व सन्तों का एक भाव से सहयोग इस चुनाव प्रणाली की विशेपता है।

[उ] युग का आवाहन व आयोजन

हजारों वर्षो की तिमिस्रा के बाद हमारे महान् राष्ट्र में स्वतंत्रता का सूर्योदय हुआ है। राष्ट्र के प्राणों में विकास की दुर्दम लालसा है, उसके लिए वह पथ-सन्धान करने में लगा है। एक ओर विज्ञान व भौतिकता का पथ है, जिसमें चमक है, आकर्षण है, साथ ही संकट व खतरे हैं; दूसरी ओर पूर्वजों की विशाल आध्यात्मिक संपदा है। न एक को पूरी तरह से ग्रहण कर पा रहा है और न दूसरे को छोड़ते ही बनता है। राजनीति में दुहरे खेल चल रहे हैं। व्यवहार में पश्चिम का अनुकरण है, वाणी में सन्त के शब्द हैं।

पिछले वर्षो के अनुभव ने हमें बता दिया है कि आज भारत का विश्व में जो नाम है, वह विज्ञान के बल पर नहीं। संसार के समुन्नत राष्ट्रों

के सामने हम वैज्ञानिक सुख सुविधाओं व आविष्कारों के क्षेत्र में सद्योजात शिशु की तरह हैं; उस क्षेत्र में हमारा संसार में कोई महत्व कायम नहीं हो सका है। हमारा विश्व के रंग-मंच पर जो महत्व है, वह इस कारण है कि हम पंचशील की बात कहते हैं, प्रेम की बात कहते हैं, सह अस्तित्व का नारा लगाते हैं, शोषित व पीड़ित राष्ट्रों की वाणी को बुलन्द करते हैं, उनका पक्ष लेते हैं, राजनीति के कूट वातावरण में सत्य का प्रयोग कहते हैं— यह निश्चय ही सन्तों का पुण्य-प्रसाद है। यह ऋषियों की वाणी है, जिसने भारत के गौरव को बढ़ाया है।

लेकिन, आज सन्तों के उत्तराधिकारी सो रहे हैं। देश में असत्य है, अन्ध विश्वास है, राज-कर्मियों में चरित्र हीनता है, भ्रष्टाचार है, कर्त्तव्यहीनता है, इस समय सन्त को जागना चाहिये। सन्तों ने परतंत्र भारत में लोगों को संभाला, जगाया, चेताया, उठाया और आगे बढ़ाया है। आज स्वतंत्र भारत जब आगे बढ़ने के लिए उद्विग्न हो; उस समय सन्तों के उत्तराधिकारियों व सम्प्रदायों के गुरुओं को ठीक मार्ग बताना चाहिए। यह युग की पुकार है, युग का आवाहन है, युग की ललकार है।

बेचारा राजनीतिज्ञ जो रात दिन दैनिक समस्याओं के घने कुहरे में ढका रहता है; अपने चुनावों, वैयक्तिक स्वार्थों व बच्चे बीवी की सुविधाओं को जुटाने में जुता रहता है, वह राष्ट्र का ठीक मार्ग-दर्शन नहीं कर सकता। ऐसे समय में सन्तों का चिन्तन ही राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन करने में समर्थ हो सकता है। सन्तों की वाणी के द्वारा ही व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के जीवन को अत्यन्त निर्मल बनाया जा सकता है।

आज लोग लड़ रहे हैं; कभी भाषा को लेकर, कभी पन्थ मजहब और मत मतान्तरों को लेकर, कभी राज्यों के टुकड़ों को लेकर, इस लड़ाई के मूल में कहीं व्यक्तिगत स्वार्थ हैं, कहीं लुप्त नेतृत्व को जिन्दा करने का सवाल है तो कहीं खोई हुई साख कायम करने की पैंतरे बाजी है। साधारण जनता इस माया-जाल को समझ नहीं पाई। जनता को सत्य पथ चाहिये, पाथेय चाहिये, पथ निर्देशक चाहिए, प्रकाश चाहिये— यह केवल साधु-सन्तों के जीवन से संभव है। सन्तों के जीवन की पुस्तकें सबके लिए खुली

है; जहाँ मन, वाणी व कर्म में सामंजस्य है, जहाँ एकता व अभेद का पठन पाठ है; द्वैत व भेद का जहाँ खुलकर विरोध है। ऐसे ही उदार सन्तों की वाणी की धारा पुनः प्रवाहित होनी चाहिए; तभी राष्ट्र के जीवन में नये प्राणों का संचार हो सकता है।

साधुओं की संस्थाओं, सम्प्रदायों के संगठनों व विखरी हुई जमातों को सोचना है, विचारना है। युग के प्रचण्ड धक्के ने साधु-संस्था की मध्य कालीन भीतों को जड़ से हिलाना शुरु कर दिया है। अब सँभलने का समय है। सन्त सम्प्रदायों के पास पुरानी पूँजी है, केवल उसके वल पर जिन्दा नहीं रहा जा सकता। अपने पुरुपार्थ से नई साधन सम्पदा का अर्जन करना है। पुराने का संरक्षण और नये का अर्जन, इसी योग-क्षेम के द्वारा व्यक्ति, संगठन व राष्ट्र आगे वढ़ सकता है।

इस समय सन्त सम्प्रदायों को एक योजना वनाकर आगे वढ़ना चाहिए, तभी सन्तों के शाश्वत सन्देश को दूर दूर तक पहुंचाया जा सकता है। रामस्नेही सम्प्रदाय के सामने भी युग की ललकार है, पुकार है और गुहार है।

(क) वाणी का संरक्षण— रामस्नेही सम्प्रदाय में वहुत से सन्तों ने वाणी का निर्माण किया है। वह धीरे धीरे लुप्त हो रही है। हमारी उपेक्षा से या तो वह 'उदई की रोटी' वन जायगी या शीत, घाम व वर्षा से जीर्ण शीर्ण हो जायगी। आवश्यकता है कि शाहपुरा में या और किसी उपयुक्त स्थान में 'वाणी पुस्तकालय' वनाया जावे। जहाँ वाणियों का संरक्षण किया जा सके। वाणियों का वृहद् सूचीपत्र भी प्रकाशित करने की आवश्यकता है।

(ख) वाणी का प्रकाशन— वहुत सी हस्त लिखित प्रतियों के आधार पर सन्तों की वाणी के शुद्ध व सुसम्पादित संस्करण सुलभ किये जाने चाहिए। इसके लिए एक 'सम्पादन समिति' का निर्माण भी किया जा सकता है।

(ग) शोध कार्य—सन्त वाणी पर वैज्ञानिक पद्धति से शोध

कार्य भी होना चाहिए। विद्वानों को वृत्ति देकर भी यह कार्य कराया जा सकता है।

(घ) साधना की खोज—सन्त साधना मूलतः क्या थी, इस पर गंभीरता से शास्त्रीय व प्रायोगिक ढंग से अन्वेषण कार्य होने की आवश्यकता है।

(ङ) रामस्नेही विद्यालय—एक विद्यालय की भी स्थापना होनी चाहिए, जिसमें सन्त लोग व धार्मिक रुचि के लोग शास्त्रों का अध्ययन करें, भारत की आध्यात्मिक सम्पदा का अवगाहन करें, तथा सन्त वाणी का विधिवत् अध्ययन करें। ऐसी संस्था से निकले साधु, सन्त व विद्वान् दूर दूर तक सन्तों की मृत्युञ्जयी वाणी को पहुँचा सकते हैं।

(च) परिषदों का गठन—समय समय पर सन्त गोष्ठियों व पंडित परिषदों का आयोजन किया जा सकता है।

(छ) फूल डोल का नया रूप—फूल डोल के उत्सव को एक नया रूप दिया जा सकता है। सन्त वाणी के एक एक अंग पर अनुभवी सन्त-साधकों व विद्वानों के प्रवचनों का आयोजन किया जा सकता है। यह उत्सव केवल मिलन का ही उत्सव न होकर धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से प्रेरणात्मक हो, इस ओर दृष्टि रखने की आवश्यकता है। सन्त कभी भी रूढ़िवादी नहीं होते; उनकी वाणी में भविष्य बोलता है। वे स्वभाव से ही विद्रोही व क्रान्तिकारी होते हैं, अन्ध-विश्वास व जड़ता के प्रति उनमें आक्रोश होता है। रामस्नेही सम्प्रदाय को भी राष्ट्रव्यापी भ्रष्टाचारिता चरित्रहीनता व कर्त्तव्य च्युति के प्रति एक जबर्दस्त आन्दोलन शुरू कर देना चाहिए। राष्ट्रीय चरित्र निर्माण का कार्य सन्तों के द्वारा यदि नहीं होगा तो और कौन करेगा!

●

चतुर्थ खण्ड

[अणभै वाणी]

अणभै वाणी संतदास,
ये मदवां की गाज ।
छाक्या बोले पेम का,
नहीं किसी की लाज ॥

मरण-सागर पारे तोमरा अमर – तोमादेर स्मरि ।
निखिले रचिया गेले आपनारि घर – तोमादेर स्मरि ।
संसार ज्वेले गेले जे नव आलोक
जय होक जय होक तारि जय होक – तोमादेर स्मरि ॥

वन्दी रे दिये गेछ मुक्तिर सुधा – तोमादेर स्मरि ।
सत्येर वरमाले साजाले वसुधा – तोमादेर स्मरि ।
रेखे गेले वाणी से – जे अभय अशोक
जय होक जय होक तारि जय होक – तोमादेर स्मरि ॥

[मृत्यु-सागर के उस पार तुम अमर हो गये, तुम्हें हम सदैव स्मरण करते हैं। तुम सम्पूर्ण विश्व को अपना घर बना कर चले गये। संसार में तुम नूतन आलोक का दीप ज्वलित कर गये हो। जय हो, जय हो, तुम्हारी जय हो, तुम स्मरणीय हो।

तुमने वन्दी को मुक्ति का सुधा पान कराया है, तुम स्मरणीय हो। तुमने सत्य की वरमाला से धरती का शृंगार किया है। तुमने जो वाणी हमें सुनाई है; वह भय और शोक के परे है। जय हो, जय हो, तुम्हारी जय हो, तुम स्मरणीय हो।]

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रामस्नेही सम्प्रदाय का वाणी-साहित्य

रामस्नेही सम्प्रदाय का वाणी साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। सारे साहित्य की अभी तक जानकारी नहीं हो पाई है। रामद्वारों के हस्त लिखित ग्रन्थ भाण्डारों की जवतक छानवीन नहीं हो जाती, तव तक उसके परिमाण का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। शाहपुरा के 'सरस्वती भाण्डार' में भी वहुत वड़ा वाणी संग्रह है, इसके अतिरिक्त स्वामी रामचरणजी महाराज की शिष्य प्रशिष्य परम्परा में अनेक सन्त हुए हैं, जिन्होंने अपनी अनुभूतियों को 'अणभै वाणी' में अभिव्यक्त किया है। उन सन्तों की वाणी की जानकारी के लिए देश के अ`क भागों में स्थित रामद्वारों को टटोलना होगा।

यहां पर रामस्नेही सम्प्रदाय के १७ सन्तों की वाणी का थोड़ा सा संग्रह तथा स्वरूपां वाई के दो पदों का संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है, इससे वाणी साहित्य की विशालता की ओर अंगुल्या-निर्देश मात्र हो सकेगा। सन्तों की वाणी के संग्रह का यह कार्य वीकानेर, जोधपुर, नागौर व समदड़ी के रामद्वारों की हस्त लिखित प्रतियों के आधार पर किया गया है। प्राय: सभी सन्तों की वाणी हजारों श्लोक परिमाण है, अत: उनके संग्रहालयों की वाणी के संचयन का कार्य वहुत धैर्य के साथ होना चाहिये था। प्रस्तुत संग्रह को शीघ्र प्रकाश में लाने के लोभ को संवरण करना कठिन था, अत: हस्त प्रतियों के इधर उधर पन्नों को उलटते पलटते समय जो सामग्री प्रथम दृष्टि गोचर हुई, उसी अनायास लब्ध सामग्री का संग्रह कर लिया गया। प्रयत्न यह रहा है कि वाणी के सभी प्रकार के नमूने प्रस्तुत किये जांय। पर, इन सीमित पृष्ठों में यह कार्य दु:साध्य था। 'स्थाली पुलाक न्यायेन' वाणी की यह वानगी मात्र है। थोड़े से सन्तों की जीवनी और उनकी वाणी संख्या, जो हमें प्राप्त हुई है, नीचे दी जा रही है—

(१) **श्री सन्तदासजी महाराज**— जन्म—सं० १६६६ फाल्गुन

वदि ६ रविवार।[1] जन्मस्थान—कांवड्या खराड़ी (मेड़ता)। जाति—खड़िया चारण। गुरु—नारायणदासजी महाराज छोटा। दीक्षा स्थान—जूनागढ़। विचरण—गिरनार, राजस्थान में गलता (जयपुर), वहाँ से दांतड़ा। निर्वाण तिथि—१८०६ फाल्गुन वदि ७ शनिवार।

दीक्षा से पूर्व इनका नाम सांईदानजी था। वाणी परिमाण—१४४३ साखी व रेखता आदि मिलाकर।

(२) श्री रामचरणजी महाराज— स्वामी जी के जीवन वृत्त व 'अणभै वाणी' पर पहले व दूसरे खण्डों में विस्तार से लिखा जा चुका है।

(३) श्री रामजनजी महाराज— वाणी संख्या— पद—२३२ राग—३६। स्तुति कवित्त—४। सारी—३२००, अंग १०५। चन्द्रायणा—२६८, अंग ३०। सवैया—३३६, अंग ३४। झूलणा—५३६, अंग ५७। मनहर—३२६, अंग ४६। छप्पय—१३४, अंग २१। कुण्डल्या—२१६, अंग २४। रेखता—१०६, अंग १७। ग्रन्थों की संख्या—१६। कुल संख्या—८२३६।

(४) श्री दूल्हैरामजी महाराज— ये दूसरे पीठाचार्य थे। ये जयपुर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम शुकदेवजी था बचपन का इनका नाम दयानिधि था। ये एक दिन वही खाता लिख रहे थे कि इतने में किसी मुनि ने आकर कहा—

क्यूं काला कागद करो, इन बातों का होय।
रामचरण भज राम कूं दिल का बस्ता धोय॥

यह सुनकर इनके हृदय में वैराग्य जाग पड़ा और शाहपुरा आकर इन्होंने माघ शुक्ला प्रतिपदा सं० १८३३ में दीक्षा ग्रहण की। वहाँ से घूमते घूमते मालवे में गये। इन्दौर होते हुए बड़ौदा आदि गुजरात के स्थानों में राम भक्ति का प्रचार किया। सिहोर को— जहाँ राम भक्ति का बिल्कुल अभाव था, महाराज ने राम भक्ति के लिए क्षेत्र बनाया।

---

(१) सोलह सौ निनानवे, फागुण वदी विचार।
तिथि नौमी रविवार है, लियो संत अवतार॥

आपके सामने ही आद्याचार्य स्वामी रामचरणजी महाराज व रामजनजी महाराज परम धाम पधारे और उनके बाद ये आचार्य गद्दी पर आरूढ़ हुए।

वाणी संख्या— १४ हजार श्लोक परिमाण। विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं किया जा सका।

(५) श्री हरिदासजी महाराज-५वें पीठाचार्य हुए हैं। इनकी वाणी पर अद्वैत-दर्शन की गहरी छाप है। प्रारंभिक स्तुति के कवित्तों में वेदान्त की पारिभाषिक शब्दावली प्रयुक्त हुई है। पर, वही वाणी जब लोक हितार्थ प्रकट होती है, तो उसमें राजस्थानी भाषा का सहज सौन्दर्य वह चला है। इनकी सम्पूर्ण वाणी की विवरणी प्राप्त नहीं हो सकी है।

(६) श्री भगवानदासजी महाराज — वाणी संख्या—स्तुति कवित्त—५, साखी—१०७४, अंग ३६। सोरठा—१। चौपाई—२। अरेल—११३, अंग १३। सवैया—४३, अंग ६। झूलणा—११, अंग ४। कवित्त—५३, अंग १४। कुंडल्या—३५, अंग १०। मनहर—२७०, अंग ४०। रेखता—१। पद—३६, राग १६। आरती—१।

(७) श्री देवादासजी महाराज—स्तुति कवित्त–४। साखी स्तुति—८२। साखी—२२५०, अंग ८२। चन्द्रायणा—१३४, अंग २४। सवैया—६८, अंग १४। झूलणा—५२, अंग १४। कवित्त—२०१, अंग ४२। कुण्डल्या—४८०, अंग ४५। रेखता—४७, अंग १६। निसाणी—१। ग्रन्थ—१६। पद—१०४, राग ३६। ग्रन्थ शब्द—३२५७।

(८) श्री मुक्तरामजी महाराज— साखी—३३११, श्लोक २७५१। चन्द्रायणा—२६४ श्लोक ५५०। सवैया—२५० श्लोक ९००। झूरणा—९५ श्लोक ३००। कवित्त—२०४ श्लोक ६००। कुण्डलिया—३३४ श्लोक ११००। रेखता—५४ श्लोक ३००। पद—९३ श्लोक ४००।

ग्रन्थ— (१) गुरु स्तुति —श्लोक २०० । (२) नाम प्रताप—श्लोक १२४। (३) कक्का बत्तीसी—श्लोक १०४। (४) वैराग वगीचो—श्लोक ६०१। (५) भक्ति महिमा—श्लोक ६५। (६) ग्रन्थ चिन्तावणि—

श्लोक २५१। (७) ग्रन्थ सार असार—श्लोक ७५। (८) गुरु उपकार—श्लोक ५१। (९) गुरू मिलाप—श्लोक २५१। (१०) ग्रन्थ तिथ नामूं—श्लोक २५। (११) ग्यान अग्यान पारख्या—श्लोक ३२५। (१२) ग्रन्थ विचार बोध—श्लोक ११००। (१३) ग्यान प्रकास—श्लोक २५०१। (१४) मन चरित—श्लोक ५१। (१५) आनन्द निवास—श्लोक ११००। (१६) भक्त विरदावली—श्लोक ५१। (१७) गुरु समाधि लीन जोग—श्लोक ६०१। (१८) कन्या संवाद—श्लोक ४०१। (१९) कवित्त—श्लोक ३७। (२०) मन चरित—श्लोक ५१। (२१) आरती—श्लोक १४। (२२) आनन्द निवास—श्लोक ४०१। श्लोक परिमाण संख्या—१४१८१।

(९) श्री संग्रामदासजी महाराज—

ये श्री मुरलीराम जी महाराज के शिष्य थे। इनके कुण्डलिये राजस्थान में बहुत विख्यात हैं। राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा साधु सन्त हो, जिसे 'कहै दास संग्राम' वाले दस पांच कुण्डलिये कण्ठस्थ न हों।

भाषा में अद्भुत शक्ति व स्वाभाविकता है। फटकार खूब जोरदार दी गई है। राजस्थानी भाषा की स्वाभाविकता कहावतों को लेकर इस प्रकार प्रकट हुई है कि सीधी हृदय को छूती है। भाषा सरल इतनी है कि एक बार सुनने के बाद श्रोता के हृदय में गूंजने लगती है। भाषा में ठेठ राजस्थानी का पुट है। सन्तों की बंधी हुई भाषा से दूर लोक भाषा में इनके भाव अभिव्यक्त हुए हैं, अतः इतर प्रान्त वालों के लिए इनकी वाणी को पूरी तरह समझना जरा कठिन हो जाता है।
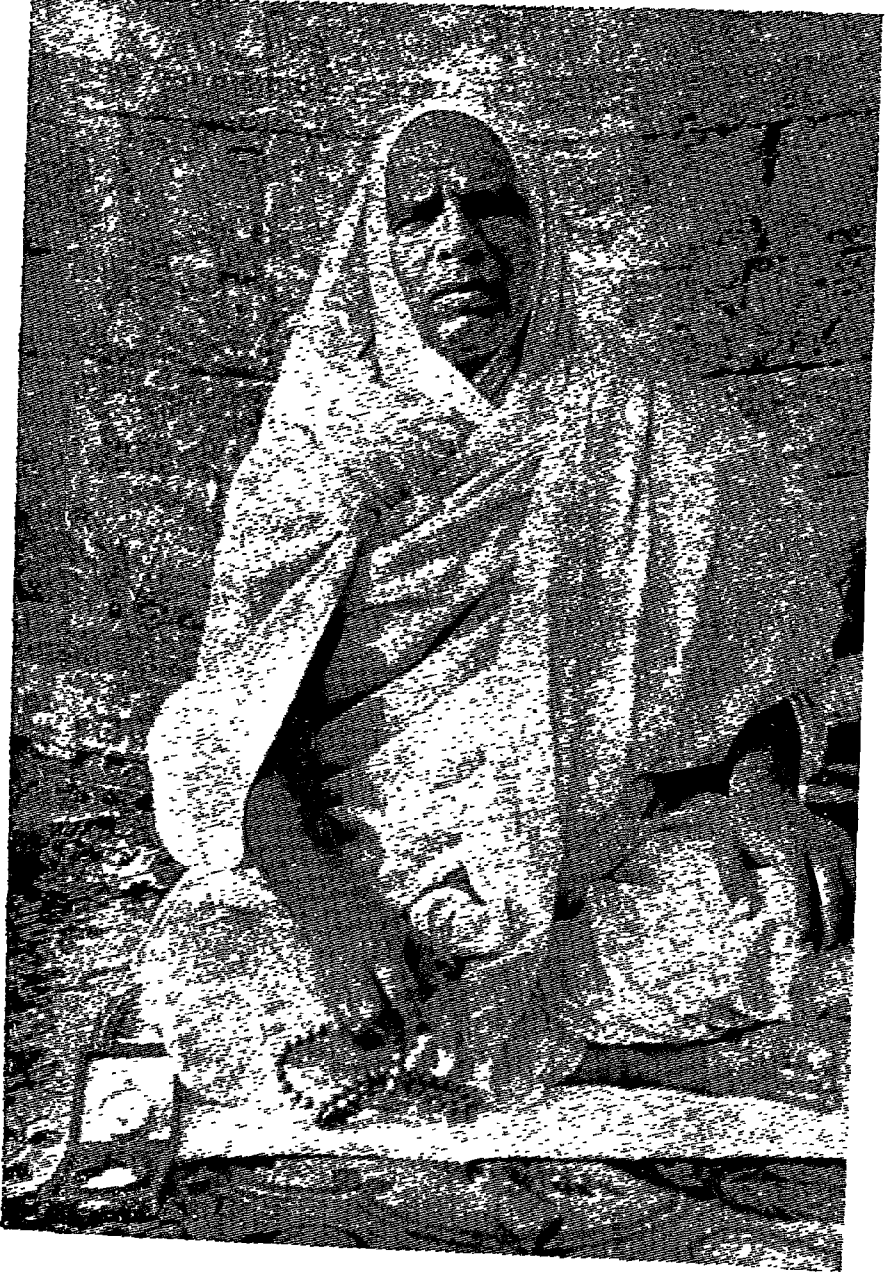
वर्तमान आचार्य श्री दर्शनरामजी महाराज

श्री सन्तदासजी महाराज की अणभै वाणी

साखी—गुरुदेव को अंग

अणभै पद परकास के, दायक सतगुरु राम ।
अनंत कोटि जन सांहि की, ताहि करूं परणांम ॥
सतगुरु का एको सबद, मन कोई लेवै मांन ।
तो सहज होत है सन्तदास, मुसकिल से आसांन ॥
सतगुरु कीनी सन्तदास, मुसकिल सूं आसान ।
राम राम की होइ रही, रोम रोम रज ध्यान ॥
सतगुरु मेल मिलाइया, सुरति सबद का संग ।
अब छूटत नांही सन्तदास, लग्या करारी रंग ॥
सत गुरु बड परमारथी, ऐसी देह बनाय ।
धरिया मुलक छुडाइ कर, अधर मुलक ले जाय ॥
सन्तदास हम कूं दिया, राम नाम तत् सार ।
ले पहुँचाया मुक्ति कू, यह सतगुरु का उपकार ॥
मिले न इस भव सन्तदास, सतगुरु जेहा सैंण ।
झूठा भरम छुडाइ कर, पकडावत सत बैंण ॥
दुर्लभ ई संसार में, सतगुरु का दीदार ।
ले पहुंचाये मुक्ति कूं, इनका यह उपकार ॥
राम रच्या जिव सन्तदास, चौरासी कूं जांहि ।
गुरु का रचिया रामभज, मिलै राम के मांहि ॥
सतगुरु की महिमा अनंत, मोपे कही न जाय ।
गुपत राम था सन्तदास, परगट दिया बताय ॥
राम नाम सूधा दरा, सतगुरु दिया बताय ।
जो कोई चाले सन्तदास, तो कुसल पहूँचै जाय ॥

सन्तदास गुरु ग्यान बिन, हिरदै नहीं प्रकास ।
हरथ्या भरथ्या कैसे रहे, छानि ऊपला घास ॥
सन्तदास गुरु सब्द की, कूंची लागी एक ।
पूरण प्रेम भंडार का, ताला खुल्या अनेक ॥

साखी—बीनती को अंग

सन्तदास बड पतित है, तुम हो पतित उधार ।
लज्या तुमारा बिड़द की, तुम राखो करतार ॥
जहां देखूं तहां रामजी, माया ही का झोड़ ।
सन्तदास की राखजो, तुम चरणां लग दोड़ ॥
मैं तो तेरा रामजी, गुन्हेगार लख वेर ।
हाथ जोड़ आगे खड़ा, सन्तदास होइ जेर ॥
मैं औगुण का पूतळा, तुम गुणवंता राम ।
औगुण दिसी निहारि हो, तो तीन लोक नहीं ठाम ॥
सन्तदास बीनती करै, सुनो अरज जगदीश ।
कीधा पाप अघोर मैं, सो गुन्हा करो बगसीस ॥
सन्तदास गरीब है, तुम हो बड़े गरीब निवाज ।
ले निरबहियो रामजी, बांह गह्यां की लाज ॥
रोवत रोवत जात है, पूत पिता की साथ ।
अब किरपा करके रामजी, क्यों नहीं पकड़ो हाथ ॥
रिध नहीं मांगत रामजी, सिध भी मांगत नांय ।
सन्तदास की सुरति ले, अटल रखो तुम मांय ॥
अरज करत है सन्तदास, मुख से एही भाख ।
अब सरण तुम्हारी रामजी, खुशी होय ज्यूँ राख ॥
नाम विना वैकुण्ठ दो, तो मेरे केहि काम ।
नाम सहित दे नारगी, वो वो ही बड़ बिसराम ॥
गलत कोढ़ होइ सन्तदास, जो या बिणसै देह ।
तो भी न्हचै रामसूं, छूटे नहीं सनेह ॥

साखी—चिन्तावणी को अंग

राम नाम की संतदास, मोड़ी पड़ी पिछांण।
केता दिन बालापण गया, केता गया अजांण॥

चेत्या नांही सन्तदास, मिनखा देही पाय।
अब का बिछड़्या रामसूं, सो फिर मिलता नाय॥

राम नाम कूं ध्यान बिच, धार सके तो धार।
पीछे आडा सन्तदास, पड़ेगा जुग च्यार॥

लख चौरासी भुगत कर, पाइ मिनखा देह।
राम भजन कूं सन्तदास, आया मोसर येह॥

मरणा हक है सन्तदास, जीवण झूठा जांण।
जिस कारण उस राम कूं, हल कर वेग पिछांण॥

सन्त जगावत बेर बेर, सोवत है संसार।
राम भजन सूं सन्तदास, होता नहिं हुंशियार॥

राम कृपा होई सन्तदास, तब ही कहिये राम।
राम कह्यां बिन खपत है, जगत सबै बेकाम॥

पहर सुगंधी कापड़ा, चालै ओंडी चाल।
बाहिर ऊजल सन्तदास, भीतर गंदी खाल॥

राम कहे तो ऊबरे, क्या रंडवा क्या रांड।
नहीं तो होसी सन्तदास, चौरासी बिच भांड॥

राम विना दम जात है, विन दत्तव दिन जाय।
सन्तदास वां क्या किया, मिनखा देही पाय॥

अन्न दिया नहीं हाथ सूं, मुख सूं कह्या न राम।
मिनखा देही सन्तदास, ज्यां पाई बेकाम॥

सन्तदास नर देही का, धरियां का फल येह।
के भजिये करतार कूं, के कुछ कर सूं देह॥

पाव घड़ी आधी घड़ी, घड़ी पहर अठ जाम।
जो कछु बणेस सन्तदास, कहिये केवल राम॥

जनम गुमायो महलिया, ढ़ोला मारू गाय ।
एक राम का नाम बिन, रही नरक में जाय ।।
राम नाम के मोरचे, गाढ़ा रोपी पाव ।
ओसर चूका सन्तदास, मोड़ो आसी दाव ।।

साखी—परचा को अंग

सुरत पहूंती संतदास, चौथा घर कूं जाय ।
अब तो निरभै होइ कर, रही राम ल्यौलाय ।।
सन्त सुरत की जीभ सूं, राम ही राम कहंत ।
बंक नाळ का सन्तदास, इम्रत रस पीवंत ।।
सुरति शब्द दोउ रमत है, त्रिकुटी के छाजे ।
सन्तदास अनहद का, जहां बाजा बाजे ।।
द्वारे दसवें सन्तदास, रहे निरंजण राय ।
सतगुरु का इक शब्द सूं, कीधा दरसण जाय ।।
सुरति चली असमान कूं, मिली शब्द सूं जाय ।
खुली सुषमणां सन्तदास, ता बिच रही समाय ।।
लंघकर तीन मुकाम कूं, चौथे पहुँता जाय ।
सन्तदास वा सन्त कूं, काळ कहां होइ खाय ।।
सुरति निरंजण सूं मिली, रही निरंजण होहि ।
आवागमन का सन्तदास, मिटिया धोखा मोहि ।।
सुरति पकड़ रही शब्द कूं, शब्द सुरति हि मांहि ।
अरस परस भया संतदास, अब कुछ अन्तर नांहि ।।
राम नाम सूं संतदास, उड गया भरम अनेक ।
नवलख तारा छुप गया, ऊगा सूरज एक ।।
पवन नहीं पाणी नहीं, नहीं धरण आकाश ।
संतदास उस देस में, पूरण ब्रह्म प्रकाश ।।
सुरत छांडि तिहुं लोक कूं, ब्रह्म लोक रही जाय ।
जहां अंजण नांहीं संतदास, रहत निरंजण राय ।।

हाड चाम दीसै नहीं, सुषम जोत की देह ।
संतदास उस राम सूं, सुरति मिली कर नेह ॥
प्रम पुरी बिच संतदास, सुरति रही घर छाय ।
जहां राम का राज है, जम का जोर न थाय ॥
मिलना था सो मिल रह्या, सुरति शब्द को जोग ।
संतदास इस देह का, नहीं हरष नहीं सोग ॥
सुरति उलट कर संतदास, शुन विच गई समाय ।
जाय पहुँची उस धाम कूं, जहां जन विरला जाय ॥
सुरति राधिका संतदास, शब्द गुरु का कान ।
शून्य मंडल बिच रहत है, देख भये हैरान ॥
पहुंता पहुंता एक मत, अण पहुंता मत और ।
अरहंट की घड़ संतदास, पडसी एकै ठौर ॥
धुर पहुंच्या फकरां तणी, शब्दां पारख होय ।
अगल वगल की संतदास, परख रखो मत कोय ॥

रेखता

पगडंडी भर्म की सबै ही दूर कर शब्द की राह सतगुरु लगाया ।
तीन विसराम लंघ पछिम की दिशा हो पिंड का जाय ब्रह्मंड पाया ॥
सुरति जहां संचरै ध्यान अजपा धरै वजे अनहद घनघोर वाजा ।
असंख शशि शूर की कला ले विराजे जहां एक निरंजन राम राजा ॥
गंग जहां मुक्ति की चलत हैं सुषमना ब्रह्म का जहां अस्नान होई ।
कहत संतदास उस पद निरवांण कूं उलट कर पहुँचिया सन्त कोई ॥
अगम ही पन्थ है एक निज शब्द का सो ही कर महर सतगुरु वताया ।
अगम की चौकियां तीन विसराम कर अगम के उलट आकाश आया ॥
अगम अनहद बाजा जहां वजत हैं अगम ही ज्योति का दरस पाया ।
अगम ही गंग जहां चलत है सुषमना ब्रह्म जाय अगम के घाट न्हाया ॥
संत कोई ध्यान धर अगम कूं पहूंच कर देख कर अगम की खबर लावे ।
कहत संतदास कोई अगम का महरमी अगम का शब्द कूं सोहीज पावे ॥

ग्रन्थ भर्म तोड़ का कुछ अंश

कोई कोई पढ़ि हैं वेद पुराना। कोई कोई कथि हैं सीखत ग्याना ॥
कोई कोई ताल मृदंग बजावे। कोई कोई भीणे सुरपद गावे ॥
अे भी भजन नहीं रे भाई। फेर समाल राम ल्यो लाई ॥१॥
कोई कोई अड़सठ तीरथ न्हावे। कोई कोई जिग असमेध करावे ॥
कोई कोई देश दिशन्तर फिरि है। कोई कोई काशी करवत धरि हैं ॥
अे भी भजन नहीं रे भाई। फेर समाल राम ल्यो लाई ॥२॥
कोई कोई करि हैं नोली करमां। ए साधु का नांहि धरमां ॥
कोई कोई रिध सिध सेती लागा। भरम करम वा का नहीं भागा ॥
अे भी भजन नहीं रे भाई। फेर समाल राम ल्यो लाई ॥३॥
कोई कोई माघ मास बिच न्हावे। शीत मरे पुनि देह सतावे ॥
कोई कोई करि हं वेला तेला। मुक्ति नहीं ये हांसी खेला ॥
अे भी भजन नहीं रे भाई। फेर समाल राम ल्यो लाई ॥४॥
कोई कोई कनफड़ा जोगी। वे सुखमण का नांही भोगी ॥
कोई कोई भस्म लगावे जटधारी। एक राम नाम बिन बाजी हारी ॥
अे भी भजन नहीं रे भाई। फेर समाल राम ल्यो लाई ॥५॥
कोई कोई कहिये दूधाधारी। राम भजन बिन उतरे नहीं पारी ॥
कोई कोई भोजन करत अलूंणा। यूं नहीं छूटे आवागमणां ॥
अे भी भजन नहीं रे भाई। फेर समाल राम ल्यो लाई ॥६॥

पद

[१]

संतो सत गुरु भेद बताया। ताते राम निकट ही पाया ॥
तप तीरथ कबहू नहीं कीना। पढ्या न बेद पुराना ॥
जत सत दोऊ अजब कहत है। सो सुपने नहीं जाणा ॥१॥
मौनी रह्या न दूधाधारी। मकर मास नहीं न्हाया ॥
सुर तेतींसूं एक राम बिन। सो कबहूं नहीं ध्याया ॥२॥
काशी गया न करवत लीना। ना गलया हिंवाला मांही ॥

जंत्र मंत्र अरु नाटक चेटक। सो भी सीख्या नांही ॥३॥
संजम किया न रैंण नहीं जाग्या। करी न सेवा पूजा ॥
ना कुछ गाया ना कुछ बजाया। मर्म न जाण्या दूजा ॥४॥
राम नाम का अखंड ध्यान धर। अन्तर प्रेम जगाया ॥
संतदास चढ़ि शून्य शिखर पर। इस विधि अलख लखाया ॥५॥

[२]

संतो संतन का घर न्यारा।
जिस घट भीतर अमीं झरत है, एक अखंडित धारा ॥टेर॥
जहां धर नहीं अंबर दिवस नहीं रजनी, चन्द शूर नहीं तारा।
जहां नहीं वेद पवन नहीं पाणी, जहां न यो संसारा ॥१॥
जहां काम न क्रोध मरे नहीं जामे, नहीं काल का सारा।
जत सत तपस्या सो भी नांही, नहीं कोई आचारा ॥२॥
सुर तेतीसूं सो भी नांही, नहीं दसों अवतारा।
संतदास दीसत उस घर में, संत के सिरजण हारा ॥३॥

आरती

ऐसी आरती करो मेरे मना, राम न विसरूं एक ही छिना।
देही देवल मुख दरवाजा, बणिया अगम त्रिकुटी छाजा ॥१॥
सतगुरुजी की मैं बलि जाई, निस दिन जिह्वा अखंड लिवि लाई ॥२॥
द्वितीय ध्यान हृदय भया वासा, परम सुख जहां होय प्रकाशा ॥३॥
तृतीय ध्यान नाभि मधि जाई, सन्मुख भये सेवक जहां सांई ॥४॥
अब जाइ पहुंता चौथी धामा, सब साधन का सरिया कामा ॥५॥
अनहद नाद झालर झुणकारा, परम ज्योति जहां होइ उजियारा ॥६॥
कोई कोई संत जुगति यह जाणी, जन संतदास मुक्ति भये प्राणी ॥७॥

श्री रामचरण जी महाराज की अणभै वाणी

स्तुति—कवित

नमो राम रमतीत नमो गुरुदेवं स्वामी।
नमो नमो सब संत नाम रटि भये जु नामी॥
जिनके चरणों हेठि रहो नित शीश हमारा।
तन मन धन अरु प्राण करूं नवछावर सारा॥
राम संत गुरुदेव विन नहीं और आधार।
रामचरण कर जोरिकै वंदै वारंवार॥१॥
नमो राम रामतीत सकल व्यापक घणनामी।
सब पोषै प्रतिपाल सबन का सेवक स्वामी॥
करुणामय करतार करम सब दूर निवारै।
भक्त विछलता विरद भक्त ततकाल उधारै॥
रामचरण वंदन करै सब ईशन के ईश।
जगपालक तुम जगत गुरु जगजीवन जगदीश॥२॥
आनन्द घन सुख राशि चिदानंद कहिये स्वामी।
निरालंब निरलेप अकल हरि अन्तर्य्यामी॥
वार पार मधि नाहिं कूंण बिधि करिये सेवा।
नहिं निराकार आकार अजन्मा अविगत देवा॥
रामचरण वंदन करै अलह अखंडित नूर।
सूक्ष्म स्थूल खाली नहीं रह्या सकल भरिपूर॥३॥
नमो नमो परब्रह्म नमो नहकेवल राया।
नमो अभंग असंग नहीं कहुं गया न आया॥
नमो अलेप अछेप नहीं कोइ कर्म न काया।
नमो अमाप अथाप नहीं कोइ पार न पाया॥

शिव सनकादिक शेष लूं रटत न पावै अंत ।
रामचरण वंदन करै नमो निरंजण कंत ॥४॥
कृपाराम कलि अवतरे जीवन प्रम दर्शन लहे ।
जनकराय समजान लिप्त होवै कहुं नाहीं ॥
ध्रुव राजत वैकुण्ठ यूंहीं सब सन्तन माहीं ।
परमारथ परवीण सम पीपा परमानूं ॥
हरि गाथा अम्बरीष राम के प्रीये जानूं ।
रामचरण वंदन करै माया मधि अलिप्त रहे ॥
कृपाराम कलि अवतरे जीवन प्रम दर्शन लहे ॥५॥

साखी—गुरुदेव को अंग

रमतीत राम गुरुदेवजी, पुनि तिहुँ काल के संत ।
जिनकूं रामचरण की, वंदन वार अनंत ॥
स्वामीजी श्री संतदास, जिनके किरपाराम ।
रामचरण ताकी सरण, सर्‍या मनोरथ काम ॥
रामचरण का सीस पर, स्वामी किरपाराम ।
जिनका हित परताप सूं, मन पाया विश्राम ॥
कृपाराम कृपा करी, हमकूं किया निहाल ।
पर उपगारी रामरत, मिलिया परम दयाल ॥
संत बिराजै दांतड़े, सरणाई प्रतिपाल ।
रामचरण कै उर बसै, किरपाराम दयाल ।
दत नारद सुकदेव से, और सबै अवतार ।
रामचरण गुरु कूं करै, वंदन वारूंवार ।
कहा बरणूं बिसतार कर, सतगुरु गुणांन पार ।
रामचरण दे रामधन, अनंत किया उपगार ॥
जो साचा सतगुरु मिलै, तो सच्चा देवैं ज्ञान ।
मन को टांको काढि के, कंचन करै निधान ॥
भर्म कर्म सब तूंतडा, सतगुरु देहि उड़ाय ।
राम नाम निज कण शब्द, सिख कूं दे पिछणाय ॥

रामचरण सतगुरु मिल्या, किया भर्म सब दूर ।
जित देखूं जित राम है, रह्या सकल भरपूर ॥
सगा न सतगुरु सारसा, दगा न सम संसार ।
रामचरण एह सत्य है, कोई सुगरा करै बिचार ॥
रामचरण सतगुरु तणां, ये देखो उपगार ।
भर्म कर्म सब मिट गया, पाया शब्द अपार ॥

साखी—सुमरण को अंग

रामचरण का शीस पर, एक निरंजण राम ।
रात दिवस रटबो करै, नही आंन सूं काम ॥
राम राम रसना रटै, आंन धर्म नहिं आस ।
राम चरण अविगति रता, सुमरै सासूं सास ॥
राम चरण भज राम कूं, यो सब का सिरजनहार ।
राम छांडि कर मति बहै, आंन देव की लार ॥
सुमरण कीजै एक रस, दूजा भरम निवार ।
राम चरण तृष्णा तजै, तो उतरै भव पार ॥
सुमरण कीजै राम का, सबसैं होय निसंक ।
समदृष्टी होय देखिए, कहा राव कहा रंक ॥
भजन बिना छूटै नहीं, रामचरण भव पासि ।
जे चाहै दीदार कूं, तो रटीए सास उसास ॥
निसि दिन भजिए रामकूं, तजिए नही लगार ।
रामचरण आठूं पहर, पल पल बारंबार ॥
सुमरण करिए राम का, तजिकै मांन अमांन ।
रामचरण तबही खुलै, घट में कंचन खांन ॥
शील दया संतोष धन, राम भजन की प्यास ।
रामचरण वाकै सही, होसी ब्रह्म प्रकास ॥
जो कोई सुमरै रामकूं, जाका निरमल चित्त ।
बलिहारी मैं नाम की, काटै मेल अनंत ॥

सब घट व्यापक राम है, ज्यूं अवनी मैं नीर ।
रामचरण करणी विना, प्रगट नांही सीर ॥
करणी सुमरण खांत करि, तव ही दर्शण होय ।
रामचरण वातां सुण्यां, पीव न पावै कोय ॥
अनंत कोटि जन उधरया, भजिकै केवल राम ।
वहोत पतित पावन भए, रामचरण ले नाम ॥
सुख का सागर राम है, दुख का भंजन हार ।
रामचरण तजिए नही, भजिए वारंवार ॥
सुरति शव्द का मेल मैं, दरसै सुक्ख अपार ।
रामचरण विछड्यां दुखी, दसूं दिसा की मार ॥
रामचरण शिव धर्म कूं, जांणत नाही कोय ।
शिव सुमरै ताकूं भजै, सो शिव धर्मी होय ।

साखी—वीनती को अंग

रामचरण की वीनती, सुणो एक अरदास ।
सरणा की प्रतिपाल कर, काटो जम की पास ॥
रामचरण अवगुण भरया, तुम वहो गुणां की खान ।
अवगुण सभी वगसियो, राम तुम्हारो जान ॥
जे तुम अवगुण चित धरो, तो मेरा जीवन नांहि ।
रामचरण की सुरति कूं, राखो चरणां मांहि ॥
रामचरण की वीनती, सुणज्यो दीन दयाल ।
अविगति गति मातारहै, कदे न झंपै काल ॥
जे तुम त्यारो भक्त कूं, तो मेरा जीवन नांहि ।
राम उधारो पतित कूं, तो हम खुसी रहैं मन मांहि ॥
मैं निर्वल वुधिवल नहीं, कामी कुटिल निकाम ।
सरणै ले निरवाहज्यो, रामचरण कूं राम ॥
आप करंता रामजी, कुलखण कितीक वात ।
वड़े वड़े अवधंत कूं तुम राखे दोजिग जात ॥

गुन्हैगार बहु जन्म को, खूंनी बंदीवांन ।
बन्दे ऊपर महर् कर, काटो बंध दीवांन ॥
हमसूं बणी न बंदगी, बंध्या इं संसार ।
रामचरण कूं रामजी, बूडत ल्योह उबार ॥
अदल कियां उबरुं नही, मुझ मैं गुन्हा अपार ।
रामचरण कह रामजी, तुम चूक निवारणहार ॥
तुम तो राम दयाल हो, मैं अनाथ निरधार ।
रामचरण कह रामजी, वेग लगावो पार ॥
रामचरण कह रामजी, मेरा गुन्हा बिसार ।
पिता परिहरै पूत कूं, तो जीवैं कूंण आधार ॥

साखी—मन को अंग

रामचरण मन मस्करा, कदे न आवै हाथ ।
राम नाम लागै नहीं, रमै बिकारां साथ ॥
मन मैला तन उज्वला, ऐसी भक्ति अनेक ।
रामचरण क्यूं पाइये, ऊ निर्मल पुरुष अलेख ॥
मन का रूप अनंत है, तूं मति बहकै बीर ।
सब ही ह्र्पा छांडि कै, होय शब्द मैं थीर ॥
मन माया मैं रमि रह्या, जैसे खीर विरत्त ।
रामचरण कसणीं बिनां, होता नहीं निरत्त ॥
खीर मथ्यां घृत न्यारा किया, फेर लिपै नहि जाय ।
ऐसैं गुण इन्द्री मन जीत कै, ब्रह्म लिया निरताय ॥
मन विस्वास न कीजिये, जब लग तन मैं स्वास ।
रामचरण मृतक जीवै, गाफिल रहै न दास ॥
मनकै लहरि अनंत है, सायर कै सामान ।
रामचरण जन बस करै, बह्या जाय अज्ञान ॥
मन का वेग उतावळा, वायु वेग साधार ।
रामचरण जन स्थिर रहै, उड्या फिरै संसार ॥

रामचरण ईं मन्न को, नां करिये इतबार।
चढ़तां बहु साधन चढै, पडतां लगै न बार॥
रामचरण चढतां करै, मनवो बहुत उपाय।
खिसतां कुछ सोचै नहीं, पड़ै आंपणै दाय॥
सात्विक सूं मन वाह्डयो, चाल्यो राजस मांहि।
रामचरण टूटो चड़स, ऊंचो आवै नांहि॥
बहु साधन ऊंचो चढै, नींचो सहजै जाय।
रामचरण मन पलटियो, ता पर नहीं उपाय॥
रे मन हार निवारिकै, अपणां काज संवार।
रामचरण नींची तजो, ऊंची दशा बिचार॥

चन्द्रायणां—वीनती को अंग

शरणां की प्रतिपाल राम अब कीजिये।
भव बूडत गह बांह काढ़ि मोहि लीजिये॥
तुम हो दीनदयाल दया कर न्हालियो।
परिहां रामचरण सूं राम विघ्न अब टालियो॥१॥
माया तणां विघन्न बहुत है रामजी।
भजन करै अंतराय भुलावै नामजी॥
तुम समर्थ सर्व जाण करूं कहा बीनती।
परिहां रामचरण की राम न आवै हीनती॥२॥
राम एक अरदास हमारी मानियो।
कामी कपटी कूड़ आपणों जाणियो॥
जे छोडो तुम हाथ और नहीं ओटजीं।
परिहां रामचरण रखि सरण बच्च सब खोटजी॥३॥
कहा करूं अरदास सकल बिधि जांणिहो।
अन्तरगत की पीड़ पीव पहचांणिहो॥
भव मोचन भगवान ढ़ील नहिं कीजिये।
परिहां रामचरण की बांह नाथ गह लीजिये॥४॥

चन्द्रायणा—चिन्तावणी को अंग

अंतकाळ की बार सगो इक राम है।
सुत दारा परिवार सबै बेकाम है॥
काल महा परचंड पछाड़ै जीव कूं।
परिहां तिहिं अवसर रिछपाल सुमरि ताहि पीव कूं॥१॥
हरि मारग के हेत भया नर अंध रे।
निस दिन आठूं जाम करै घर धंध रे॥
छाती ऊपर सबल शिला हैं कांमणी।
परिहां रामचरण ये मोज मुग्ध मन भांमणी॥२॥
मोह जाळ की पासि जगत शिर देत है।
आपण कर बिस्तार आप फंसि मरत है॥
अंध धुंध संसार भजै नहिं राम रे।
परिहां रामचरण नरदेह गई बेकाम रे॥३॥
मानुष देही पाय भजै नहिं राम रे।
कर्मां सूं हुशियार आन का काम रे॥
जन्म मरण दुख दोय सो ही नहिं छूटसी।
परिहां रामचरण कह साच अंत जम कूटसी॥४॥
ऊंचा बास अवास गिरिवरां शीश रे।
आंण फिरै चहुं ओर अवनि का ईश रे॥
शूरबीर गज बाजि जोड़ अरि मोड़ते।
परिहां रामचरण बिन राम गये शिर फोड़ते॥५॥
बायु बेग गज बाजि महल अरु माळिया।
जरी झरोखां बारिक पड़दा ढ़ालिया॥
राज साज सुत नारी नवला नेह रे।
परिहां रामचरण बिन राम अकयारथ एह रे॥६॥
राज पाट धन धांम जगत सुख नास रे।
ओस बूंद शिर घास अथिर यूं बास रे॥

सब सुख को सुख सार सनातन राम है।
परिहां रामचरण भज ताहि अमर पद धाम है ।। ७।।

सवैया—साच को अंग

कोई कहै हरि पूर्व मैं, पुनि कोई कहै उतरा खण्ड पावै।
कोई कहै परमेश्वर पच्छिम, कोइक दच्छिण देश बतावै ।।
च्यारूं दिशा विचरै हरि के हित, आप खोज्यां विन आयु गुमावै।
रामचरण विनां गुरु ज्ञान हि, झीणों सो मारग हाथ न आवै ।।१।।
राम हि राम सबे भरि पूरण, राम विनां नहि खाली जगा।
जल में थल में वायु पावक में, जैसें सूत के साज तगाही तगा ।।
सचराचर में थिर थावर में, तैसें हेम का भूषण हेम लगा।
कह रामचरण बिना गुरु ज्ञान ही भूल फिरै चहुं देश भगा ।।२।।
कोइ मूंदत है मुख द्वार कूं, कोइक अंग भभूति लगावै।
कोइक गूदड़ भेष बणावत, कोइक विरकत त्याग जणावै ।।
कोइक घीसत पांव में सांकल, कोइक पंडित है ठिग खावै।
रामचरण बिनां गुरु ज्ञान हि झीणूं सो मारग हाथ न आवै ।।३।।
गान विद्या कोइ नाच करे, कोई बांच कथा पुनि अर्थ जमावै।
कोइक धातुकि वात चलावत, विद्धि अनेक सूं सिद्धि जणावै ।।
ये परपंच करै सब पेट कूं, चेटक चाल दुनी डहकावै।
रामचरण मरण खरो, शिर होय निराश निराश न गावै ।।४।।
घर छाडिकै क्यूं बनवास करै, हरिदास नहीं शिर केश वधायां।
लूंच कियां मुख पाट दियां, हरि नांहि मिलै अंग छार लगायां ।।
कांन फड्यां लिंग चाम कड्यां, यूं राम रिझै नही मूंड मुंडायां।
रामचरण लहै पद दास को, पंच बिषै तजि राम कूं गायां ।।५।।
हिंदू को देव दवारिका राजत, वेद पुराण में पंडित गावै।
कुरान कतेब तुरक्क पढ़ै, सिंध बैठ जिहाज मक्कै चलि जावै ।।
पाथर पांणी में भूलि रहै, मन की भ्रमना सबकूं भर्मावै।
रामचरण अचंभो सो लागत, पक्ख बंध्यां वर साच न आवै ।।६।।

सवैया—भेष को अंग

थोड़ो सो त्याग कै चोगुणो घेरियो, बूडि रह्यो घर का धंध में ।
शठ छूटण हेत उपाय करी, पुनि आय फस्यो जम का फंद में ॥
कर दांतलो जेली गंडासी गही, नित फेरत भोर रई दधि में ।
कह रामचरण बंध्यो घरटी, गल नांहि रहै गुरु का बंध में ॥१॥
ऐसे जीवन सूं मरबो ही भलो, शठ छोड़ि संसार खराब भयो ।
तन ऊपर सांग फकीर को दीसत, धंध में आयु वदीत गयो ॥
कभू गोबर थापत पीसत पोवत, साध सूं नारि सो होय रयो ।
कहै रामचरण ऐसो धिक् जीवन, सांग लजावण कांहि लयो ॥२॥
पीवत भांग तिजारो तमाखू हि, खाय अफीम रहे रंग भीना ।
कर्म अशुभ करै केई कुकृत, सुकृत शुभ सूं होय पछीना ॥
राम को नाम कह्यां खिज ऊठत, दांम कै काम गलाम अधीना ।
रामचरण ये भेष लजावत, ऐसे कूं संत कहै मति हीना ॥३॥

रेखता परचा

[१]

रसना लिव्वसैं शब्द तब सरकिया कंठ कै ध्यान विश्वास पाया ।
ईंगला पिंगला चलत दोउ एक रस कंठ हिरदा विचै ध्वनी लाया ॥
शब्द परकाश हिरदै भया परम सुख प्रेम का चांदणा तिमिर भागा ।
विरह की तप्ति शीतल भई पिवखपी रोम ही रोम भड़ अधिक लागा ।
नाभि ही कमल जाइ शब्द फिर उलटिया मेरु कै दंड होइ गगन आया ।
पर्शि कै त्रिकुटी न्हाय तिरवेणि तट गगन का गोख परि जाय छाया ॥
तीन ही लोक सैं अलध सुख देखिया सुरति अरु शब्द मिल करत केळा ।
राम ही चरण अब होय न्यारा नही अष्ट ही जाम नित रहत भेळा ॥

[२]

घोर अनहद की गगन गिरणाईया होत बहु सौर नहि कहत आवै ।
झालरी बीण मरदंग सहनाईयां बांसुरी ताल झुंणकार लावै ॥

भेरि रणसिंग करनाल वंक्या बजै चंग अरु उपंग गति करत न्यारी ।
एक इक नाद में राग नाना उठै मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी ॥
मंजरी मान धधकार धोलक करै गिड़गिड़ी राय मोहोचंग बाजै ।
रुणझुंणू रुणझुंणू नृत्य ज्यूं घूघरू घंटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै ॥
रच्यो कोतूल अति काया अस्थूल में सुखमना नीर फुंव्वार बर्शै ।
परम ही जोति का चांदणा चहुं दिशा पुरुष भरपूर नहिं आन दर्शै ॥
पुरुष रक्कार जहां सुरति मिलि सुंदरी सुन्य से महल बिश्राम कीया ।
पूर्णानंद कूं पर्शि निर्भय भई पीव की सेझ सुख लूटि लीया ॥
अंग सूं अंग मिल संग छांडै नहीं सुणत जहां राग मस्ताक होई ।
राम ही चरण वै देश की सैंन कू. महरमी संत बिन लखै न कोई ॥

कुण्डल्या

पूरब जा भल पश्चिमां भल दक्षिण उतराद ।
भजन बिना भव ना तिरै वेद कहै सब साध ॥
वेद कहै सब साध भर्म क्यूं भटका खावै ।
राम सकल भरपूरि दुर्मति दिल दौड़ावै ॥
रामचरण ता राम कूं रट्यां कटै अपराध ।
पूरब जा भल पश्चिमां भल दक्षिण उतराद ॥ १ ॥

होई बदरी जगन्नाथ करि गया सेतु बन राम ।
जाय द्वारिका बावड़चा परसी चारों धाम ॥
परसी चारों धाम और भी तीर्थ न्हाया ।
मन की वा ही मूठ पूठ सब कूं दे आया ॥
भजता रमता राम कूं तो सन्मुख सब ठाम ।
होइ बदरी जगन्नाथ करि गया सेतु बन राम ॥ २ ॥

गांव छांडि गंगा चल्या सुरति मेल्हि घर मांहि ।
घर कां सूं फिर फिर कहै दिन घणां लगाऊं नांहि ॥
दिन घणां लगाऊं नांहि न्हाय के वेगो फिर हूं ।
रह्यो अधूरो काम आय पूरो मैं करि हूं ॥

तीरथ की कीरती करै जगत इसी विधि जांहि ।
गांव छांडि गंगा चल्या सुरति मेल्हि घर मांहि ॥ ३ ॥
पक्खपात सूं मति वंधे कीजे साच पिछांण ।
निरपख होय सख लीजिये पख मैं खैंचातांण ॥
पख मैं खैंचातांण इष्ट नाना ठहरावै ।
राम शब्द निर्वांण साध निर्पक्ख वतावै ॥
रामचरण तजि झूठ कूं सत्य मता कूं जांण ।
पक्खपात सूं मति वंधै कीजे साच पिछांण ॥ ४ ॥

ग्रन्थ गुरु महिमा

रमतीत राम गुरुदेवजी, पुनि तिहुं काल के सन्त ।
जिनकूं रामचरण की, वन्दन बार अनंत ॥
शीश धरूं गुरु चरणतल, जिन दिया नाम तत्सर ।
रामचरण अब रैण दिन, सुमिरै वारंवार ॥
प्रथम कीजै गुरु की सेव, ता संग लहै निरंजन देव ।
गुरु किरपा बुधि निश्चल भई, तृष्णा ताप सकल बुझि गई ॥
मैं अज्ञान मति का अति हीन, सतगुरु शब्द भया परवीन ।
सतगुरू दया भई भरिपूर, भर्म कर्म सांशो गयो दूर ॥
गुरु की पूजा तन मन कीजे, सतगुरु शब्द हृदय धरि लीजे ।
सतगुरू सम दूजा नहिं कोई, जासूं तन मन निर्मल होई ॥
सतगुरु विन सीझ्या नहिं कोई, तीनलोक फिरि देखो जोई ।
नारद पाया गुरु उपदेश, चौराशी का मिट्या कलेश ॥
गरु विन ज्ञान कहो किन पाया, वैन सैन करि गुरु समझाया ।
सतगुरु भक्ति मुक्ति का दाता, गुरु विन नुगरा दोजग जाता ॥
गुरु मुख ज्ञान सदा सुख पावै, नुगरा नरकै साँच न आवै ।
नुगरा का कीजै नहिं संग, ज्ञान ध्यान में पाड़े भंग ॥
सतगुरु साच शील पिछनाया, काम क्रोध मद लोभ गुमाया ।
गुरु किरपा संतोष ही आया, तृष्णा ताप मिट्या सुख पाया ॥

गुरु गोविंद सूं अधिका होई, या सुनि रीस करो मति कोई ।
प्रथम गुरु सूं भाव वधावै, गुरु मिलिया गोविंद कूं पावै ॥
दत्त दिगम्बर गुरु चौवीश, सवही का मंत धार्‌या शीश ।
अपनी अकल आप समझाया, मति फुरण कूं गुरु ठहराया ॥
गुणवंता गुण कदै न भूलै, कृतघ्नी दोजग में झूलै ।
सुगरा गुरु की सैन पिछानै, नुगरा नर वायक नहिं मानै ॥
शुकदेव व्यास गर्भ जोगेश, गुरु कीया जिन जनक नरेश ।
जन्मत मोह जीति वन गयो, तो भी गुरु वन काज न भयो ॥
द्वादश वर्ष गर्भ तप कीन्हा, माया सूं मन रती न दीन्हा ।
पिता व्यास जन्मत ही त्याग्यो, नरपति गुरु सूं सांशो भाग्यो ॥
त्याग विराग मत्त को पूरो, इन्द्रिय जीत काछ दृढ़ शूरो ।
एती लछ अरु गुरु सूं द्रोही, तो वाको दर्श करो मति कोही ॥
वाकै दर्श बुद्धि सब नाशै, ज्ञान हीन अज्ञान प्रकाशै ।
वा संग गुरु की अवज्ञा आवै, भक्ति हीन होइ नरकां जावै ॥
गुरु भक्ता गुरु शिर पर राखै, गुरु को शब्द कभू नहिं नाखै ।
वाको संग सदा ही कीजे, तन मन अर्प राम रस पीजे ॥
सतगुरु मिल्यां मोक्ष पद पावै, अनंत कोटि जन महिमा गावै—
भया निरोग जिनां गुरु गाया, रोग न गया वैद्य विसराया ॥
सब संता की साख सुनीजे, तो गुरु सू कपट कदे नहि कीजे ।
गुरु को ब्रह्म रूप करि जानै, ताकी भक्ति चढ़ै परमानै ॥
गुरु किरपा नर की बुधि पाई, पशू वृत्ति सव दूर गमाई ।
आप नमै गुरु दीरघ देखै, ता शिख को कृत लागै लेखै ॥
जो नर गुरु का अवगुण धारै, होय मनमुखी गुरु विसारै ।
सो नर जन्म जन्म दुख पासी, गुरुद्रोही जमद्वारे जासी ॥
गुरु मनुष्य बुधि जानो मत कोई, सतगुरु ब्रह्म बुद्धि समजोई ।
सतगुरु सकल कालको काल, शिखाँ निवाजन दीन दयाल ॥

सतगुरु कूं मस्तक धरे, राम भजन सूं प्रीति ।
रामचरण दै प्राणियां, गया जमारो जीति ॥

साचा सतगुरु सेइये, तजिये कुड़ा मत्त।
रामचरण साचा मिल्यां, दर्शेगा निज तत्त॥
गुरु महिमा सीखै सुनै, हिर्दै करै विचार।
रामचरण तत शीधले, सो ही उतरे पार॥

ग्रन्थ नाम प्रताप

रमतीत राम गुरुदेवजी, पुनि तिहुं काल के संत।
जिनकूं रामचरण की, वंदन बार अनंत॥
महिमा नाम प्रताप की, सुनो श्रवण चित लाय।
रामचरण रसना रटो, तो कर्म सकल झड़ि जाय॥
जिन जिन सुमरया नाम कूं, सो सब उतरया पार।
रामचरण जो विसरया, सोही जम के द्वार॥
राम नाम कूं जिन जिन ध्यायो, भव कूं छेद परम पद पायो।
शिवजी निश दिन राम उचारे, राम बिना दूजो नहीं धारे॥
पार्वती कूं राम सुणायो, राम बिना सब झूंठ बतायो।
सो ही राम सुन्यो शुकदेवा, गर्भवास में लाग्यो सेवा॥
राम सुमरि सब मोह निवार्यो, मात पिता तज वनहिं सिधारयो।
रामप्रताप रंभा गई हारी, सुमरत राम कामना मारी॥
ब्रह्मा पुत्र च्यार सनकादिक, राम नाम के भये सवादिक।
राम प्रताप गर्भ नहिं आवै, सुमिरत राम परम सुख पावै॥
राम नाम नारद मुनि गावै, हृदय प्रेम अति प्रेह बधावै।
शेष रसातल राम पुकारे, रसना लिव कबहूं नहिं टारे॥
उभय सहँस रसना है जाकै, राम राम रटता नहिं थाकै।
नर नारी सुमरे नहिं रामा, एक ही जीभ भई बेकामा॥
राम नाम ध्रुव ध्यान लगावे, बसि वैकुंठ बहुरि नहिं आवे।
राम भजत छूटा सब कर्मा, चन्द रु सूर देय परिकर्मा॥
राम राम प्रह्लाद पुकारयो, ताको पिता बहुत पचि हारयो।
संकट सह्यो पण राम न छांड्यो, राम भरोसे मरणोंहि मांड्यो॥

अग्नि धार पर्वत सूं राख्यो, सिंह सर्प गज परिहरि नाख्यो ।
अन्ध कूप में राम बचायो, जन को जश हरि जग दिखलायो ॥
कोप्यो असुर खड्ग लियो कर में, जनके हित प्रगट्यो हरि खंभ में ।
मार्यो असुर भक्ति विस्तारी, जन प्रह्लाद की मीच निवारी ॥
राम कहै तिन कूं भय नाहीं, तीन लोक में कीरति गाहीं ।
राम रटत जम जोर न लागै, राम रटत सांशो सब भागै ॥
द्विज अजामेल मद मांस अहारी, गणिका रत विषया अतिभारी ।
कर्म करत तृप्ती नहिं भयो, विषय संग आयु क्षीण ह्वै गयो ॥
अन्त समय जमदूतन घेर्यो, रामनरायण सुत के हित टेर्यो ।
जमदूतन सूं लियो छुड़ाई, अपणों जाण रु करी सहाई ॥
ऐसो पतित और नहि कोई, राम कह्यां वाकी गति होई ।
अजाण भज्याँ का एह सहनाँणा, तो जानि भज्याँ का कहा बखाँणा ॥
गणिका एक गरक कर्मन में, हरि की शंक नहीं कछु मन में ।
जाकूं संता सैंन बतायो, राम राम कहि कीर पढ़ायो ॥
सुवा पढ़ावत विषया भूली, रामप्रताप सुख सागर भूली ।
रामप्रताप जुग जुग में गावै, मूरख नर कोइ भेद न पावै ॥
हनूमान अंजनि को पूता, रामचन्द्र को कहिये दूता ।
सो भी रसना राम उचार्यो, रामप्रताप कारज सब सार्यो ॥
रामचन्द्र जब लंक सिधाया, सिन्धु तरण की करै उपाया ।
विश्वामित्र कहै समुझाई, राम नाम लिखि पथर तराई ॥
यह देखो नह केवल कर्ता, अवतारां का कारज सरता ।
भक्त हेतु अवतारहि धरही, राम रट्यां सब कारज सरही ॥
वाल्मीकि बहु जीव सताया, जीव शीव का भेद न पाया ।
संता शब्द मरा कहि भाख्यो, गहि विश्वास हृदय धरि राख्यो ॥
तीजे शब्द उलटि भये रामा, वाल्मीकि का सरिया कामा ।
शतकोटी रामायण गाई, रामप्रताप एसो है भाई ॥
बहुरि कहूँ पँडवां का जिज्ञ की, महिमा करी कृष्ण हरिजन की ।
रामप्रताप पंचायण बाज्यो, जोग जिज्ञ जप तप सब लाज्यो ॥

रामप्रताप नीच भयो ऊँचो, राम बिना ऊँचो कुल नीचो ।
रामजनाँ की भ्रान्ति न कीजे, भ्रान्ति किया नर नरक पड़ीजे ॥
महि गज ग्रहा समँद मैं घेर्‌यो, राम राम ऊँचै स्वर टेर्‌यो ।
रटत राम छूट्या सब फंदा, मुक्त भयो तत्काल गयंदा ॥
फंद में पड्याँ पशु भी ध्यावे, नर गृह बंध्यो सुद्धि नही पावे ।
जाकूं कैसे राम उबारे, जन्म जन्म भव सागर डारे ॥
राजा जनक जज्ञ अति कीन्हो, नव जोगेश्वर दर्शन दीन्हो ।
राजा मन को सांशो बूझै, तुम कूं भक्ति भेद सब सूझै ॥
प्रभू हमकूं देहु बताई, तुम बिन मन को भर्म न जाई ।
और सकल साधन भ्रम नाख्यो, सत्य शब्द एक रामहि भाख्यो ॥
नरप परीक्षित भयो परायण, शुकदेव सूं शब्द पिछायण ।
राम राम दिन सात पढ़ायो, तजि नर लोक परम पद पायो ॥
केता कहूँ कहत नहिं आवे, हरि हरिजन को पार न पावे ।
च्यारि जुगन की कौन चलावे, असंख्य जुगाँ बिच रामहि गावे ॥
राँका बांका नामदेव दासा, जिनकै एक राम विश्वासा ।
राम विना दूजो नहिं जांणे, जग में रहै रु उलटी तांणे ॥
तुलसी पत्र लिख्यो रक्कारा, ता सम और नहीं कोई भारा ।
सब ही द्रव्य धर्म भयो हळको, राम विना भोडळ को भळको ॥
भक्ति भानु प्रकटे रामानंद, ताकै रहै सदा उर आनंद ।
द्वादश शिष्य भये बडभागी, जिनकी प्रीति राम सूं लागी ॥
दास कबीरा भये उजागर, रामप्रताप भक्ति का आगर ।
राम राम रटि राम समाया, बहु जीवन कूं भेद बताया ॥
कृष्णदास पयहारी कहिये, राम बिना दूजो नहिं गहिये ।
अग्र श्याम जंगी अरु तुरसी, देवमुरारि भया बंध कुरसी ॥
कीता घाटम कूबा केवल, राम राम रटि भया निकेवल ।
राम राम रट्यो हरिदासा, जक्त जाल सूं भयो उदासा ॥
ज्ञानी गर्क भया अरु परसा, राम सुमरि जग जाण्यों निरसा ।
दादू दास जन्म कुल नीचै, राम रटत पहुँच्यो पद उंचै ॥

नीच ऊँच कुल भेद विचारै, सो तो जन्म आपणों हारै ।
संता के कुल दीशै नाहीं, राम राम कह राम समाहीं ॥
परशुराम खोजी बाजींदा, हरीदास जन हरि का वंदा ।
पहली नीचा कर्म कमाया, राम सुमरि उज्वल पद पाया ॥
संतदास कलि भया कवीरा, राम भजन रत संत सुधीरा ।
पर उपकार धरी जिन देहा, छके ब्रह्म रस रहै विदेहा ॥
कृपाराम संत का बाला, ज्यूं कबीर घर भया कमाला ।
दया देश परमारथ पूरा, निर्मल चित्त भजन कूं सूरा ॥
जिनकी किरपा हम निधि पाई, राम नाम की कीरति गाई ।
ऐसो कुंण जो कीरति गावे, हरि हरिजन को पार न पावे ॥
सायर कहो एसो कुँण थागे, जितो पियो अपनी तृष भागे ।
राम संतां का अंत न आवै, आप आपकी बुधि सम गावै ॥
राम प्रताप सुनो अब एसो, भजताँ भयो कहूँ सो तेसो ।
राम रटत गुना रस चाखै, संत शब्दां में प्रगट भाखै ॥
प्रथम राम रसना सूं गावै, मन कूं पकड़ि एक घर लावै ।
राखे सुरति शब्द ही माहीं, शब्द छांडि कहुं अन्त न जांहीं ॥
तब रसना शिर छूटै धारा, चलै अखंड नहिं खंडै लगारा ।
जल पीवन की श्रद्धा नांही, मति यो अमृत दूरि होइ जांहीं ॥
रस पीवत चुधा सब भागी, कंठां शब्द टगटगी लागी ।
नाडि नाडि में चलै गिलगिली, सुख धारा अति बहै सिलसिली ॥
मुख सूं कछु न उचरे बैना, लग्या कपाट खुलै नहीं नैना ।
श्रवणां चर्चा सुणैं न कोई, कंठ ध्यान यह लच्चण होई ॥
कंठ के ध्यान कँमकँमी जागै, रोम रोम सीतंग सो लागै ।
हियो गद् गदे श्वास न आवै, नैणा नीर प्रवाह चलावै ॥
एक दिवस इक भया तमासा, कण्ठ हृदा बिच उठ्यो हुलासा ।
ज्यूं पाळ की डोर न छूटी, हिरदे सीर सुखम रस ऊठी ॥
शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा, ज्यूं रैण अंधेरी चंद प्रकाशा ।
भर्म कर्म सांशो गयो भागी, हिरदै ध्वनी अखंड लिव लागी ॥

कहा कहूं या सुख की महिमा, और सुख सब दीशे पलमा।
हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई, दूजो साधन रहै न कोई॥
हिरदा सूं लै धरणी गई, नाभि कमल में चेतन भई।
शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे, रोम रोम में होइ रही रागे॥
नौसे नारी मंगल गावे, तहां मन भँवरा अति सुख पावे।
शीतल भई सबै ही काया, शब्द ब्रह्मरस अमृत पाया॥
अब तो शब्द गगन कूं चढ़िया, पच्छिम घाटि होईकै अनुसरिया।
घाटी बीस मेरु की छेकी, इक बीसै गढ़ गया विशेखी॥
पहली बैठा त्रिकुटी छाजे, जाके ऊपर अनहद बाजे।
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया, निर्मल होय आगे कूं ध्याया॥

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां झाके जल झूलिके, निर्मल होय निराट॥
अब त्रिवेणी न्हाइकै, कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलध सुख, यो कोई चौथा देश॥

अब चौथे घर पहुँता जाई, जहाँ का चहन मैं कहूं सुणाई।
घरर घरर अनहद घररावे, परम ज्योति दामणि झलकावे॥
सुषुमण नीर लूंब झड़िलाई, भीजत सुरति गर्क होइ जाई।
अर्ध ऊर्ध जहां कमल प्रकासा, सुरति भँवर होइ करत बिलासा॥
घुरै अखण्ड अनाहद बाजा, प्राण पुरुष जहां तख्त बिराजा।
झिलिमिलि झिलिमिलि नूर प्रकासै, अनंत कोटि रवि प्रकट्या भास॥
या तो बात अतौल है भाई, मुख सूं कह्यां तोल ह्वै जाई।
पवन कहो कैसे गह हाथा, कैसे भरै गगन की बाथा॥
रूप वर्ण कैसो तड़काको, ऐसो कहा बखानों जाको।
हाक वाक रहे कहत न आवै, पहुंच्या होइ सोही भल पावै॥

अनहद गरजै नभ झरै, दामिनी ज्योति उजास।
रामचरण सन्नि सायराँ, हंसा करत निवास॥

सायर तट हंस बैठा जाई, सायर हँस में रह्या समाई ।
ओत पोत भया द्वैत न दर्शै, संत गरक ब्रह्म सुख कूं पर पर्शै ॥
ब्रह्म परर्या की दशा बताऊं, बाहिर के लत्तण पिछनांऊ ।
जाके रंक एक ही राऊ, माया सेती करे न भाऊ ॥
जाके अन्दर ब्रह्म रस बूठा, सकल बिहार होइ गया झूठा ।
कनक कामिनी करै न नेहा, छक्या ब्रह्म रस रहै विदेहा ॥
जैसे बूंद मिली सायर में, कैसे पकड़ि सकै कोइ कर में ।
जीव ब्रह्म मिलि भया समाना, ब्रह्म मिल्याँ कर्म करै न आना ॥
एह चहन दरश्याँ बिनां, मति कोइ छोडो ध्यान ।
रामचरण इक राम बिन, सब ही फोकट ज्ञान ॥
रामचरण भज राम कूं, ब्रह्म देश कूं जाय ।
जहां जम जुरा का भय नहीं, सुख में रहै समाय ॥
रामचरण कहै राम को, बड़ो प्रताप जग मांहि ।
अनंत कोटि जिन उधरया, भजै सो भर्मै नांहि ॥

छन्द भुजंगी

नमो गुरुदेवं कृपा पूर कीन्ही, नमो आप स्वामी अभय गति दीन्ही ।
नमो वीतरागा सुधा नाम पागी, नमो योग ध्यानी समाधि सु. लागी ।
नमो ब्रह्म रूपं अरूपं अलेखं, नमो आप पारं उतारे अनेकं ।
कहै रामचरणं नमो जी दयालम्, कृपा पूर मोपे करी है कृपालम् ॥१॥
कृपा पूरि मोपै कृपालं करि है, महा भीन होती दुराशा हरी है ।
कियो दिल्ल पाकं विपाकं निवारे, दियो राम नामं सबै काम सारे ।
दिये ज्ञान भक्ति सु निर्वेद साजं, तिहूँ लोक भोगं बताये निकाजं ।
दियो तोष पोषं विलोकं दयालम्, कहै रामचरणं नमामी कृपालम् ॥२॥
बड़े दान पत्ती सबे रीति पोखे, सदा सम दृष्टी कहीं न बिदोखे ।
कहा रंग रावं गिणे एक भावं, देवे चीज रीझं उदारं स्वभावं ।
मानो मेघ धारा नहीं भूमि देखे, करे ज्ञान छोलं सदा यूं बिसेखै ।
दयावान दाता बड़े ही दयालम्, कहै रामचरणं नमामि कृपालम् ॥३॥

महाक्रान्ति भारी तपै ज्यूं दिनेशं, सदा ज्ञान रूपी विदेही नरेशं।
मानूं शान्ति धीरं वशिष्ठं बखानं, नहीं मोह माया न कायाभिमानं।
लियां जोग वैराग्य भक्ति परा है, सदा मिष्ट वाचा उचारे गिरा है।
कोऊ शरण आवै करै प्रतिपालम्, कहै रामचरणं नमामि कृपालम् ॥४॥
महा तेज पुंज शरीरं बखानं, सदा नूर सानंद सोभायमानं।
गुणातीत स्वामी अकामी अलेखं, जना मध्य आपै गुरूजी विशेखं।
देवे आप धीरं हरे क्रोध ज्वालं, द्रवै सोम दृष्टि करंते निहालं।
मुखा मधुर हांसी विलासीक ब्रह्मं, दिपै संत गादी अनादि सुधर्मं।
सदा पत्त सांची अजाची अकालम्, कहै रामचरणं नमामि कृपालम् ॥५॥
मैं हूँ तोर चरणां पर्यो नित्य स्वामी, तुम्है सानुकूलं भये अंतर्यामी।
दई मोहि धीरं अभीरं किये हैं, दोऊ हस्त शीशं दया से दिये हैं।
रखें आप शरणां सकरुणा सुणी है, उदे भाग्य मेरो भली ये बणी है।
किये मुक्त रूपा हनी जग्ग जालम्, कहै रामचरणं नमामि कृपालम् ॥६॥
नमो राम रूपं गुरुजी अगाधै, तुम्है सेव सानन्द सूं सर्व साधै।
ब्रह्म ईश विष्णादि अवतार धारै, सदा एक महिमा गुरू की उचारै।
कहे वेद वेदान्त सिधान्त जेता, त्रिपूं लोक मध्ये धर तन्न तेता।
निजानंद ध्यानं गुरु को बखानै, कहै रामचरणं यहै मन्त्र मानै ॥७॥
लिपै नांहि काहू फणी ज्यूं मणि है, इसी रीति तोलाँ अनंतां गिणी है।
सबै घट्ट पूर मानों व्योम रूपा, निराकार स्वामी अनामी अनूपा।
ऐसे गुरू अमापं अतोलम्, नहीं वार पारं अगाधं अडोलम्।
गुरु राम धामं महा सुक्खदानी, कहे रामचरणं स्तुती बखानी ॥८॥

पद [राग—कनड़ो]

[१]

निशिवासर हरि आगें नाचूं चरण कमल की सेवा जांचूं ॥ टेर ॥
स्वर्ग लोक का सुख नहीं चाहूं जनम पाय हरिदास कहाऊं ॥ १ ॥
च्यार पदार्थ मनो बिसारूं भक्ति बिना दूजो नहिं धारूं ॥ २ ॥
रिधि सिधि लक्ष्मी काम न मेरे सेऊं चरण शरण रहूँ तेरे ॥ ३ ॥

शिव सनकादिक नारद गावे सो साहिब मेरे मन भावे ॥ ४ ॥
रामराय इक अर्ज हमारी रामचरण कूं द्यो भक्ति तुम्हारी ॥ ५ ॥

पद [राग—कनड़ी]

[२]

रामजी सब का सिरजण हारा ।
ऊंच नीच कोई भेद न जाणे भज्यां उतारे पारा ॥ टेर ॥
पंडित गावे वेद पुराणा दुनियां आन पसारा ।
हरि मारग की खबर न पाई भूल्यो सब संसारा ॥ १ ॥
सन्त मिल्या सब ही विधि पावे भजन भेद अधिकारा ।
रामनाम निरपक्ष बतावे नहीं कोई म्हारा थारा ॥ २ ॥
घट घट व्यापक राम कहीजे उत्तम मध्यम व्यवहारा ।
जो ध्यावे सो ही पद पावे जा में फेर न सारा ॥ ३ ॥
तन मन जीत रामरस पीवे जीवे ईं आधारा ।
रामचरण ताहि और न भावे सब रस लागे खारा ॥ ४ ॥

आरती

आरति रमता राम तुम्हारी, तुम सूं लागी सुरति हमारी ॥ टेर ॥
रमता राम सकल भरिपूरा, सुक्षिम थूल तुम्हारा नूरा ।
आरति सुमरण सेवा कीजे, सब निर्दोष ज्ञान गहलीजे ।
येही आरति येही पूजा, राम बिना दर्शे नहीं दूजा ।
शिव सनकादिक शेष पुकारे, यह आरति भव सागर तारे ।
रामचरण ऐसी अरति ताकै, अठ सिधि नवनिधि चेरीजाकै ॥
आरति ॥ १ ॥

आरति अलख अमर अविनाशी, पूरण ब्रह्म सकल सुखराशी ॥ टेर ॥
रमता राम सुरति के स्वामी, अलह अमूरति अन्तरजामी ।
सूरति मूरति आदि न अन्तां, सबसूं निर्वृति सब बर्तन्ता ।
चवदा तीन लोक पतिशाही, सप्तद्वीप नवखंड दुहाई ।
वारपार कहुँ थाह न आवै, सुमर सुमर जन मझि समावै ।

ऐसा साहिब खावंद मेरा, रामचरण चरणों का चेरा ।
आरति ॥ २ ॥

आरति अचल पुरुष अविनाशी, घटघट व्यापक सकल प्रकाशी । टेर ॥
परथम आरति मंदिर बुहारया, राम राम रटि कर्म निवारया ।
दूसरि आरति दीपक जोया, हिरदै प्रेम चांदणा होया ।
तीसरी आरति कुम्भ भराया, नाभि कमल सूं गगन चढ़ाया ।
चौथी आरति चौकि बिराजै, जहां अनहद का बाजा बाजै ।
पांचइ आरति पूरण कामा, सुरति परसिया केवल रामा ।
सेवक स्वामी भया समाना, रामहि राम और नहिं आंना ।
रामचरण ऐसी आरति कीजे, परसि अमर वर जुगजुग जीजे ।
आरति ॥ ३ ॥

श्री रामजनजी महाराज की अरणभै वाणी

स्तुति—कवित

नमो राम सुखधाम नमो निर्लेप निरंजन ।
नमो गुरु गुण जीति नाम दायक दुख भंजन ॥
नमो संत मन अन्त महापद के अधिकारी ।
त्रिधा भेद वषांन जांनि विपु एक विचारी ॥
रामजन्न तन मन्न सूं करै बंदना सोय ।
आदि अंत मधि साह की तुम बिन नांही कोय ॥ १ ॥
नमो नमो राम रमतीत हो अजीत आप ।
सत्य चिदानंद रूप नित्य निराधार जू ॥
नमो निज नूर भर पूर प्रमात्म हो ।
आत्म प्रकाश वत्त मन वाणी पार जू ॥
अखिल अमल अति गति हुन लखै कोई ।
ब्रह्मादिक वेद साध विचार जू ॥
रामजन बंदन करत कर भेटि मोर ।
तोर पद तेज पुंज नमो निराकार जू ॥ २ ॥

नमो निराकार निर्लेप सो अछेप आप ।
ताप तीन हरन करन मुक्ति को स्वरूप जू ॥
नमो आदि अंत मध्य सिद्धि शुभ धाम राम ।
अष्टजाम एक रस आतम अनूप जू ॥
नमो सुखदाई सो बड़ाई तुझकूं न भून ।
करुणानिधान मेट महा जग धूप जू ॥
करत प्रणाम सो प्रणाम उर महाधार ।
रामजन बंदत सुरेश राम भूप जू ॥ ३ ॥

नमो नमो गुरुदेव परम पद के परकाशी ।
नामनिधि दातार हरण त्रय गुण के पासी ॥
नित्य मुक्ति निर आश बिलासीक ब्रह्मस्वरूपा ।
तन छबि शोभा सरस दरश तें सुख अनूपा ॥
अमर ध्यान मन में रहो, रामचरण महाराज को ।
रामजन वंदन करै धन्य दिहाड़ो आज को ॥ ४ ॥

साखी—बीनती को अंग

सतगुरु रामदयाल जन, घन आनन्द सुखकार ।
तिनकूं बंदन रामजन, करिहूं नित निरधार ॥
कहा करूं मैं वीनती, राम निरंजण नाथ ।
गुनहगार है रामजन, सोही लगावो साथ ॥
मैं मदभागी रागी घणूं, रूम रूम में दोष ।
रामजन कह रामजी, है पापां को थोक ॥
नख सिख सेती कपट है, काम कल्पना पूरि ।
रामजन निर्बल सदा, कैसे सकिहै चूरि ॥
पार करो परमात्मा, भव सागर भारी ।
रामजन विनती करै, शरणागत थारी ॥
सरणै तेरे रामजी, रजा तुम्हारी मांय ।
रामजन बिनती करै, ऊजर किया न जाय ॥

तुमरे घर को रामजी, मैं हूं मोत्यो श्वान ।
इच्छया करि भलि दुरि करो, मैं नहीं तजूं निधान ॥
मैं तो पाळ्यो टूक को, भूख मांहि आयो ।
क्यों कर जावे रामजन, सरणें सुख पायो ॥
या तो किरपा आपकी, सतगुरु दीन दयाल ।
रामजन बिनती करै, मौकू कियो निहाल ॥
मेरी बहु बिधि बीनती, सुणज्यो सतगुरु राम ।
रामजन निरधार को, आप सुधारो काम ॥
बांका बन में रामजी, भूली पड्यो मम जीव ।
सतगुरु काढ्यो महर कर, और न धीजै जीव ॥
और न मेरे रामजी, सगो न दीसै कोय ।
रामजन बिनती करै, राम गरु है सोय ॥

विस्वास को अंग

रे मन धर विसवास तूं, उर में नहचत होय ।
हरि देते ग्रभवास में, ता दिन सगो न कोय ॥
जल थल ग्रम पाताल में, सुरग मधि सब ठांव ।
सचराचर कूं रामजन, नित भख देवै राम ॥
साधू सोच न राखि है, चिंत मिटावै दूर ।
राम भजन हम देखिया, राम देत सब पूर ॥
पूरै सबकूं रामजी, सूक्ष्म स्थूल बिस्तार ।
वे क्यूं भूखे रहेंगे, जो सुमरै करतार ॥
राम खड़ा विसवास पर, जे उर उपजै साच ।
साच बिहूंणा रामजन, धीर धरै नहीं काच ॥

बे विस्वास को अंग

करता कौ सुमिरण करै, भूख पुकार दास ।
रामजन जे कूड़ है, वे नर बे बिसवास ॥

बेबिसवासी बापड़ा, बकता फिरै बजार ।
तोहू कहण पावै नहीं, मूढ़ रहै झक्खमार ॥
सदा फिरै संसार में, वे बिसवासी जीव ।
जनम गुमायो बिपति में, कदै न सुमर्‍यो पीव ॥

काळ को अंग

काळ महा बल रामजन, मन में देखि बिचार ।
ता आगे कोइ ना बचै, गये देह घर हार ॥
भावै अन वस्तर तजो, सजो जोग अष्टंग ।
राम बिना छाड़े नहीं, काळ लग्यो है संग ॥
कोई नागा कोई मुनि, कोई दूध पीवंत ।
राम भजन विन रामजन, नहचै नहीं जीवंत ॥
जाय बसै गिरि कन्दरा, कन्द मूल खणि खाय ।
राम भजन बिन रामजन, काळ करै पकड़ ले जाय ॥
कहा पंडित कहा पारधी, कहा निरधन धनवंत ।
कहा वैद रोगी कहा, काळ करै सब अंत ॥
पलक पलक अरु सास जो, गिण गिण लेवै काळ ।
रामजंन क्यूं ऊबरै, जो फंदे गृह जाळ ॥
जन जीवै हरिरस पिवै, विषयादिक बिसराय ।
रामजंन महा काळ हु, हाथ जोड़ि चलि जाय ॥
रे नर चेते क्यूं नहीं, अवधि मिलावत रेत ।
काळ अचानक लेंहगे, संत करावत चेत ॥

चिंतावणी को अंग

चेत चेत रे मानवी, भयो अचेतन काम ।
जाकूं तू तेरा कहै, सो कोइ तेरा नाह ॥
आडंबर धूंहर जथा, ऐसे तन संसार ।
राम भजन करि रामजन, ढ़ीलन करो लगार ॥

कहा जनम कुल ऊँच में, तन स्वरूप दीदार ।
राम भजन बिन रामजन, वे तन ह्वै हैं छार ॥

कहा राव राजा भये, कहा भिखारी रंक ।
रामभजन कीधो नहीं, तो जमपुर जाय निसंक ॥

महल माल मौजां घणीं, नाना सुक्ख बिलास ।
राम भजन बिन रामजंन, जानहु सब को नास ॥

कहा दास दासी खड़े, करै दिलवरी लोग ।
रामभजन बिन रामजन, झूठा जाति संजोग ॥

कर जोड़े जम रामजन, जब देखे हरिदास ।
दास बिना छांडे नहीं, देत जीव कूं त्रास ॥

लार न चालै रामजन, काया माया कूर ।
या संग लाग्या मानवी, जे बिसरया हरि नूर ॥

दुख पावै बिन भजन नर, घर को भार उठाय ।
घरका सब न्यारा भया, कोइ करै नहीं साय ॥

सदा सुचेती राख कर, लेस्यूं तेरा नाम ।
रमजंन जिव बीनती, करै सुणों तुम राम ॥

नाम तुम्हारो रामजी, लेस्यूं सदा दयाल ।
गर्भ दुख मोचन करो, शरणापति रिछपाल ॥

वृथा गुमायो रामबिन, दुरलभ यह नर देह ।
रामजंन तन पाइकै, कियो न राम सनेह ॥

चित धारयो नहि रामकूं, काम वाम रस लीन ।
रामजन नर पाइ तन, कियो भजन बिन हीन ॥

खोयो नर तन भजन बिन, महा अमोलख नंग ।
रामजंन बातां सटे, चाल्यो नर भंग ॥

खाय धकाधक जगत में, बिना मान मतमद ।
पुत्र नारि सब परिहरयो, तोहू कहै सुखसद ॥

उपदेस को अंग

परगट तीनों लोक में, सोक हरण इक राम ।
रामजन सत गुरु कहै, और कहै सब गाम ॥
तारक मंत्र राम नाम, सब मंत्रा सिरताज ।
रामजंन यह जाणिये, प्रगट प्रेम जहाज ॥
च्यार वेद पट् सास्तर, नौ व्याकरण वखांण ।
पुराण अठारह रामजंन, करै नांव परमांण ॥
कहा हिन्दू मुसलमान में, जैन वैस्नु जैत ।
पट् दरसण अरु भेप सब, नाम सत्त कह देत ॥
और न कोई जीव को, साहि करण संसार ।
तातै भजिये रामजंन, आन भरम सब डार ॥
जगत नाम है तास को, जहां जहां खेंचातांण ।
रामजंन तातै तजो, प्रभुसूं वाण कबांण ॥
गुरु उपदेसै राम रस, पीवै जिग्यासी लोग ।
रामजंन मन बस करै, त्याग भोग संजोग ॥

गुरु निरमोहता को अंग

गुरु निरमोही ना वंधै, सिप साखा क जाय ।
रामजंन सिप भाव दै, तब ही कारज थाय ॥
आप देह कुछ ले नहीं, पर उपगार विचार ।
रामजंन फिर ना वंधै, निरमोहिक संसार ॥
निरमोही गुरुदेव बिन, सिप को खोट न जाय ।
रामजंन करि काम को, देवै राम मिलाय ॥
राम मिलावै रामरंजन, गुरु निरमोही होय ।
देय ग्यान वैराग धन, सिष को औगुण खोय ॥
सत गुरु खोव रोग सब, औषध दे निज नाम ।
रामजंन सिष नित पिव, तो पावै पद आराम ॥

देखा देखी को अंग

देखा देखी रामजन, करो कोइ जनि काम ।
भेद बिसार्‌या बाहिरो, पहुंचै नांहि ठाम ॥
देखा देखी दौड़वे, साच झूठ गम नांहि ।
तो पिसतावै रामजन, बिन बिवेक उर मांहि ॥
बिन बिवेक हरिनाम कूं, देखा देखी लेह ।
भीड़ पड़ै तब रामजंन, झटकै ही तजि देह ॥
भगति राम की रामजन, देखा देखी न होय ।
उर नहचो मन सुद्ध होय, तो पार पहुंचै सोय ॥
देखा देखी खेत में, कायर सामे तेग ।
अरि दल देख्यां रामजन, छूट जात है वेग ॥
देखा देखी रामजन, भगति तणूं फल नांय ।
ज्यूं कायर करड़ी पड्या, भागै पूठ बतांय ।
तातै कायर जीव को, जीवण वृथा जांण ।
पाय मिनख तन भगति बिन, कर चाल्यो सठ हांण ॥
काम दाम अरु कामणी, बणिया यह बिजोग ।
याकूं जीत्यां रामजंन, मिले राम सूं जोग ॥

सुमरण को अंग

सतगुरु रामदयाल जन धन आनन्द सुखकार ।
तिन कूं वंदन रामजन करिहूँ नित निरधार ॥
धरम करम सुं हीन गति अति मलीन महानीच ।
नांव उधारै रामजन ताकी मिटेज मीच ॥
राम नाम के पटन्तरे करूं कौन विधि आन ।
अनंत पुण्य साधन अनंत नांहि नाम समान ॥
नाम सदा साहीक है जिव के आदिर अन्त ।
तातै फल कर रामजन साधन ओर अनंत ॥

साहि करण कूं रामजन राम निरंजन देव।
तातै सुमरो राम कूं तजो आन की सेव॥
रमता राम अखंड है पूरि पिंड ब्रह्मंड।
खंड खंड व्यापीक है भज्यां मिटै भव डंड॥
सबद विचारै रामजन भूख भरमनां खोय।
भजै राम रमतीत कूं तब ही तिरपत होय॥

सोरठा

नित हुवा निरधार, भार भूष भ्रम डारि भैई।
भजै राम सब पार, रामजन तिरपत सदा॥
सतगुरु रामचरण ता परताप तिरपत भये।
मेटे मोर मरण रामजन चरणां पर्‌यो॥
सतगुरु चरण सरोज रामजन मन अलि किये।
पाई पूरण मोज ले सुगंध तिरपत भये॥

चितावणी को अंग

मनहर कवित्त.

केई वेर मोर अग केई वेर काग क्रग,
केई वेर कोकिलजु बचन सुनायो है।
केई वेर बाज होई तितर झपेट लिये,
केई वेर तितर तू होयके छिपायो है॥
केई वेर माछर को तन धारि धारि मार्‌यो,
केई वेर सुषम मसक तैं कहायो है।
तातै तूं विचारि करि डरियेज मन मांहि,
रामजन राम गाई गरुजी चितायो है॥ १
केई वेर तरु वन मांझी भयो सह्यो वड,
सीत घाम नीर भीर खरो ही सुकायो है।
केई वेर बाग में तूं भयो है रसाल तरु,
उबषरु बागवान जावतो करायो है॥

चन्दन भयो,
केई वेर सीतल सुगन्धहु
केई वेर लम्बी सूल बबूल कहायो है।
तातै अब चेत सावधान होई राम कहो,
रामजन मोसर ऐ गरुजी चितायों है ॥ २ ॥
केई वेर दोब घास पावन के तरै भई,
केई वेर बीड ब्रछ सघन रहायो है।
भार तूं अठार मांही होय होय खप गयो,
सुषम सथूल मूल तूलत्रण भयो है ॥
कहूं खाटे मीठे तूं कसीले फल होय लगे,
कहूं जहर इम्रत अनूप सोभ पायो है।
तातै अब चेत सावधान होई राम कहो,
रामजन मोसर ऐ गरुजी चितायो है ॥ ३ ॥
केई वेर पाप जूणि क्रम को न पार कोई,
खोई है उतिम बुधि द्वन्द में फसायो है।
केई वेर ऊँच कुल जनम विपर घरि,
करि करि किरत सा वाद ही गुमायो है ॥
केई वेर जिग जाप ताप सी करां लियां,
गये हैं सुरग लोक भोग सुख पायो है।
अन्त पीण होय परै मरवै इमान त्रिथा,
रामजन राम गाय गरुजी चितायो है ॥ ४ ॥
केई वेर पिंडत प्रवीन गुनि ग्यानी भयो,
केई वेर कविसर काव्य रस पायो है।
केई वेर छन्द तुक नाना विधि जोर करै,
केई वेर राग रंग रीझ कै रिझायो है ॥
केई वेर नाटक को सांग नाना भांति करै,
केई वेर कूर क्रम वटंव बनायो है।
तातै अब चेत सावधान होई राम कहो,
रामजन मोसर ऐ गरुजी चितायो है ॥ ५ ॥

अभिमान चितावणी को अंग

मनहर कवित्त

कहा तन भूषन रतन माल सोभ सारी,
कहा जरी पाट मट पोसाक बनाई है।
कहा बिधि भोजन छतीस भांति खांति करि,
स्वाद मनरंजन सजन मिलि खाई है॥
कहा दास दासी जो षवास करी जोरि खरे,
हुकम हुकम जोई हाजर कराइ है।
रामजन चेत ऐसो भयो तो गरज कहा,
रामजी का नाम बिना थोथरी सगाई है॥ १॥
बनवास के करैया तप ध्यान के धरैया,
मुनि गुफा के बसैया तपो तन ताइ है।
काव्य रीति के कवैया बात बुधि के सवैया,
ठांम ठांम के जवैया जत जस पाई है॥
बडे बस के बिहारी अग्याकार सुतनारि,
सभी सुख मन भारी भारी ठकुराई है।
एते सब आय बने एक हु से एक घने,
रामजन राम बिना थोथरी सगाई है॥२॥

मनहर कवित्त निमात

रमत रमत तत अषर जटल मत,
बरतत बरजन मरन मटत ह।
सरप गरल गत रसन अम्रत रत,
रटत रटत पत क्रमस फटत ह।
घटत घटत घट मट समटत मन,
हटत हटत तम सबद रटत ह।
करन धरत तब मदन मरत जब,
सदन सजत जत सबद रटत ह॥१॥

पद

[१]

मनरे निज बैरागी होना ।
राजा रंक एक करि जाणों ज्यूं कंकर ज्यूं सोना । टेक ।
तज पुर बास उदासी बिचरो मत कोई बांधो भवना ।
गिरि तरु मढ़ि मसाणां रहिये, कह कोई देवल सूना ॥ १ ॥
सीत निवारण जीरण कंथा जाके थे गल जूना ।
भूख लगै जब भिक्षा करणी करिहूं कर लीया दूना ॥ २ ॥
आसा तृष्णा मेल निवारो हरि भज हिरदा धोना ।
तब दिल पाक दयानिधि पावो गावै बड बड मौना ॥ ३ ॥
तन मन जीत प्रीत सतगुरु सूं धरिहूं ध्यान अखूना ।
रामजंन जन कहै वैरागी रामचरण का छोना ॥ ४ ॥

(२)

मनरे बिचरो होइ फकीरा
राम नाम निसवासर सुमरो सीस धरया गुरु पीरा । टेक ।
ह्माळ बिचारि डारी भव भारा मेटि जगत की भीरा ।
होय इकंत अकेला रहिये लहिये इस्रत सीरा ॥ १ ॥
नांहि पिछानि पडै ता तन की कहै कोइ कौन कंगीरा ।
गळ में फाटी कंथा पहर्‌यां जाकै लटकै लीरा ॥ २ ॥
कोइ आदर तस्कार करत है आप रहै मन धीरा ।
भिक्षा काज नगर मधि फिरना जरना गहर गंभीरा ॥ ३ ॥
अलिपत सदा पवन ज्यूं गंधी यूं नहीं लिपै सरीरा ।
आतम ग्यान बिचारै जोगी नांहि जगतसूं नीरा ॥४॥
सबसूं एक दृष्टि करि बरतो कहा कंगाल अमीरा ।
रामजंन मन आनंद पाया हाथ चढ़्या हरि हीरा ॥ ५ ॥

आरती

आरती तेरी अन्तर जामी पूरण ब्रह्म राम घण नामी ॥ १ ॥
कारण सबको करुणा सागर ध्यावै ताहि मिटै दुख आगर ॥ २ ॥

होइ सुख्यारी थारी सरणां, करुणाकर मेटो मम मरणा ॥ ३ ॥
कीरति रसना नाम उचारूं, एक पतिव्रत उरमें धारूं ॥ ४ ॥
अनंत लोक ब्रह्मंड अनंता, तुमरो वार पार नहीं अंता ॥ ५ ॥
ऐसे स्वामी राम हमारे, रामजंन कूं पार उतारे ॥ ६ ॥

श्री दुल्हैराम जी महाराज की अणभै वाणी

साखी—गुरुदेव को अंग

अखंड राम गुरु संतजन, मंगल मय सुख धाम ।
शीश नाय कर जोड़ नित, करि दुल्है परनाम ॥
अगम अगोचर रामजी, बोले वेद वचन्न ।
सो कलि में अवतार धरि, प्रगटै रामचरन्न ॥
सतगुरु पूरण ब्रह्म है, रामचरण महाराज ।
किरपा कर सिर कर धर्‌या, गई भरमनां भाज ॥
जग समन्दर बिच नाम की, नाव बणाइ एक ।
अनेक जीव चढ़ि तिर गये, सतगुरु सबद जपेक ॥
राम नाम की नाव है, खेवट सतगुरु जन्न ।
दुल्हैराम भव पार होय, उर धरि रामचरन्न ॥
कोई सुकृत तैं मिल्या, सतगुरु दीनदयाल ।
दुल्हैराम ताकी कृपा, मिटी काल की ज़ाल ॥
पांचों नहचल नामसूं, कह गुरु को परताप ।
उभय विना दुल्है कहै, मिटै न मन की ताप ॥
राम सबद गुरुदेव को, उर में ध्यान रखाय ।
दुल्है राम ता ध्यान सूं, ध्यान रूप होय जाय ॥
कहा कहूँ गुरुदेव की, महिमा को नहीं पार ।
सेस मुख गम ना लहै, जिह्वा दोय हजार ॥

सुमरण के अंग

सुमरण कर मन राम को, जासूं होय उधार ।
दुल्हैराम सुमरण बिना, मिटैन जम की मार ॥

राम भजन से सब मिटै, कुवधि काम की त्रास ।
नास करै सब कामना, पाप रहै नहीं पास ।
पाप ताप सब सरकि है, लियां राम का नाम ।
साखि सनक जोगी कहै, नहचै दुल्है राम ॥
राम भजन बिन गति नहीं, रे मन सोच विचार ।
दुल्है राम रट कूं पल, पल बारम्बार ॥
हल करि भजिये राम कूं, चाम दाम परिहार ।
दुल्हैराम मैं तैं तजै, तो उतरै भव पार ॥
भव पार उतर भज राम कूं, निस दिन एकै धाय ।
मन विलल्प मुचि बात है, आनंद सुख विलसाय ॥
सुख पद दाता राम है, दुःख द्वन्दर करि नास ।
दुल्हैराम भज राम कूं, नहचै धर विसवास ॥

विस्वास को अंग

आनन्द सानन्द रामजी, ताहि जानि भज लेह ।
चाहवै सो ही देयगा, दुल्हैराम कह देह ॥
देह धीरज मन थीर कर, सब सुख दायक राम ।
चार पदारथ अष्ट सिधि, तास चरण विसराम ॥
दुल्हैराम परमातमा, सब विधि पूरणहार ।
नांव राम भजि तास को, सुख आनंद अपार ॥
मालिक तो मौजूद है, किरतब अपणें सुक्ख ।
बिसवास धार भज रामकूं, बिन मांगै आवत दुक्ख ॥
दुख मांगण कोई ना गयो, आयो अपणें जोर ।
दुल्हैराम यूं थिर रहो, चलि आवै दुख दोर ॥
सुख चलि आवे दुख गये, अपणें सहज सुभाय ।
दुल्हैराम भज रामकूं, चित चिंता बिसराय ॥
चिंता किया न होय कछु, काहे सोच करो ।
दुल्हैराम निश्चित तूं, हरि को ध्यान धरो ॥

ध्यान धरो मन सुध करो, बिसवास रखो हरिपाल।
सुख चाहत है रात दिन, बिन मांगत आवत काल ॥
कान दुख अरु आपदा, आचा बूची आय।
दुल्हैराम ये ना रहै, तो सुख कैसे रह जाय ॥

काळ को अंग

काळ जाळ लियां फिरै, रैण दिवस कर मांहि।
राम बिमुखकूं पकड़सी, छूटण पावै नांहि ॥
छूटन पावै नांहि जो, त्रिलोकि तन धार।
दुल्हैराम है काळ जोरावर, राम बिमुख को मार ॥
राम बिमुख नर काळ बस, जब तब होय निधान।
दुल्हैराम भज रामकूं, नहीं काळ को पान ॥
काळ जोर लागै नहीं, सुमरौ राम सदीव।
दुल्हैराम रहणूं नहीं, काया नगर कदीव ॥
सुमरण करिये राम का, किसी पलक की आस।
दुल्हैराम नही कीजिये, काळ तणूं बिसवास ॥
काळ तणूं भय है घणूं, जीव जिता ब्रह्मण्ड।
दुल्हैराम हरि भजन बिन, मार लिये नव खण्ड ॥
ताकि ताकि लै काळ सब, देह धारी सगरै।
नर निरन्द इन्द्रादि अज, सुर आसुर सगरै ॥
दुल्हैराम बड बीर बंक, जुद्ध करण की हूंस।
ता सन्मुख नहीं होय कोई, करिहैं कान विधूंस।
खोजन दीसै सायबी, सुत न्याती बहु बाल।
दुल्हैराम ले काळ झपट, धरै रहै घर माल ॥
राम भजन बिन दुल्हैराम, ना कहुं पावत सुक्ख।
काळ जहां तहां चाटसी, नहीं स्नेहता रुक्ख ॥
स्नेह शक्ति भोगादिवश, सुत नारी परिवार।
धरे रहैं गह काळ ले, पाप लार सिरमार ॥

पाप रता पापी झकै, झूठ झखै दिन रात ।
सुणे सास्तर कह्योन माने, राम विमुख यह जात ॥
जम मार सब दूर होय, जा सिर राम धणीं ।
दुल्हैरामहीं राम कहो, फिर जननी नांहि जणीं ॥
जननी जणैन देहधर, कहै वेद सब साख ।
बंचै काळ सूं दुल्हैराम, चित चितावणी राख ॥

चिन्तावणी को अंग

राम न सुमर्‌यो मूढ़ नर, कोल गयो सब भूल ।
ता अपराध सूं गरभ में, रह्यो उरधमुख भूल ॥
ग्रभ झूलत अरजां करी, दुल्हैराम तूं जब्ब ।
हरिकूं बिसर जगत सुख राच्यो, ले चौरासी अब्ब ॥
अब पछतायां ना सरै, पड़ै आडि जुग च्यार ।
लख चौरासी रातड़ी, भुगत्यां होय संवार ॥
संवार भयो तब नरतन पायो, राम सुमर इक सार ।
दुल्हैराम तब ही मिटै, भव सागर की धार ॥
किसी खबर या देह की, ढील न करिये बीर ।
राम भजन कर प्रीतिसूं, तब सुख होय सरीर ॥
दुल्हैराम या दम्म की, आदम कूं गम नांय ।
तातैं भजिये रामकूं, सांस सांस कै मांय ॥
रे मन भजिये रामकूं, जब लगि तन में सांस ।
दुल्हैराम ई बात सूं, गरभ सासना नास ॥
नास होय जांमण मरण, गुरुदेव कहै सत्त येह ।
दुल्हैराम भजि तलबसूं, थिर नांही या देह ॥
देह धारी कोई ना रहै, दुल्हैराम जग मांहि ।
आगे हुवास चलि गया, अब हैं जो चलि जांहि ॥
जांहि अन्त मध्य के सबै, रहसी रमता राम ।
दुल्हैराम ले तास को, निस दिन रसना राम ॥

नाम सम तारण तिरण, भज सुख पद मिलिये।
देह काची है दुल्हैराम, जाय साच चलिये॥

रावण हिरणाकुस्स से, दुर्जोधन सिसुपाल।
पोण्यां दल वल छांडि गया, मन यह नहचै न्हाल॥

यह मन नहचै जांणले, जाणां रहणां नांहि।
दुल्हैराम ता कारणे, साचा राम समांहि॥

जुवती सुत अरु तात मात, भ्रात न्याति सब लोय।
ये सब प्राणी स्वारथी, तेरा सगा न कोय॥

तेरा सगा न यह सबै, मन में देख विचारि।
दुःख मांहि दूरा रहै, पूछै नहीं लगारि॥

जे पूछ्या तो क्या भया, स्वारथ कारण आय।
जब स्वारथ पूगै नहीं, तब दूरा होय जाय॥

दूरा सब संसार है, तामें मन मति देय।
झूठा जग तजि राम भज, जनम सुफल करि लेय॥

राम न सुमरयो मगन ह्वै, तज्यो न विषय विकार।
जगत कपट प्रपंच में, खोयो जनम गिंवार॥

सब अंग ढीले ह्वै गये, नख सिख लौं अब तोर।
तो भी ममतन छांडि है, थके श्रवण कर भोर॥
घर पर का गिणते नहीं, मित्र रह्या मुख मोर।
कह्या वचन कोई ना करै, दिन रैण बकै मति भोर॥
दुल्हैराम संसार का, सगा सनेही मिंत।
स्वारथ मतलब में निकट, कष्ट के मांहि तजंत॥
तन संगी है जनम को, मुतलब संग फिरै।
दुल्हैराम दुख तनिक होय, तो ....॥
नेह रखिये इक राम सूं, सगा सनेही येह।
आदि अंत लगि जगत सब, लार न चलिहै देह॥

पद

[१]

संतो ऐसा जोगी भाई ।
एकाएकी रमता रहता वन वस्ती समलाई । टेर ।
सैली सील नाद दिढ़ विंधकरि मन मुद्रा पहिराई ।
भोग तज्या भगवांतन वस्तर त्रिगुण छुरी गहाई । १ ॥
पण पातर कर मांहि लीयां सत की भिच्छा खाई ।
आत्म तृपति ग्यान की छोलां तन मन सीतल थाई ॥ २ ॥
अगम अगोचर देव निरंजन सतगुरु सबदां पाई ।
दुल्हैराम दीदार पाक दिल राम कह्यां होइ जाई ॥ ३ ॥

[२]

संतों सूरा बम्ब बाजै ।
सुनि सुनि तेग सांतरा करि हैं कमधज काम न बाजै । टेक ।
सीस काट सिरदारां सूंप पीछे अरि पैं गाजै ।
ऐसे मन सतगुरु कूं अरपैं भगत जगत सिर राजै ॥ १ ॥
परणूं एक बार भू ऊपर कहा मरणां सूं लाजै ।
धरम आपणां साचा ऊपर जीवत मरकर काजै ॥ २ ॥
यो मोसर है राम मिलण को, मत डर जगसूं भाजै ।
दुल्हैराम गुरु पद धरि सिर पर होय निरभै दिल मांजै । ३ ॥

आरती

आरती उर अंतर में कीजै, रामचरण चरणन चित दीजै ॥
तेज पुंजलौं नख सिख मूरति, मनवो मगन भयो निरख सुरति ॥
जागति अगम निगम कहि गावै, सो सरूप मो उर छिव छावै ॥
मस्त भया कर दिल दीदार, ग्यान चसम खुल गये अपारा ॥
भटकण भगी बुधि थिर होइ, रमता राम सूं रत मत होइ ॥
दुल्हैराम गुरु दरसण टारी, जनम मरण की खड़बड़ सारी ॥

श्री हरिदास जी महाराज की अणभै वाणी

स्तुति-कवित्त

(१)

नमो ब्रह्मरूप चिद रूप अनुपम रासी ।
नमो गुरु तद रूप तिमर हर तरण प्रकासी ।
नमो संत द्रिढ़मंत तत्व गह त्रय गुण जीता ।
अस्मदादि अघ व्याधि हरण दुःख करन पुनीता ।
हरि गुरु जन विन दूसरो नहीं सहारो और ।
वंदन कर हरिदास कहै तुम पद अरु शिर मोर ॥

(२)

नमो निरंजन राम सकल अंजन के पारा ।
नमो अदृष्टा रूप मध्य अध्यस्थ नियारा ।
उपादन निमित्त शक्ति कर जगत उपावै ।
पालन पोषण भरण करन सब कौ निरमावै ।
नमो नियंता रूप तुम आदि मध्य नहीं अंत ।
वंदन करि हरिदास कह तुम समृथ सिर कंत ॥

(३)

नमो अचल अविनास अखंडित अमर अमूरति ।
सचर अचर थिर अथिर सकल जग तुमरि सुरति ।
घट पट व्यक्त समान आनको भानन आवै ।
नमो अदृष्टा दिष्ट इष्ट सब को सरसावै ।
वाक्य समष्टि नांव ने व्यष्टि कह्यो न जाय ।
नमस्कार हरिदास कर मैं तुमरे सरणाय ॥

(४)

नमो अनंत अनंत कहत वेदान्त वखानै ।
अस्ति भन्ति प्रिय विषेषन करत प्रमानै ।

वर्ण द्वादश वाक्य थाकि महावाक्य रहावै ।
करत विषेष निपेध वेद सो भेदन पावै ।
ज्ञेय ध्येय प्रमेह नहीं नीह प्रमाण पमात ।
नमो नमस्ते देव तुम कह हरिदास सुनाथ ॥

(५)

रामगुरू इक रूप नहीं द्वितीया दरसावै ।
मन इन्द्रि गुण पार अगुन आकार लखावै ।
चरण शरण जे आय तरन जल भव जल तारन ।
रत मत रमता राम काम करम दूर निवारन ।
नख शिष निरमल नूर पूर परमातम स्वामी ।
जीव परै भव कूप ताहि निज पद अनुगामी ।
धुर अक्षर षट् चरन के हरण सकल अघ जाल ।
वंदे नित हरिदास जन तुम मेरे रिछपाल ॥

साखी—गुरुदेव को अंग

प्रणपति पूरण ब्रह्म को, गुरु सन्त सिर मोड़ ।
कर वंदन हरिदास तिन, शीश नाय कर जोड़ ॥
सतगुरु पूरण ब्रह्म है, रामचरण महाराज ।
वपु धर प्रगटै धरा पर, करा बहुत जिव काज ॥
ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म रूप है, ब्रह्म अदृष्टा भाव ।
रामचरण महाराज है, भव सागर की नाव ॥
गुरु गंभीर गिरिवर जिसा, लहर गहर दरियाव ।
महर होय मुक्ता द्रवै, दुख दारिद्र नसाव ॥
शारद शेष महेश विधि, नारद निगम पुराण ।
बादरायण बिधि विधि कहै, गुरु महिमा न प्रमाण ॥
गरु की निरखी सुरति जब, हरि की सरीखी देख ।
परखी मन परतीत कर, सरकी कुमति कुरेख ॥

सतगुरु ग्याता ज्ञान का, साता देन संतोष ।
माता हरि रस में सदा, त्राता भव जल पोष ॥
सतगुरु मिल सुधा भया, सूधा जग का जीव ।
चोहुगा फिरवा भर्म में, अब लहूंगा निज पद सीव ॥
सोही जिग्यासी जाणिये, दर्शण को नित नेम ।
सुमिरण में श्रद्धा वढै. दिन दिन को अधिको प्रेम ॥
सतगुरु कहत चिताय के, गाय राम गुण जीत ।
हाय भाय करता सदा, जाय जमारो बीत ॥
सतगुरु कहत चिताय के, गाय राम गुण बीर ।
जाय जगत बीत्यो सवै, ज्यूं नदियां को नीर ॥
टेक गहै गुरु धर्म की, अशुभ करम कर त्याग ।
राग मिटै संसार से, सोही जन बड़ भाग ॥
टेक गहै निज धर्म की, परम रूप पहिचान ।
मरम बतावे सरम हर, पावै पद निर्वान ॥

कुंडल्या—चितावणी को अंग

(१)

मन रे क्यूं मूंनी भयो सूनी पड़ी जुबान ।
खूनी होय खासी खता भजै नहीं भगवान ।
भजै नहीं भगवान बात बहु करि है जूनी ।
जामें लावन साव जैसे भाजी बिन लूनी ।
कहै फेर हरिदास लगे आकासन थूनी ।
ऐसो अवसर पाय होय क्यूं बैठो मूनी ॥

(२)

रे मन क्यों उन्मत्त भयो तत्व न आयो हाथ ।
सत्पुरुष मिलिया नहीं बह्यो जगत की साथ ।
बह्यो जगत की साथ बात बिगड़ी ब तेरी ।

अब ही कह हरिदास सीख जो मांने मेरी।
आन भरम छिटकाय सब, गाय राम गुण गाथ।
रे मन क्यों उन्मत्त भयो तत्व न आयो हाथ॥

(३)

मनरे तन सूं ममत तज धन सूं तांतो तोड़।
कुटंब बिटंब सम जानि कै हरि हरिजन सू जोड़।
हरि हरिजन सूं जोड़ ठौर पावै सुख रासी।
जग में जीवन थोर दौड़ मिलिये अविनासी।
कह हरिदास जन मिट जाय सब ही खोड़।
मन रे तनसूं ममत तज धन सू तांतो तोड़॥

(४)

मन रे चेत अचेत क्यूं हेत राम सूं ल्याय।
स्वेत बाल शिर पर भया अब रेत नंखावे काय।
अब रेत नंखावे काय लाय लेखे नर देही।
हाय भाय दिन जाय खाय कूकस क्रम लेही।
फिर ऐसो नहीं पायगा कह हरिदास चिताय।
मनरे चेत अचेत क्यूं हेत राम सूं ल्याय॥

(५)

बूढा ह्वै भूंडा भया मूंढा में नहीं दांत।
कर पद शिर कंपन लगै त्रिसना अति भभकात।
त्रिसना अति भभकात जात घर कान सिटावै।
कोई सुने न हाक पुकार करै कलच्या कल पावै।
सुण डोसा हरिदास कह अब तो मन धर शान्त।
बूढा ह्वै भूंडा भया मूंढा में नहीं दांत॥

(६)

सोवत सोवत सो गयो खोय दियो सब काल।
कियो कहा करनो कहा हो गयो उलटो ख्याल।

हो गयो उलटो ख्याल काळ क्या कहसी भाई ।
साहिब दरगाह मांहि पूछतां ज्वाबन आई ।
अबही चेत हरिदास कह गह मुक्ति की चाल ।
सोवत सोवत सो गयो खोय दियो सब काल ॥

(७)

जाग जाग जन कहत हैं लाग लाग हरि नाम ।
त्याग त्याग संसार कूं भाग मिल्या निज धाम ।
भाग मिल्या निज धाम कांम जासूं सिध होई ।
मात पिता परिवार लार लागे नहीं कोई ।
कहै दास हरिदास जन फिर धारे चाम ।
जाग जाग जन कहत है लाग लाग हरि नाम ॥

(८)

चेत चेत नर कहत गुरु उर में ग्यान विचार ।
पुर में बसबो अल्प है स्वल्प जन्म मत हार ।
स्वल्प जन्म मत हार कल्प बीता फिर पासी ।
पलक पलक अनमोल गयां पीछे पछतासी ।
पलक पलक हरिदास कह समझत नहीं संसार ।
चेत चेत नर कहत गुरु उर में ग्यान विचार ॥

साच को अंग

तन धोयां ऊंजळ कियां मन कूं किया न साफ ।
धर्म एक समझ्यो नहीं किया असंख्या पाप ।
किया असंख्यां पाप ताप बहुती भुगतासी ।
ले जासी जमदूत डार गल मांही फांसी ।
अदल हिसाबी बूझसी मार मूंड में थाप ।
तन धोयां ऊंजळ कियां मन कूं किया न साफ ॥

होतब को अंग

(१)

होण हार तब होय खाय कुल की पलटावै ।
होण हार तब होय कुमति बहुली उपजावै ।
होण हार तब होय सूलीं ऊंली कर जाने ।
होण हार तब होय किसी को कह्यो न मानै ।
श्याम धर्म सूझै नहीं राम गुरु गम नांहि ।
दिन पळटै हरिदास तब यह मति उपजै तांहि ॥

(२)

झूठा जग फूठा हिया फिरचा अफूठा श्याम ।
खूटा धन खाली गया लूटा नहीं हरि नाम ।
लूटा नहीं हरिनाम बांम दामा संघ घूटा ।
पकड़ ले गया दूत पूत घर का कर कूटा ।
तवै सार की चांच कर खग तोड़े तन चाम ।
हरि गुरु विन साहिक कोहै हरिदास ज ताम ॥

(३)

गुरु की भुरकी जब पड़ै उर की मिटै कषाय ।
घर की सुध विसराय के हरि की लगन लगाय ।
हरि की लगन लगाय चाहि त्यागे सुर पुर की ।
प्रेम मगन मन होय सुरति कहाँ जाय न सरकी ।
तुरत फुरत कारज सरै कह हरिदास सुनाय ।
गुरु की भुरकी जब पड़ै उर की मिटै कषाय ॥

(४)

साध कुहावै राम का कभून हलावे होट ।
माल मचावे मोकळा खाय गळ गळा रोट ।
खाय गळ गळा रोट खोट खिलवत मनकारी ।

लोट पोट होय जाय सोट जम का सहू भारी ।
पूछे पकड़ हिसाब तब ज्वाब कहा दे टोट ।
साध कुहावै राम का कभू न हलावे होट ॥

(५)

रट रट रसना राम तूं हट हट हरप हराम ।
कट कट करम कपाट कूं झट पट पहुँचे धाम ।
झट पट पहुंचे धाम नाम अट पट नहीं आवे ।
खट पट सब मिट जाय अघट घट घट दरसावै ।
कहै दास हरिदास आश तूटे जब तट ।
जम भट नट फट जाय राम रसना तूं रट रट ॥

छन्द मनहर

[१]

भलो नहीं जागन ते भलो नही त्यागन ते,
भलो नहीं खागन ते आधन वधाय है ।
भलो नांही गढन तें गीर सीर चढन ते,
भूमि नांही गढन तें वृथा खेद पाय है ।
भलो नहीं कानन ते भलो नांहि थानन ते,
भलो नांहि गानन ते कहा निधि पाय है ।
कह हरिदास आस राखत भला हुं की तो,
वैठ सत संग मांहि राम राम गाय है ॥

[२]

काहू के तो हाय हाय दिन दिन बढ जाय,
काहू के बजाय गाय होत खूब खूबी है ।
काहू के करोड़ धन जोर के भंडार भरै,
काहू के रुपैया सात सोही जात डूबी है ।
काहू के तो एक सुत ताहू मांहि कानो खोड़ो,
काहू के अनेक होत आस पास लूंबी है ।

कह हरिदास बोल तेरे घर सोल पोल,
न्याव निति हक कुछ यूंही गाबा गूवी है ॥

आरती

आरती राम गरु जन केरी, तन मन धन सब वारूं फेरी ॥ टेर ॥
देही देवल मांहि अमूरत, ताकी सेव करै नित सूरत ॥ १ ॥
आरती सूंझ बनाऊँ नीकी, बस्तु अनुपम धरूं नजीकी ॥ २ ॥
दीप दीप सातुं प्रकाशा, जाको अंतर मांहि उजासा ॥ ३ ॥
झालर घंट कंठ मद बजे, सबद अनाहद अद्भुत गाजे ॥ ४ ॥
संक निसंक होय गुण गावो, लोक लाज सबही बिसराओ ॥ ५ ॥
यह आरती हरिदास उचारै, सदा सरन में रहूँ तुमारै ॥ ६ ॥

[आधार— श्री पं० निश्चलदासजी महाराज द्वारा प्रेषित वाणी ।]

पीठाचार्यों की साखी

सतगुरु रामदयाल जन, बन आनन्द सुखकार ॥
तिनकूं वंदन रामजन, करिहूं नित निरधार ॥ १ ॥

अखण्ड रामगुरु संतजन, मंगलमय सुखधाम ॥
सीस नाय कर जोड़ नित, कर दुल्है परणाम ॥ २ ॥

सत चित आनन्द ब्रह्म राम भरपूर है ॥
त्रय अवस्था रहित गुरु सा नूर है ॥
त्रिगुण पास बंध नांहि चत्रदास अनूप है ॥
परिहां कर वंदन विधि दास एक त्रय रूप है ॥ ३ ॥

अज अक्रिय आनन्द नित, गुरु संत तद्रूप ॥
नरायणदास बंदन करै, लख त्रय एक स्वरूप ॥ ४ ॥

प्रणपति पूरण ब्रह्मकूं, गुरु संत सिरमोड़ ॥
कर वंदन हरिदास तिन, सीस नाय कर जोड़ ॥ ५ ॥

नित्य निरंजन रामजी, सत गुरु सत समाज ॥
हिम्मत हिरदै धारिकै, करो सकल शुभ काज ॥ ६ ।

गुरु संत परमात्मा, तीनों रूप समान ॥
दिलसुद्ध दिल में ध्यान धर, नित्य नवणता ठान ॥ ७ ॥
सतचित आनन्द राम है, सतगुरु संत मिलाप ॥
धर्मदास वंदन कियां, मिटैज तीनूं ताप ॥ ८ ॥
राम सवै भरपूर है, सतगुरु से गम पाय ॥
दयाराम कर जोड़ कै, संतचरण चित लाय ॥ ९ ॥
रामगुरु सर्वज्ञ हो, अधम उधारण राज ॥
जगरामदास की राखज्यो, तुम चरणों में ही लाज ॥ १० ॥
रामगुरु अरु संतजन, सब सिद्धि के दातार ॥
निर्भयराम वंदन कियां, उतर जाय भव पार ॥ ११ ॥

श्री बल्लभराम जी महाराज की स्तुति-साखी

राम गुरु निरवृत्त जन, सरणाइ साधार ।
बलभराम कर वंदना, ये भव जल तारणहार ॥

श्री रामसेवक जी महाराज की स्तुति-साखी

राम अखंडित सतगुरु, हरिजन त्रयगुण पार ।
वंदन तिनकूं करत है, रामसेवक निरधार ॥

श्री रामप्रताप जी महाराज की अणभै वाणी

साखी—गुरुदेव को अंग

नमो राम रमतीत कूं, सत गुरु संत बरियाम ।
राम प्रताप कर जोड़ि कै, करै अनंत परनाम ॥
सत गुरु मेरे सीस पर, रामचरण महाराज ।
राम प्रताप सरणै सदा, रखियो मेरी लाज ॥
मैं अनाथ गुरुदेव जी, तुम ही नाथ निवाज ।
राम प्रताप सरणै सदा, रखो हमारी लाज ॥

सतगुरु तुमकूं लाज है, साज सुधारो आप ।
भृंग रूप गुरुदेव जी, कीटी राम प्रताप ॥
सतगुरु परम उदार है, पार करण संसार ।
राम प्रताप गुरु देव की, मैं बलि बारंबार ॥

जहर मिटायो जीव को, पंच विषय को नास ।
राम प्रताप सतगुरु असा, कियो ज्ञान परकास ॥

राम प्रताप गुरुदेव की, महिमा कही न जाय ।
पतित जीव पावन भया, हम से सरणैं आय ॥

सतगुरु पूरण महर कर, दिया राम का नाम ।
राम प्रताप शिष सुमिर कै, पावै परचै धाम ॥

सतगुरु रीझै साच सूं, और न चाहै काय ।
रामप्रताप गुरुदेव कूं, अपणों सीस चढ़ाय ॥

सतगुरु बिन दीसै नहीं, सगो जगत में कोय ।
रामप्रताप यह देखिया, बिबिध भांति के जोय ॥

सुमरण को अंग

रामप्रताप सुमरण करौ, रसना राम उचारि ।
आसण संजम सुध मन, ले संतोष विचारि ॥
आसण कर थिर एक रस, बसि परणाम सवारि ।
रामप्रताप जिह्वा अगरि, रामहि राम उचारि ॥
सुरति पवन मन जोड़ि कै, रसना करौ उचार ।
रामप्रताप कहै राम को, सोही भजन तत सार ॥

सुरति निरति मन पवन की, लगी एक झुंणकार ।
रामप्रताप तब जाणिये, सुमरण सुख को सार ॥
लगी टग टगी नांव सूं, बिसरया तन मन प्राण ।
रामप्रताप अब काळ का, लगै न कोई बाण ॥

रसना सूं रटबो करै, राम राम निसवास ।
रामप्रताप क्रम कुव्यधि को, सहजै होवै नास ॥
जनम जनम की विषमता, छिण में जाय विलाय ।
रामप्रताप तजि आन मत, रहो राम ल्यो ल्याय ॥
अबके मिनखा तन मिल्यो, ताकूं खोइ न वाद ।
रामप्रताप विचारि कै, करो राम कूं याद ॥
ज्यूं पावक के कण कोईक, परै सोर में जाय ।
रामप्रताप यूं राम नाम, दीन्हा पाप उडाय ॥
भेद जाण करि नाम को, सुमरै सास उसास ।
रामप्रताप तब ही लहै, प्रेम धाम में बास ॥

वीनती को अंग

रामप्रताप विनती करै, सुणज्यो राम निधान ।
सरणैं लीज्यो आपके, हमकूं दुरबल जान ॥
मैं दुरबल अति दीन हूं, हीन कुमाइ काज ।
रामप्रताप कूं संग ल्यो, राम गरीब निवाज ॥
मैं दुरबल दिल बस नहीं, कैसे करूं पुकार ।
राम तुम्हारो जानि कै, तुम ही द्यो आधार ॥
मेरा तो ऊजर नहीं, क्यूं करि बोलूं राम ।
रामप्रताप पर महरिकर, तुम ही द्यो सुख धाम ॥
घर घर डोल्यो आप विन, चौरासी मांहि ।
रामप्रताप विनती करे, अब राखो सांइ ॥
राम ही मेरे एक हो, परम सनेही राम ।
रामप्रताप कूं राखिये, तुमरे चरण मुकाम ॥
राम पिता सूं बीनती, सुणो एक अरदास ।
रामप्रताप अऊगण भरया, राखो चरणां पास ॥
मेरा जीवन रामजी, करुणा सागर आप ।
रखो तुम्हारी सरण में, कहै रामप्रताप ॥

और न कोई आसरो, राम बिन्या संसार ।
तातै यह बिचार कै, रामप्रताप तूं धार ॥

अति कामी अति कुटिलता, अति मति मेरी भोर ।
रामप्रताप सरणै सदा, मेटो नरक अघोर ॥

मेरा कृत प्रभु मति लखो, तेरा बिड़द बिचारि ।
रामप्रताप कूं सरण ल्यो, अऊगण बहुत निवारि ॥

कहा करूं मैं बीनती, राम गरीब निवाज ।
रामप्रताप को राखियो, सरणापति महाराज ॥

बार बार बिनती करूं, सुणो परम गुरु आप ।
प्रेम सहित सन्मुख रहूँ, कहै रामप्रताप ॥

साध को अंग

साधू सोभा जाणिये, आसण संजम ध्यान ।
रामप्रताप नित उनमनी, बोलै तो परमान ॥

जो बोलै तो पारकूं, दया हेत उपदेस ।
रामप्रताप अति अगम है, साधूजन का देस ॥

अचल रहै आठूं पहर, धीरज धार्यां संत ।
रामप्रताप गुण तास का, पर उपगार बरतंत ॥

साधू तरवर एक है, पेलां कै उपगार ।
रामप्रताप कसणी सहै, तजै न मत्त करार ॥

साधूजन मन बस करै, परहरि स्वाद सिंगार ।
रामप्रताप सोहि साध है, मेरे प्राण आधार ॥

करम भरम जाकै नहीं, सुमरै राम अगाध ।
रामप्रताप दिल सुधता, पर उपगारी साध ॥

दोस न काहू सूं करै, हेत हरस छिटकाय ।
रामप्रताप जे जन भला, रहै राम लिव लाय ॥

सवैया

(१)

काटि के पासि उदास भये जन, नास किये सब द्वन्दर माया ।
काया कूं हेत कदे नहीं देतजुं, चेति चिदानंद सूं मन लाया ॥
और कोइ वाकी दिष्टी न आवत, एक सबै भर पूरण राया ।
राम प्रताप ऐसे जन दुर्लभ, वेद पुराण सौरी मुख गाया ॥

(२)

राम सदा सिर ऊपर गाजत, आन धरम्मकूं पूठ दइ है ।
राम सदा सुखदायक पूरन, काम व्यथा सब नास गइ है ॥
राम सदा यह जीवन की जीवनी, रामकूं ध्याय कै निधि लइ है ।
राम प्रताप यह निधि अमोलक, मोल दियां कबहूं नहिं पइ है ॥

पद

(१)

अबधू सो जोगी बड भागी ।
राम राम रसनां सूं सुमरै, कनक कामणी त्यागी । टेर ।
जिनके च्यारों पला ऊजळा, बांधे रांधे नांही ।
आगे न वाळे बाट न न्हाळे, भिख्या भोजन पांही ॥ १ ॥
कह सहजै के बिध्या के पट, अनासरति अनुरागी ॥
सीत निवारै संसय टारै, मन मारै बैरागी ॥ २ ॥
जहां तहां बिचरै बिन आसा, बासो ले निरदावे ॥
बन बसती गिर तर समसाणां, सूनैं थानि रहावै ॥ ३ ॥
ऐसी जुगति लियां ते जोगी, जग सूं उलटा चालै ॥
रामप्रताप प्रताप बतावै, काम क्रोध सब पालै ॥ ४ ॥

(२)

राग आसा

सन्तो दुनियां को दिल काळो ।
जासूं प्रीति पलक मति कीजो, दीजो नित ही टाळो ॥ टेर ॥

धरम धारणां धन नहीं जाकै, मुख को बहुत लबाळो ॥
च्यारों लोचन मोचन हूवा, फिरचो भरम को जाळो ॥ १ ॥
अंध खेचरी कुबध्यां पूरो, पाप करम को चाळो ॥
सब को मूळ राम नहीं सुमरै, सुमरै देवत डाळो ॥ २ ॥
राम प्रताप राम जपि लीजै, कीज अन्दर ऊजाळो ॥
जगत दिसा मति जोवे कबहुँ, दे मन आडो ताळो ॥ ३ ॥

आरती

आरती राम निरंजण देवा, सब संतन मिल कीन्ही सेवा । टेर ।
अलख अमूरत हरिपति मेरा, आदि अन्त चरणों का चेरा ॥ १ ॥
सुरति समागम प्रीति पद पूरा, झिल मिल ज्योति अखंडत नूरा ॥ २ ॥
सुक सनकादिक नारद गावै, अविनासी पद वेद बतावै ॥ ३ ॥
जनम निवारण भय भव तारे. आरती सू जन राम उचारे ॥ ४ ॥
राम प्रताप सुमरि जन परचै, आन धरम कू' स्वास न खरचै ॥ ५ ॥

[श्री देवादासजी का रामद्वारा, चांद पोल, जोधपुर की हस्तलिखित वाणी, पृष्ठ– ४७२ से उद्धृत ।]

श्री चेतनदासजी महाराज की अणभै वाणी

साखी—गुरुदेव को अंग

रामनिरंजण ब्रह्मजी, पुनि सतगुरु सब दास ।
जन चेतन बन्दन करै, करि करि बहुत हुलास ॥
रामचरण सतगुरु मिल्या, चेतन कू' परम दयाल ।
राम नाम निज धन दियो, सिष कू' कियो निहाल ॥
कहे चेतन गुरु देव को, मैं हूं खाना जाद ।
जिनां बताया राम नाम, ऐसा तत्त अगाध ॥
चेतन सतगुरु सो सही, राम नाम दे एक ।
दूजा मर्म विध्वंस करि, दूरा करै अनेक ॥
परथम पूरा गुरु मिलै, पुनि सिष सूरा होय ।

चेतन तो तरि पार होई, संसय रहै न कोय ॥
गुरु अचाही राम रत, परमारथ में पूरि ।
चेतन ऐसा सन्त को, बचनन तजिये मूरि ॥
कह चेतन गुरुदेव सम, दूजा कोई नांहि ।
नारदजी की मेट दी, चौरासी पल मांहि ॥
चेतन सतगुरु राम सम, दीसत नांहि कोय ।
हम तो ज्ञान विचारि कै, भिन्न भिन्न देख्या जोय ॥
पूरा सतगुरु बिन मिल्या, नर तन जावै बाद ॥
चौरासी में भरमसी, चेतन जहां आदि न दाद ॥
सतगुरु सम सूझै नहीं, सुख दाता नहीं ओर ।
आप गरक सुख सिन्धु में, सिष मेलहै वही ठोर ॥
सतगुरु सिर पर धारि कर, रसना उचरै राम ।
कहै चेतन कलु काल में, सरै तास को काम ॥

परचा को अंग

राम भजन करि सहज में, लंघिया तीन मुकाम ।
कह चेतन अब रह गयो, सुरति सबद को काम ॥
वहाँ सबद एक रकार है, नहीं ममां सूं काम ।
चेतन हरि किरपा भई, त्रिकुटी किया मुकाम ॥
तीन देस में राम भजि, चढ़ि चोथा कूं जाइ ।
चेतन रंरंकार ध्वनि वहां सुणै, सुख में रहे समाय ॥
मुख हिरदै अरु नाभि लग, रसना रटिये राम ।
कह चेतन ताकै परै, सुरति सबद को काम ॥
चेतन सुरति भारी करी, रती सबद सूं जाय ।
अब राम भजन बिन दूसरी, खारी लगैं उपाय ॥
सुरति सुखी भइ गिगन में, सुण अनहद की घोर ।
कह चेतन तिहुं लोक में, ऐसी नहीं काइ ठोर ॥

जल बरसै ज्वाला जलै, गिगन मण्डल के मांहि ।
चेतन देखे सुरति सूं, बाहिर मालूम नांहि ॥

जल के मांहि धूं वळै, ररंकार झुंणकार ।
चेतन वहां अणभै खुलै, सो ही बाणी सार ॥

ररंकार की घोर सुण, मनवा थिर रह जाय ।
चेतन सन्त यों सुळझिया, धुनि में ध्यान लगाय ॥

सुन्न मंडल में सुरति ने, पायो प्रेम भंडार ।
निस दिन पीवे ध्यान धरि, चेतन इम्रत सार ॥

राम भजन को है खरो, चेतन के विसवास ।
सुमरण कर सुनि कूं चढ्या, जहां सब संतन का बास ॥

राम नाम कूं रैंण दिन, सुमर्यो सांचे मन्न ।
जन चेतन साची कहै, घट में लागी धुन्न ॥

चिंतावणी को अंग

देखत है सब मरि गया, करि करि मंदिर ठाट ।
चेतन जग चेते नहीं, ऐसा अंध निराट ॥

गृह को धंधो करत ही, बीती पीढ़ी सात ।
चेतन करि करि मरि गया, यो पूरो नहीं थात ॥

कहा जिन्हों का जीवणां, राम भजन रुचि नांहि ।
चेतन जीवत दुख घणूं, मूवां नरक कै मांहि ॥

जाति पांति की दोसती, चेतन कह समझाय ।
जब फूटेगो ठीकरो, तब कहां बैठोगे जाय ॥

जाति पांति की बासना, जे जिव में रह जाय ।
तो लख चौरासी जूणि में, चेतन गोता खाय ॥

राम कहेनी रांडड़ी, गावै विषय बिकार ।
कह चेतन जमलोक में, घणी सहेगी मार ॥

चेतन सन्त चिताइयो, जुग जुग यो संसार ।
राम भजन सूं नाँ लगै, भरम मांहि हुंसियार ॥
राम नाम सूधा दरा, चालै विरला संत ।
कह चेतन डगरोल में भरम्यो खलक अनंत ॥
सुत कन्या में वासना, नारी की रह जाय ।
सो फिर सिरजै सूरड़ी, धणां जणोगी आय ॥
नर नाराणी देह में, चेतन भज्यो न राम ।
वां हीर गुमायो खर चढ्यो, हरिसूं भयो हराम ॥
रामतणां दरवार में, चेतन जव होई निसाप ।
वेटा की वेटो पावसी, और वाप की वाप ॥
धन जोड़े हेल्यां चुणै, कै खाय फुलावै पेट ।
चेतन वा गति ना लखे, होसी राख मर हेट ॥

सूरातण को अंग

सुण चरचा वैराग की, सूरा हरपै पूरि ।
कायर के उर कलमलि, चेतन ता सुख धूरि ॥
राम भजन में रत रहै, उर पूरण वैराग ।
कह चेतन वे सूरमां, ज्यां कियो जगत को त्याग ॥
राम भजन निसदिन करै, जगत तणूं भय डार ।
कह चेतन वा सूर की, कदैन आवै हार ॥
चेतन सो ही सूरिवां, सुमरण छांडै नांहि ।
लोभ मोह अरु कामना, जाळ देय घट मांहि ॥
चेतन चिंता मति करै, निस दिन राम उचारि ।
लोभ मोह सूं दूरि रह, ज्यूं कदैन आवै हाथ ॥
मिनख मुवां धन वीगड़्या, उपजै हरष न सोग ।
चेतन वाकी सत भगति, कहा तिरिया कहा लोग ॥
भगति करी ज्यां सिर सटे, सो भव उतर्या पार ।
चेतन सिर की आस है, जेते नहीं करार ॥

सती सूर अरु दास पर, किरपा करि है राम ।
कह चेतन सो ना मुचै, करड़ी कंवली ठाम ॥

टेक को अंग

सुख मांहि सस्तर सजै, चेतन कहै अनेक ।
भीड़ पड़्यां भागै नहीं, जाकी सांची टेक ॥
तन धन जाइ परिवार भी, तोहू न छांडै राम ।
कह चेतन वा दास को, राम सुधारे काम ॥
संपति विपति में एक रस, रखै नांव की टेक ।
कह चेतन वा मिनख का. कारज सरै अनेक ॥
राम सुमरि सुखिया भया, आगे संत अनेक ।
कह चेतन यो ग्यान सुण, हम भी पकड़ी टेक ॥
टेक पकड़ निज नाम की, निरभावै इकसार ।
चेतन वाको धनि जनम, भव कूं उतरै पार ॥
सिंह चात्रक अरु चकोर की, टेक सिराहै संत ।
चेतन नर पकड़ै राम की, तो महिमां को नहीं अंत ॥

सवैया

(१)

गुरुदेव दयाल निहाल कियो मोहि राम को नाम दियो तत सारो ।
सो सुमर्‌यां सूं आनन्द भयो यह, करमां को दूर कियो सब भारो ॥
निरमल हो निज तत मिल्या भाई, ऐसे कियो सुख मांहि संचारो ।
चेतन कह गरुदेव जी ऊपर, तन मन प्राण वारूं सब म्हारो ॥

(२)

राम को नाम ऐसी बिधि लीजिये, जागै धर्णी जब चोर ज्यूं ध्यावै ।
ज्यूं कोइ गांव में लाय लगै, सब दोड़ि उठै इकसोक बुझावै ॥
तातेही लोह लुहार मंढ़, वेगा वेगी सो कूटिर संधि मिलावै ।
जन चेतन कह ऐसे राम भज्यां, भव सिन्धु तिरे सुख सागर पाव ॥

(३)

आन को दास सो आन कूं चाहत, दान को दास सो दान करावै ।
तिरिया को दास तिरिया पख ल्यावत, माया को दास सो माया कुमावै ॥
राम को दास सो राम रटै नित, हूं नह काम सबै छिटकावै ।
चेतनदास विचारि कहै जाको, सेवगहै ताकी धाम में जावै ॥

कुण्डल्या

सतगुरु सब संत राम कूं है मेरी परणांम ।
सब ही किरपा राखियो ज्यूं सरै हमारो काम ।
ज्यूं सरै हमारो काम मन रहै तुम्हारा चरणां ।
तुम बिन सुख कहुं नांहि भरम चौरासी मरणां ।
कहै चेतन या तीन सूं बिमुख सो बड़ा हराम ।
सतगुरु सब संत राम कूं है मेरी परणांम ॥

आरती

आरती राम निरंजण स्वामी, तुम पत राखो अन्तरजामी । टेक ।
तुमरी किरपा सतगुरु पाया, राम भजन का भेद बताया ॥ १ ॥
सुमरण साधि सुधि हम पाई, रसना सूं ले हिरदै आई ॥ २ ॥
उरसूं ध्यान नाभ किया वासा, रोम रोम जहां ध्यान प्रकासा ॥ ३ ॥
अब जा चढ्या त्रिकुटी छाजै, जहां अनहद का बाजा बाजै ॥ ४ ॥
सुरति सबद दोऊ भेळा हूवा, पल एको नहीं होवे जूवा ॥ ५ ॥
ररंकार मिली करत अनंदा, चेतन यो पद परसै कोई बन्दा ॥ ६ ॥

[श्री देवादास जी का रामद्वारा, चांद पोल, जोधपुर की हस्त लिखित वाणी,
पृष्ठ-४६२ से उद्धृत ।]

श्री कान्हड़दासजी महाराज की अणभै वाणी

कवित्त

नमो अरंगी राम अभंगी आप अनामी।
नमो परम गुरुदेव परम पद दायक स्वामी।
नमो शिरोमणि संत अंत मन को करि बैठे।
दई जगत कूं पूठि उठि हरि सुख में पैठे।
राम गुरुजन एक तन मन बिन मेरे ईश।
जन कान्हड़ वंदन करै तुम चरणां मम सीस॥

साखी—सुमरण को अंग

सतगुरु चरणां लगि रहो, नरमी नवणि बिचारि।
कान्हड़ सुमरो राम कूं, इस बिधि आपो डारि॥

तन मन इन्द्री हाथ कर, धरिये ध्यान अलेख।
कान्हड़ सदाजु एक रस, अनंत जनां कूं देख॥

सब संता ने देखले, एक राम की आस।
कान्हड़ सुमरण सो करै, दोइ दुख को नास॥

कलिजुग में यह आसरो, राम नाम को ऐक।
कान्हड़ ताकूं सुमरतां, धोखा मिटै अनेक॥

हरस निवारै हरि भजै, तजि कै विषय बिकार।
कान्हड़ जे जन मुक्त है, संशय नहीं लगार॥

रसना टेरे राम नाम, कान्हड़ कर कर मोद।
नहचै करि पावै सही, पूरण आतम बोध॥

साध वेद एक कहत हैं, राम नाम तत सार।
कान्हड़ सुमर्‌यां नाम कूं, मिटि है जम की मार॥

मेरे करणी कुछ नहीं, कैसे बोलूं बोल।
कान्हड़ करि है बीनती, राम ही राखो तोल॥

पतिव्रता को अंग

पतिव्रत सम धरम को, और न दीसै कोइ ।
कान्हड़ अपणों पति खुसी, आप सुहागण होइ ॥
विलसै आप सुहाग कूं, पतीव्रत के पांण ।
कान्हड़ पति सूं जोड़कर, करै न दूजी वांण ॥
जार जगत में आनसुर, जाको नांहि ध्यान ।
पतिव्रता पति राम सूं, मिल होवे गलतान ॥
पतिव्रता पल ना तजे, अपणां पिव को साथ ।
कान्हड़ कहे पर पुरुष सूं, भूलि करै नहीं बात ॥
रामधणीं धरपाल है, जाकी साधू नार ।
सो सुमरै इक रामकूं, आन धरम दुरकार ॥
समता को लहंगो सज्यो, ओढ़यां सील सो साल ।
कान्हड़ सुमरै राम कूं, महानारि लजाल ॥
चूंप वणी मुख नाम की, दलड़ी उर दया ।
कान्हड़ कहै वा नारि पर, पति को महर मया ॥
धरम धारि पतिव्रत को, पायो परम सुहाग ।
कान्हड़ सुमरै राम कूं, सो साधू वड भाग ॥

विभचारणी को अंग

बहुत पाप विभचार में, करो मती रे कोय ।
कान्हड़ खांवद त्याग दें, रहै आवरू खोय ॥
जाय जिनूं की आवरू, जो करवै विभचार ।
महापाप तब प्रगटै, जहां तहां तसकार ॥
तसकारै विभचार कूं, छार देइ ता सीस ।
पर पुरुषां सूं रत भई, छांडि आपणूं ईस ॥
जारां सूं वहु प्यार है, भरता मन नहिं भाय ।
कान्हड़ वा विभचारणी, अवसि अधोगति जाय ॥
आतम नारी राम वर, आन देव सब जार ।
कान्हड़ त्यागै आनकूं, तो खुसी होय भरतार ॥

सवैया

[१]

राम रट्यां मन काम घटै सब, राम रट्यां रसना रस पीवै ।
राम रट्यां उर ऊजल भासत, नासत द्वंद अद्वंद स कीवै ॥
राम रट्यां पुज होइ सही कही, बात अगाध अगाध स लीवै ।
राम रट्यां रह कान्हड़दास जु, आसकूं जीते जुगै जुग जीवै ॥

[२]

विषया रस खाय मरे सगरो जग, जाय चल्या जमराज के द्वारा ।
बारहिं बार मरे जनमें पुनि, नांहि सुखी छिन एक लगारा ॥
ताहितें इम्रत पीवत है जन, छांडि दिया विसया रस खारा ।
कान्हड़दास सजीवन साधवा, राम सजीवन ध्यावन हारा ॥

[३]

राम हि राम सही कर जानिये, मानि सदा अपना मन मांहि ।
ऐहि पुरान अरु वेद कहे सत, गति अगाध अगाध है भारी ॥
वार न पार अपार अमूरति, सूरति रूप न सांग धरांहि ।
कान्हड़दास उपासना तासकी, दास की प्रीति जो पार लगांहि ॥

[४]

राम को राख सदा विसवास तूं, वे परमातम है सुखदानी ।
सूक्ष्म स्थूल चराचर पूरण, यूं कर थीरस धीरज आनी ॥
ए गति ग्यान बिचारि करे जन, सोहू कहावत पूरन ग्यानी ।
कान्हड़दास उपासना गाढ़ है, तो कुण आड करै रजकानी ॥

आरती

आरती आतम राम तुम्हारी, तीन लोक में अति अधिकारी ॥ टेक ॥
प्रथम आरती प्रेम बधावै, गुरु कूं गोविन्द सम करि गावै ॥ १ ॥
दूसरी आरती दोष निवारै, घट घट रमता राम बिचारै ॥ २ ॥
तीसरी आरती त्रिगुण न्यारा, राम नाम निसवासर प्यारा ॥ ३ ॥

चौथी आरती चित सुद्ध होइ, राम निरंजण और न कोइ ॥ ४ ॥
पांचवी आरती कान्हड़ कीजे, पांचों जीत परम पद लीजे ॥ ५ ॥

श्री द्वारिकादासजी महाराज की अणभै वाणी

रेखता—वीनती को अंग

(१)

राम महाराज मैं शरण हूं रावळी महर करुणामइ क्यों न कीजै ।
अथग संसार में अनन्त दुख पूरि है दूरि कर आप दीदार दीजै ॥
पतित पावन करो कुटिलता सब हरो बिडद सम्हालि हो राम तेरा ।
द्वारिका दास कर जोड़ि बिनती करै मेटि हो जीव का गर्भ फेरा ॥

(२)

वीनती बापजी एक तुम सांभळो और नहीं आसरो मोहि दीसै ।
तीन ही लोक ब्रह्मण्ड नौ खण्ड में, काल करि जोर सब ठौर पीसै ॥
एकन्ह काल निज सरण है आपकी, सोहि करि महरि अब मोहि दीजै ।
द्वारिका दास कूं काढि भव सिन्धु तें रामजी आसरे आप लीजै ॥

(३)

आपके आसरे अगम आनन्द है आपके आसरे बन्ध छूटे ।
आपके आसरे मुकति पद पाई हैं भर्म का सकल जंजीर टूटे ॥
आपके आसरे आस पूरे सभी आपके आसरे ग्यान पावै ।
द्वारिकादास कहै आपके आसरे रामहि राम सूं ध्यान लावै ॥

सुमरण को अंग

(१)

राम रंग लागिया भरम सब भागिया, जागिया जोग परकास हूवा ।
सार असार की परख पाइ सही, राम बिन आन संग जगत मूवा ॥
राम का नाम जपि जन्त उधर्या सही, अमर घर पाइ विसराम कीया ।
द्वारिकादास कर नास अग्यान को ग्यान कूं पाय पद साध जीया ॥

[२]

राम महाराज सूं सकल आसान है वासना होय जो होय पूरी ।
राम का भजन सूं सरव सन्तोष होई कामना बृन्द सब जाय दूरी ॥
ख्याति अरु सील सरधा सही उपजै आज अग्यान को मूळ भाजै ।
द्वारिकादास निज नाम परताप सूं संत जन काळ कै सीस गाजै ॥

चिंतावणी को अंग

(१)

जाग रे जाग जगदीस कूं याद कर बाद नर देह कूं कांई खोवै ।
बहुत ही कष्ट सूं मानवी तन मिल्यो तास कूं सरब ही दैव जोवै ॥
जास की साखि भागौत गावै सही भजन्न नर देह बिन बनत नांही ।
और संसार के सुख सब हीं मिले लख चौरासीयां जूणि मांही ॥
येह तूं ग्यान विचारि उर मांहि नर बेग निज नांव कूं ध्याइ लीजै ।
द्वारिकादास परकास गुरु ग्यान तें राम ही राम रटि पीवख पीजै ॥

(२)

ध्रिग रे ध्रिग नर राम बिन जगत में धन्न अरु धाम का मान काचा ।
देख लंकेस की रीति ऐसी भई अंत की वार सब भया पाछा ॥
कनक की लंक सो छनिक में पार की पूत न्याति जितै काळ खाया ।
आपकूं अंत कुछ कफन भी ना मिल्यो चरित ऐसा किया देखि माया ॥
राम बिन जीवकूं नांहि कोई आसरो कैरवां जादवां देखि सारा ।
द्वारिकादास परित्याग कर जगत सुख राम कूं सुमरि नर होइ पारा ॥

साखी

लय लागी जब राम सूं, भागे भरम बिकार ।
कहै द्वारिकादास तब, करम भया सब छार ॥
रामचरण की सरण में, पूगी मेरी आस ।
द्वन्द छांडि निरद्वन्द भया, कहै द्वारिकादास ॥

श्री भगवानदासजी महाराज की अणभै वाणी

साखी—गुरुदेव को अंग

रमता रामर सन्त गुरु, मो उर सीस निधान।
ताकूं बन्दन प्रेमजुत, करै दास भगवान॥
सतगुरु मेरा सूरवा, रामचरण दरवेस।
भगवानदास पर महर कर, जिन किया ग्यान परवेस॥
भगवानदास के सिर सही, गुर रामचरण का हाथ।
दरसण कीयो राम को, नरतन भयो सुनाथ॥
सतगुरु पूरण ब्रह्म है, रामचरण पद लीन।
भगवानदास से पतित कूं, आप उधारे दीन॥
चरणूं ले चेतन कीया, दीया राम का नाम।
भगवानदास परि महरि कर, लियेज चरणां मांय॥
सार सबद सतगुरु दिया, मिटी जनम की रेप।
भगवानदास भरपूरि है, धरैन कोई भेप॥
गुरु ग्यान दाता रहे, सिप भिप्यारी जानि।
भगवानदास भारी दियो, महामुगति की पानि॥
राम नाम धन देत है, सतगुरु महरि विचारि।
भगवानदास अति हेत सूं, तूं हिरदै बिच धारि॥
गुरु बिन बुधि जागै नहीं, गुरु बिन मन सुध नांहि।
भगवान गुरू प्रताप सूं, गरक राम पद मांहि॥
गुरू समान या जीव को, सगो न दीसै कोय।
तीन लोक ब्रह्मण्ड में, भगवानदास भल जोय॥
भाव सदा गुरुदेव को, राम नाम को ध्यान।
तो जग तिरतां वेर कहा, कहे दास भगवान॥
कहा देव ब्रह्मादिक कहा, कहा और दग्पाल।
भगवान गुरु बिन जीव को, कोई नहीं रिछपाल॥

ढुभासी सतगुरु मिल्यां, दोन्यूं दे समझाई ।
जीव ब्रह्म की एकता, भगवानदास ठहराई ॥
वेद पुराण बिचारिके, भली सब समृति सोध ।
भगवान गुरु बिन ना मिले, पूरण आतम बोध ॥
रामनाम सतगुरु दिया, करुणाकर भरपूरि ।
भगवान ध्यान लागा रहे, आन मते सब दूरि ॥
भगवानदास सतगुरु दिया, ग्यान भगति वैराग ।
सील सन्तोष र पोषतां, जाग्यो मेरो भाग ॥
गुरु महिमा इक जीह सूं, कहिये कहा बनाय ।
भगवान ध्यान विच ले रहो, चरणां में चितलाय ॥
आप सबद आधार दे, पोषे दिष्टि दयाल ।
भगवानदास आनंद किया, सतगुरु किया निहाल ॥
वन्दन बार अनंत है, अब तारो गुरुदेव ।
भगवानदास करुणा करै, मोसे बणी न सेव ॥

सुमरण को अंग

सुमरण में लागा रहै, इत उत चलैन कोय ।
भगवानदास तत्काल में, जाकूं नहचै होय ॥
सुमरण को सुख तब भयो, फीका लागै भोग ।
भगवानदास कहां लौ, चवदा तीनूं लोक ॥
जाके सुमरण राम को, काम दाम को नास ।
भगवान भली गत पावसी, प्रगटे प्रेम प्रकास ॥
आपा कूं बिसराइ के, राम कहो मन मोर ।
तब तूं पावै सहज ही, पार ब्रह्मपद ठोर ॥
सुरति जोड़ि जगदीश सूं, नांव उचारै दास ।
भगवान ध्यान लागो रहे, कहा निसा अरु बास ॥
मन राखे सुमरण मही, करुणा कर कर ध्यान ।
पतित उधारण रामजी, भापत है भगवान ॥

सजन हमारे राम है, आदि अंत रिछपाल ।
भगवानदास ताहि सुमरिये, करिये नांहि टाल ॥
ऐसे राम संभालिये, ज्यों तंबोली पान ।
सजन प्रेम करि राखिये, भापत है भगवान ॥
जैसे जलकूं माछली, चात्रक के घन आस ।
भगवानदास यूं सुमरिये, रामहि सास उसास ॥
सास उसासां टगटगी, रसना रटण अपार ।
भगवान भजन यों कीजिये, जब पुलि है इम्रत धार ॥
नांव सकल को सार है, पार करण संसार ।
भगवानदास भजिये सही, विलमन करो लगार ॥
कहा जेज जगदीस कूं, सुमरण करतां वीर ।
भगवान आव नित जात है, ज्यूं जल छाडै तीर ॥
भगवानदास मन थिर करो, आसा जीतो वीर ।
संजम कर सांई भजो, पीवो इम्रत सीर ॥
सरधासूं सुमरण करो, राम नाम निरवाण ।
भगवानदास वा दास के, लगै न जम का डांण ॥
सास उसासां सुमरतां, भूलि गये तन जात ।
भगवानदास आनंद भया, अब कूंण पिता कुण मात ॥
मात पिता अरु कनक कामणी, माया दीवी त्याग ।
भजन कियो भगवानदास, तन मन सेती लाग ॥
घटत घटत सब घटि गया, काम क्रोध अहंकार ।
रटत रटत सब वधि गया, सील सन्तोप विचार ॥
अधिक स्नेह करि रामसूं, तो मिटै काळ की त्रास ।
भगवानदास भजिये सदा, निसि दिन सास उसास ॥

बीनती को अंग

मैं निराधर आधार तूं, और न दूजा कोय ।
भगवानदास की बीनती, रजा होई सो होय ॥

भगवानदास की बीनती, राम सुणों महाराज ।
अधम उधारण बिड़द तो, मोहि बन्यो वो साज ॥
मैं निरबल निरधार हूं, राम गरीब नवाज ।
भगवान दास कूं सरण ल्यो, आप सुधारो काज ॥
काज सुधारण आप हो, ताप मिटावणहार ।
भगवान दास की बीनती, राम करो भव पार ॥
पाप कुमाये अनंत विधि, अनंत जनम के मांय ।
भगवान गुन्हि हम सारीसा, ओर जगत में नांय ॥
गुनहगार कर बांध दोई, पांवा परियो आइ ।
भगवानदास कूं रामजी, पावां ल्योह लगाइ ॥
पाय लगावो रामजी, दया करो महाराज ।
भगवानदास के आप विन, कूंण सुधारे काज ॥
राम हमारी बीनती, सुणज्यो दया बिचर ।
भगवानदास को बास द्यो, तुमरे चरण मंभार ॥
नांही पिण्डत नां गुणीं, नहीं ग्यान वैराग ।
भगति हीण भगवान मम,........................ ॥
मैं तो ऐसो रामजी, जैसो अधम नहीं ओर ।
भगवानदास तुम सरण है, मेटो नरक अघोर ॥
मैं अधिकारी रामजी, तुमरा पद को नांहि ।
भगवानदास पर महर कर, बूडत हाथ संभारि ॥
अजामेल गनिका पतित, मैं हूँ पतित अपार ।
भगवानदास की बीनती, अब कै ल्योह उबार ॥

बिरह को अंग

राम मिलण कूं बिरहणी, अंतर भई उदास ।
दया करो भगवान अब, दीज्यो मोहि बिसास ॥
मो घर आवो रामजी, तुम बिन दुषी निराट ।
भगवान भजन तेरा करूं, उठि उठि जोऊं बाट ॥

जल में बसे कमोदनी, जल ही जीवन ताहि ।
जो लूं चंद नहि ऊगि है, तो लूं रहे कुम्हलाहि ॥
यों तन मेरो जगत में, जग में भोजन पान ।
राम दरस बिन जीव में, दुःप महा भगवान ॥
जीबो मेरो जब सुफल, तुम दरसो रामदयाल ।
भगवान दरस बिन बिरहनी, फिट जीतब बेहाल ॥
मेरे उर में रामजी, धूकति उठै लाय ।
काम क्रोध की अगनि से, सो तुम चोह बुझाय ॥
काम क्रोध सब जल गया, लगी बिरह की लाय ।
भगवान आन मत छार होय, लारै नहीं कषाय ॥
दीदार दया कर दीजियौ, कीजो मोहि सुनाथ ।
भगवानदास बिरहनी कहे, मोहि लेह अब साथ ॥
भगवानदास नरदेह में, बिरह पुंज प्रगटाइ ।
करम कजोड़ा जालि के, सार सबद रह जाय ॥
सुंण सुंण सांई बीनती, आये दया बिचारि ।
भगवानदास आनंद भयो, मेरे हिया मंझारि ॥
तुम भलि आये रामजी, पतित उधारण हार ।
मोहि अपंग को आइके, भगवान दीये दीदार ॥
भया उजाला जीव में, पीव मिल्या सुख चैन ।
भगवानदास निरषत रहे, खोल मांहिला नैन ॥

आसा को अंग

मन आसा में उलझियो, जैसे उलझ्यो सूत ।
भगवानदास सुमरण विना, ऐसे फिरे अऊत ॥
आसा आस निवारके, सुमरण करो ए बीर ।
भगवानदास सुमरण कियां, मन के वंधि है धीर ।

मन को अंग

मन्न महा बलवंत है, भरमावत तिहूं लोक ।
भगवानदास ताहि बस करे, सो जन जीवत मोष ॥

मन को कह्यो न एक पल, करे धरे नहीं कान ।
ऐसे जन संसार में, हैं भगवान समान ॥
मिटै न झीणी बासना, मनकी चोरी मांय ।
भगवानदास भज रामकूं, तवै भस्म होइ जांय ॥
जन मारे मन मानकूं, ध्यान राम की धार ।
भगवान करे नहीं मन कह्यो, तव रहै झप मार ॥
मन कहे सो ना करे, सतगुरु कहे सो धार ।
भगवानदास भज रामकूं, मन की तरंग निवार ॥
लष तीरथ न्हावो भलै, समय समय अधिकार ।
भगवानदास तब सुध है, मन छोड़े सकल विकार ॥

चितावणी को अंग

रे चित चेते क्यों नहीं, गाफिल सोवे कांई ।
राम विना इस जीव को, सगो मोहि सूझत नांई ॥
सब मेला का लोग है, संभ्या बीपर जाय ।
इन सूं लग भगवानदास, काहे जनम गुंवाय ॥
नर तन सबको मोड़ है, चौरासी को सीस ।
भगवानदास भज लीजिए, तिरलोकी को ईस ॥
तिरलोकी को ईस भज, ज्यों छूटे जममार ।
भगवान भजन बिन जीव सब, जनमें बारंबार ॥
सुमरो सिरजण हार कूं, सुण रे मनवा बीर ।
नर देही छुट जायगी, रहे न बहतो नीर ॥
तन धारी उबरे नहीं, मृतक लोक के मांय ।
ताते भज भगवान अब, तूं भी रहसी नांय ॥
अंतकाल तेरो नहीं, सगो समझ रे बीर ।
देखत ही सब जांयगे, ज्यों मृग तृष्णा नीर ॥

भजिये पूरण रामकूं, समरथ करे सहाइ।
गाफिल कूं भगवानदास, कोई न लेय छुड़ाइ ॥
भजिए सिरजणहार कूं, निर दावे जग होय।
भगवानदास आसा तजो, लोभ कामना खोय ॥
निरफल खोयो मिनप तन, जिन भजियो नांही राम।
भगवानदास दीपक कियो, जैसे सूने धाम ॥
मिनपा देही पायके, हरि सुमरत दिन जाइ।
भगवानदास नर देह वा, दूजी सहज सुभाइ ॥
भगवान भजन कर राम का, थोथा सब संसार।
सतगुरु के सरणे रहो, जो पलक में पार ॥

छन्द मनहर

मेरे धनधाम अरु मेरे सुत वाम यह,
मेरे दासी दास अरु वास पासवान ज्यूं।
मेरे जगवाज अरु मेरे राजसाज यह,
मेरे खण्ड खण्ड में फिरत नित आनजू ॥
मेरे दल वल अरु मेरे सुभट से न्यारे,
द्वार राग नाना वाजती वाजत निसान ज्यूं।
भगवान ध्यान विना ममत करत मूवे,
गये सब छांडि वास कियो है मन जूं ॥१॥
कामना के काज कोई धरत धरमधारा,
तेती रोजगारी सारा अन्त पछितावेंगे।
कहा जोग जिग तप कासत्रा अनंत रीति,
प्रीत प्रेमहीन जाका फल नहीं पावेंगे ॥
कहा हिन्दू तुरक ओर जैन सिव पंथन के,
एक साथ सुद्ध भाव रामजी को भावेंगे।
ताते भगवान सब जानिये पाखंड रूप,
अनुपम गुरु राम भजन बतावेंगे ॥ २ ॥

सीस खड़ी टोप दियो तिलक संवार कियो,
लियो हाथ चींपटो उपाड़ै वाल सिरका ।
डाढ़ी अरु मूंछ बनी घनी घनी चांपचूर,
संवारे सुधारे नित मोही मत नरका ॥
चोलो अर वोद दे प्रमोद झीणां झीणां वोले,
माला लिये हाथ मांही करै चाला करका ।
ऐसो सो बनायो भेप टेक नांही रामजी की,
भगवान ग्यान बिना ग्यारा डोले हरका ॥ ३ ॥

पद

(१)

मन रे स्वाद सनेह दुःखदाई ।
ताते इनको हेत छांडिके राम नाम ल्यो लाई । टेर ॥
स्वाद कियां भव जल में बूडे उंडे जाय बसाई ॥
पांचां का फंद मांही उलभयो सोतो निकसै नांही ॥ १ ॥
देखो मीन मरे रस सेती गंध से भंवर बिलाई ॥
कुंजर त्वचा पतंग मैन सूं सारंग सबद खपाई ॥ २ ॥
एक एक इन्द्रि के सागे पांचां की मृत्यु आई ।
सो सुख कहो किसी विधि पावे एक पांच सधाई ॥ ३ ॥
स्वारथ स्वाद मोह तजि भागो लागो जन सरणाई ॥
भगवानदास भव सागर भारी तब सहजै तिरजाई ॥ ४ ॥

[२]

सन्तों ऐसी विधि भव तरिये ।
मन पवना दोइ थिर राखो राम ही राम उचरिये ॥टेर॥
अगल बगल का छाडि पसारा ध्यान अखंडित धरिये ॥
पाइ समझ मिल्या गुरु पूरा इन पंचन कूं जरिये ॥१॥
सुरति सबद को सागो जोड़ो आसन अचलज करिये ॥
सास उसासां अरध उरध में ऐसी जुगति पकरिये ॥२॥

चहु को चटको खटको पटको झटको इनको धरिये ॥
भगवानदास सतगुरु के सरणे काहू हेत न लरिये ॥३॥

आरती

आरती देव निरंजन थारी ।
मैं सरणागति लेवो उबारी ॥
मेरी बुद्धि अलप है देवा, कहो कैसी विधि करिये सेवा ।१॥
आदि न मध्य नहीं कोई अंता, वेद पुराण कहे सब संता ।२॥
धू आकासां सेष पतालां, मध्य लोक सिव करत विचारां ॥३॥
सतगुरुजी के तब मन भायो, राम नाम भगवान हि गायो ॥४॥

श्री देवादासजी महाराज की अणभै वाणी

स्तुति—कवित्त

नमो अखंडित राम नमो संत गुरु सुख दाता ।
नमो अनंत हि कोटि राम रस पीय पिलाता ।
जिनकी गहीज ओट रहो सिर सदा हमारू ।
अठ पहरयो मन मेल सुरति धरि निरति न टारूं ।
देवादास वंदन करै वारम्बार ज जोय ।
राम गुरु अरु संतजन हिरदै राखूं पोय ॥

साखी—गुरुदेव को अंग

राम गुरु सब संत कूं, देवो नावै सीस ।
वार वार परनाम है, मेरी विसवा वीस ॥
देवा दुबध्या दूरि कर, मेटै तीन्यूं ताप ।
रामचरण पद परसतां, नास होय सब पाप ॥
सतगुरु का दीदार में, मिले पदारथ च्यार ।
देवादास दिल सुध सूं, धारण लेवै धार ॥

सतगुरु ब्रह्म स्वरूप है, कलि त्रिछ जोड़े नांय ।
देवादास तोलूं दियो, पत्थर मिसरी तुलांय ॥

पार करण नौका वणी, भव सागर के मांहि ।
देवादास ये सन्तजन, ब्रह्म मांहि ले जांहि ॥

देवा नीचा सूं ऊंचा किया, सतगुरु बांह समांहि ।
तिरलोकी में साध सम, दूजी गादी नांहि ॥

सतगुरु कूं सिर नाइके, दे चरणां में सीस ।
देवादास दिल हाथ ले, तो मुगति करै बगसीस ॥

भांण सरूपी गुरु मिल्या, रामचरणजी राम ।
ध्यान हुयो सब सृष्टि में, प्रगट च्यारूं धाम ॥

दरसण कर गुरुदेव को, मन रे बारम्बार ।
पैंड पैंड में यज्ञ है, तीरथ सबता लार ॥

मैं हूं भिचुक रावळो, सतगुरु दाता मोर ।
देवादास पर महर कर, राखि चरण तल तोर ॥

रामचरण सेवा करो, रे मन धरि कर मोद ।
देवादास निर्भय रहै, चढ़ै न जम की गोद ॥

गुरु गोविन्द सूं अधिक है, जा महिमा नहिं पार ।
देवादास मैं कहा कहूं, कहै वेद विसतार ॥

वीनती को अंग

देवादास की वीनती, कर जोड्यां परनाम ।
सतगुरु किरपा पाइये, परा मुक्ति विसराम ॥

अचल अभंगी रामजी, सतगुरु सब ही सत्त ।
देवादास वंदन करै, मैं तुम चरणों रत्त ॥

नित चरणों में राखजो, नेरा सूं नेरो ।
देवादास है रामजी, त्रयविधि बिधि चेरो ॥

देवादास में कुछ नहीं, करणी को वणको ।
पिता राम तुम तारि हो, मैं ईं घर को लड़को ॥
कूड़ कपट अवगुण भर्यो सो मति देखो आप ।
अपणों बिड़द संभालज्यो, मो मैं पूरण पाप ॥
देवादास कूं गैल ल्यो, करणी दिसा न देख ।
सरण आपकी रामजी, बांह गह्यां की रेख ॥
रेख बिड़द की राखज्यो, राम गरीब निवाज ।
देवादास की वीनती, तुम चरणां मम लाज ॥
पार उतारो पकड़ कै, अपणूं बिड़द सम्हाल ।
तुम गरबा गुणही करो, अवगुण दिसा न न्हाल ॥
पापों की संख्या नहीं, रोम रोम गुन्हैगार ।
देवादास कूं रामजी, तुम ही उतारो पार ॥
कलिजुग मांही राखज्यो, लाज हमारी देव ।
देवादास बिनती करै, महा भयानक येह ॥
सरण तुम्हारी आईयो, तुम ही बगसो खोट ।
देवादास कह रामजी, लहि सब्द की ओट ॥
ओट चोट लागै नहीं, ये सबलां की रीत ।
देवादास कह रामजी, मेरे यह परतीत ॥
देवा गरीबी गढ़ में, राम भजन को तोर ।
अभय किलै आसण कियो, जहां लगै न काहू जोर ॥

बिस्वास को अंग

नेम रहेगा नांव का, ओर नेम का नास ।
देवादास तूं समझि कै, रखो राम विसवास ॥
एक भरोसे राम कै, देवा रहो नचीत ।
सतगुरु धारो सीस पर, निरभय पद परतीत ॥
अनचंर तिणचर जीवचर, सबकूं दे करतार ।
रे मन भजिये तास कूं, देवा धरि इकतार ॥

देवा दुबध्या दूरि कर, राख एक इकतार।
राम नाम सब सन्त कहै, तीन लोक को सार॥
देवा अपणां अपणां पेट की, सब ही करत उपाय।
राम भरोसे राम कह, सोही साधू गाय॥
देवादास संसार सठ, काम पड्यां ले सूंण।
करता हंदा वैंण कूं, घटि वधि करैस कूंण॥
नहीं भरोसो भागकूं, नहीं राम विसवास।
देवादास मृगवारि ज्यूं, भरमत रहै निरास॥
भरम भरम भरमत फिरै, करै न हरि विसवास।
वे तिरपति सुपने नहीं, जनिहूं देवादास॥

अजाची को अंग

मरूं पण मांगू नहीं, अंकै कीन्ही एक।
या रामचरण की सीख है, सो देवादास के टेक॥
जाचूं सतगुरु रामजी, दूजा सब ही हीन।
देवादास नहीं मांगि हैं, एक भरोसे दीन॥
रे मन तोसूं कहत हूँ, रहो अजाची बीर।
देवादास मांगे मती, मांग्या होइ कंगीर॥
वैराट मांहि मावे नहीं, ईश्वर अति अवतार।
मांगण सेती देवादास, गिणती बावन सार॥
लज्या सरम अरु तोल थो, आदर मा पर आघ।
देवदास मुख मांगता, गयो ग्यान वैराग॥
होइ अजाची मन रे, विचरो सहज सुभाय।
देवादास मांगै मती, मांग्या निरवरती जाय॥

चन्द्रायणा—सुमरण को अंग

राम मंत्र कूं साध सबन को सार रे।
और सकल ही त्याग जांण ले छार रे॥

भजन करो भरपूर तोड़ मति तार रे ।
परिहां देवा समझर करो विचार उतारो पार रे ॥ १ ॥
पाइ मोटी चीज राम को नांव रे ।
सतगुरु के परताप सुमरि अठ जाम रे ॥
मिनखा देही पाय सुधारचो वाम रे ।
परिहां सब सुख लीधा लूटि लग्या नहिं दाम रे ॥ २ ॥
राम तज्यां होय हांण पेड के पाड़ियां ।
पात गयां कुछ नाहिं मूल की वाडियां ॥
चत्र वीस तैंतीस सबै ही आइया ॥
परिहां देवा राम बीज के मांय सरव कूं पाइया ॥ ३ ॥

कुण्डल्या

(१)

पिंडत पोथी वांचकै मन में माने मोद ।
भूल्यो रमता रामकूं तो खेले जम की गोद ।
तो खेले जम की गोद बोध जे झूठे लागो ।
डाकि परचो भव कूप और लियां बहु सागो ।
देवादास साची कहै संता विना न सोध ।
पिंडत पोथी वांचकै मन में माने मोद ॥

(२)

सरल भरल संसार है नहीं नांव की टेक ।
देवादास दूजा धरम थोथा गहे अनेक ।
थोथा गहै अनेक तास सूं पार न पावे ।
वेद स्मृति कहै साध राम तजि दोजग जावे ।
सतगुरु विन सुलझै नहीं जगत पिंडत कहा भेप ।
सरल भरल संसार है नहीं नांव की टेक ॥

(३)

कनक कामणीं त्याग कै विरकत वाजै सोय ।
मुख जाचै माया किरत दियो जमारो खोय ।

दियो जमारो खोय संग्रह सूं मांगण खोटो ।
राग द्वेस अरु सोग जत अरु सत को टोटो ।
देवादास साची कहै बोवे ऐसी बोय ।
कनक कामणी त्याग कै विरकत बाजै सोय ॥

आरती

आरती अखंड राम की कीजै, राम राम रसना सूं पीजै ।टेक।
प्रथम आरती मन मतवाला, घट में दीपक ग्यान उजाला ॥१॥
दूसरी आरती दीरघ देख्या, निसदिन हिरदै हरि कूं पेख्या ॥२॥
तीसरी आरती तिरपति पाया, निरभै गिगन निसांण बजाया ॥३॥
चौथी आरती चहुँ दिस फूला, प्रेम पुहुप परि भंवरा भूला ॥४॥
पांचवी आरती पूरण दरस्या, आतम मिल परमातम परस्या ॥५॥
जन देवादास यह गुरुगम गावै, सतगुरु सरण बहुत सुख पावै ॥६॥

श्री मुरलीराम जी महाराज की अणभै वाणी

स्तुति—किवत

(१)

नमो रमैया राम नमो सतगुरु हरि रूपा ।
नमो संत परवीण राम रटि भये अनूपा ।
नमो सिध जागेस नमो जत सत के पालक ।
नमो नाथ मन जीत राम रटि मिलि रहे पालिक ।
मुरली साधू राम गुरु तीनों कारण एक ।
ताके पद वंदन करत टल जाय विघन अनेक ॥

(२)

साध राम गुरुदेवजी कारण एक पिछाण लै ।
साध दया दिल पाक राम ही राम उचारै ।
वे सम दृष्टि सुद्ध सदा इक रूप बिचारै ।
राम रमे सब मांहि नित्य निरधार अजन्मा ।

निगम कहत गम नांहि वरण नहीं आवे मनमा ।
सतगुरु सिरजणहार इक मुरली मन विच मान लै ।
साध राम गरुदेवजी कारण एक पिछाण लै ॥

(३)

नमो राम निरधार नमो निरंजण निरकारा ।
नमो अजूणी नाथ सकल तेरै आधारा ।
नमो त्रियेगुण रहत नमो मन बुधि चित पारं ।
नमो अरंग अभंग नाम सुमरत भव तारं ।
अछह अगह अदेह नेह किस सूं नहीं ट्रोहता ।
नमो अवोल अमोल तोक ताका नहिं होता ।
मुरलीराम वंदन करै किस विध जाण्यो जांय ।
राम कहत रामहि मिलै दूजी नहीं उपाय ॥

(४)

नमो ब्रह्म निज देव नमो अवगति अवनाशी ।
नमो निरंजणराय सदा संतन सुख रासी ।
नमो गरीब नवाज पतित पावन विड़द तेरो ।
भक्त विछळ भय हरण मरण मेट्यो सब मेरो ।
नमो वार मध पार वरणै आवे नांही ।
नमो चिदानंद रूप रूप में लिपै न काही ।
नमो दृष्टि नहीं मुष्टि नाम तेरो कहा दीजै ।
ताते यह विचारि राम रसना रस पीजै ।
ध्रुव शिव नारद शेष से रटै अखंडित धार ।
मुरली अक्षर दोय विच पाया सब आचार ॥

(५)

नमो परम दयाल नमो आनन्द सुख रासी ।
नमो अखंडानंद सदा स्वयं प्रकासी ।

नमो ध्यान का रूप नमो वैराग्य स्वरूपा ।
नमो शील के पुञ्ज नमो भक्तन के भूपा ।
नमो अंजण से रहित नमो निरंजण निरकारा ।
नमो अजूंणि नाथ नमो तुम रहत बिकारा ।
नमो ज्ञान कै पार नमो विज्ञान अध्यातम ।
नमो दया के मूरि सकल में जांण प्रमातम ।
जन मुरली वंदन करै वार पार दीसै नहिं ।
गुरु रामचरण पद राम कै वरत रहै सब घट महिं ॥

साखी—सुमरण को अंग

प्रथम स्तुति गुरु रामकूं, जासूं सब परकाश ।
भूत भवप वर्तमान संत, तिन को मुरली दास ॥
मुरली चेतन होय कै, कहिये चेतन राम ।
भीणां केसां ऊपरै, मूढ़ चुणावै धाम ॥
धाम भाम तज जाय हो, लख चौरासी मांहि ।
यां भोगां की मार को, वां लेखो आवे नांहि ॥
चौरासी की मार को, वार पार नहीं छेह ।
तातैं पीजे रामरस, कर कर अधिक सनेह ॥
मुरली भजिये राम कूं, तज सब भोग विलास ।
लख चौरासी जूंण में, जन्म जन्म जम त्रास ॥
चौरासी की मार को, मुरली वार न पार ।
तातैं नरतन पाइ कैं, भजिए सिरजन हार ॥
मुरली अवसर आइया, मूरख अब की वार ।
ताकूं ठौर लगाइए, तज सब विषय विकार ॥
जम्बू द्वीप रु भारत खंड, रामराज नर देह ।
मुरलीराम निवाजिया, अब वाही कूं भज लेह ॥
कीयास मुरली कर लिया, ईं अवसर या बार ।
सुकृत सतसंग भजन जुग, मिलै न ऐसी वार ॥

मुरली पहली चेत कैं, पीजे राम रसाल ।
घर लागां कुवा खिणैं, सबैं हंसैं दे ताल ॥
मुरली मरणा आइया, जीणा गया बिलाय ।
तातें कारज कीजिये, राम रेण दिन गाय ॥
मुरली मरणां आइया, जीवण जांण असार ।
तातैं रे नर चेत कैं, रसना राम उचार ॥

उपदेश को अंग

मीठा बोलो नय चलो, लहो भलाई अंग ।
मुरली कैसा जीवणां, नदी नाव का संग ॥
राम राम कह लीजिये, मुरली रसना ठीक ।
स्वास उस्वासी भजन की, दलैं भीका भीक ॥
सतगुरु का उपदेश यह, राम कहो गह सील ।
जन मुरली तब होयगा, सुरति सबद का मील ॥
कलू काल की देह में, मुरली लाव न साव ।
राम पीवख पी लीजीये, कर सतगुरु सूं भाव ॥
वाय कफ पित दूषणा, यह कलू के चहन ।
या में भजिये रामकूं, देह नेह दुःख देन ॥
मुरली चेत सम्हाल कें, चित चेतन में लाय ।
मौत सिराणैं बहत हैं, यह हरिजन कहत चिताय ॥
मुरली भजले रामकूं, जब लग सास शरीर ।
पहली पालज बांधिये, ज्यूं वहै ताल में नीर ॥
मुरली बहुरन पाइयो, ऐसो समूं गिवार ।
नर तन सतगुरु संतजन, रसना राम उचार ॥

सारग्राही को अंग

सारग्राही संतजन, गहै सार ही सार ।
मुरली तजै असार सब, करै नांव सूं प्यार ।

गुणवन्ता गुण के गहै, तजि अवगुण काम सरीर ।
मुरली सुमरै रामकूं, हो गहरा गुणां गंभीर ॥
सारग्राही संतजन, सुमरै सार सवद ।
मुरली तजै असाध उर, पांच पचीस कुवध ॥
सार सवद संग्रह करै, त्यागे आन असार ।
सारग्राही सो सही, रटै रकार मकार ॥

अवगुण ग्राही को अंग

अवगुणग्राही की कथा, मुरली देत सुणाय ।
अपणां अवगुण गुण कहै, पर गुणकूं विसराय ॥
अवगुणग्राही गुण तजै, औगण लेह उठाय ।
मुरली वायस पूजिये, पण करै वींठ सिर आय ॥
औगण ग्राही मींडको, जल तजि कादो खाय ।
यूं इम्रत गुण मूरख तजै, विष औगण लेय उठाय ॥
मरकट की कहा दोसती, जे वंध सूं देह छुडाय ।
ऐसा औगण पिंड वसै, ताहिल वुरै आय ॥
औगण ग्राही क्या लखै, मुरली गुण की बात ।
गुण करतां औगण करै, फिर ताकूं घालै घात ॥
देखो खेत सुलखणां, खात लेत अन देत ।
पर औगण ग्राही आतमा, गुण तजि औगण लेत ॥

सोरठा

सब इम्रत सिरताज, राम पिवख पिवखां सिरै ।
सुधरै सब बिधि काज, सुरति निरति करि मुख पिवै ॥
ऐसा औरन कोय, राम सुधा रस संग तुलै ।
सुरति निरति ल्यो जोय, मुरली मन बच करम सूं ॥
सार मांहि अतिसार, एक रकार मकारजू ।
सुमर्यां सुख भंडार, भावै देखो जाइके ॥

मुरली सतगुर महर, ऐसा पाया भेद हम।
भई जीव की खैर, राम सुमर निरभै भया ॥
राम नाम का भेद, मिलै न पूरण गुरु विना।
छूटि जाय सब खेद, मुरली जनम रु मरन की ॥
सतगुरु महर विचारि, राम पीवण का पीवणां।
जासूं हटै विकारि, जन मुरली तन मन्न का ॥
रसना सुमरत राम, इम्रत की धारा चलै।
मिटै कुलखन काम, उदय होइ सुभ धरम सब ॥
षट् दर्शन अरु भेष, राम भजन साचे सबै।
नहीं तो सांग अनेक, विधवा का सिणगार सब ॥

पद

(१)

सन्तो राम दया बहु कीनी।
हम अपराधी अधम असाधी, तातैं एक न चीह्नी। टेक।
मिनखा जनम कलू अवतारा, उत्तम कुल में जामां।
सो हम धनकूं जाण्यो नांही, हरिसूं भया हरामां ॥ १ ॥
नीचा कुल का करम कमाया, जैसा सुपचा नांहि।
विषया भोग किया बहुतेरा, कबहुँ नांहि अघांहि ॥ २ ॥
खर कूकर भी हम सूं आछा, रति सिर विषय विचारे।
हम अपराध करत नहीं डरप्या, नित प्रति मांणस मारे ॥ ३ ॥
धनि वे राम धनि सत्संगति, जिन सतगुरु दिया बताई।
लोहाकूं पारस सूं भेट्या, कुंण यह मेळ मिलाई ॥ ४ ॥
सतगुरु दस्त धरया सिर ऊपर, राम नाम मुख भाख्या।
जगत जाळ तजकर बैरागी, चरण कमल तळ राख्या ॥ ५ ॥
अब तो धोखा तिल भर नांही, दया भई भरपूरी।
मुरलीराम राम गुरु परस्या, दे जगतर दिसी धूरी ॥ ६ ॥

(२)

राग पंजाबी

सब जग दुखिया सुखिया न दीसै, तन मन ममता साथी वै ।
सुखी एक जन राम पियारा, भजन करै दिन राती वै । टेक ।
के तन की के धन की मुस मुस, लागि बिसारया हरिजी वै ।
ममता मान वडाई भूल्या, आपा परके गरजी वै ॥ १ ॥
धरम भिष्ट सब भयो जगत को, स्वारथ सूंखा खावे वै ।
स्वारथ जन राम रंगीले, निरभै मंगल गावे वै ॥ २ ॥
जोगी जगम शेख सन्यासी, बाम्हण जती देख्या व ।
जगत भगत पट् भ्रष्ट सवै ही, ऊंच परां की रेखा वै ॥ ३ ॥
के कामणी के जाणि सुत वित, के चेला के चांटी वै ।
यह तेरा यह मेरा सेवग, पकडि रह्या यह आंटि वै ॥ ४ ॥
केइ हाट हथाई पोल्यां, के देवळ तीरथ धामां वै ।
केइ मक्का मजीदा उळभया, किसी न पाया रामा वै ॥ ५ ॥
आप आप में सबही मोटा, चवदा तीनों लोका वै ।
मान वडाई सबही दूखे, शिव ब्रह्मा का वोका वै ॥ ६ ॥
मुरलीराम रामजन सुखिया, जे जन तिरपति हूवा वै ।
पखा पखी कर भेष जगत सब, मैं तैं के दुःख मूवा वै ॥ ७ ॥

आरती

आरती अधम उधारपति स्वामी, सकल सृष्टि में प्रगट बिख्यामी ।टेक।
साधूजन कै सीस बिराजै, गिगन मण्डल धुनि अनहद गाजै ॥१॥
राम सुमरि जन राम समाया, बहुर्यों धरै न जग में काया ॥२॥
धनि वै संत राम रस भीना, ऐसा भीणा मारग चीन्हा ॥३॥
पांच पचीस जीत भया निरभै, राम सुमरि पाया घर अणभै ॥४॥
मुरलीराम आरती गावै, सतगुरु संत राम उर भावै ॥५॥

श्री तुलछीदास जी महाराज की अणभै वाणी

स्तुति—सवैया

वार ही बार नमो निज राम कूं, वार ही बार नमो गुरुदेवा ।
वार ही वार नमो तिहुँ काल कै, सन्त हुए जो गह्यो सति भेवा ॥
वार ही वार रहूं चरणा द्रति, होय गरीव करू नित सेवा ।
तुलछी या अस्तूति करत है, ओडि निवारह तन एवा ॥

साखी—सुमरण को अंग

राम नाम श्रवणा सुण्या, ये परम मुक्ति की धाम ।
तुलछी जब सुमरण लग्या, वह्या राम ही राम ॥
राम राम निसि दिन कह्यो, लागि रही इक सोक ।
तुलछी ढीलो मति रहै, यह ले पहुँचै निज मोख ॥
राम राम रसना रट्या, अधिक अधिक कर प्रीत ।
तुलछी ज्यों घणां दिनां में, मिलि हैं अपणां मीत ॥
मिंत एक ही राम है, आदि अन्त मधि मांय ।
तुलछी भजिये तासकूं दूजा राख्या नांय ॥
राम अमल मातो रहै, चढ़्यो रहे दिन रात ।
तुलसी मतवाळो भयो, उतरै नांही स्यात ॥
सास उसासां भजन किये, लागि रही अति डोरि ।
तुलछी कह मन खुशी भयो, सुणत सवद की घोरि ॥
अजामील गिनका तिरी, पापी तिऱ्या अपार ।
तुलछी सुमऱ्या रामकूं, सो वह्या न भव की धार ॥
जनम सुधाऱ्यो चाहिये, तो निसि दिन भजिये राम ।
तुलछी हलमां कीजिये, जद सरसी सब काम ॥
रामदयाल दया करै, जो करै बंदगी कोय ।
तुलछी कह सुमरण विना, कैसे कारज होय ॥

करै चाकरी मिनख की, ऊभी दे रुजगार ।
तुलछी भजियां रामकूं, क्यों न उतारै पार ॥
खोदत खोदत नीसरै, धरती मांही नीर ।
यूं तुलछी कहतां रामकूं, खुलै परम सुख सीर ॥
डाल पात सब आन है, राम नाम निज मूळ ।
तुलछी याकूं ना भजै, जाका मुख पर धूळ ॥
मरां कहत तीजै सबद, हो गयो राम ही राम ।
तुलछी देखो वालमीक, सरिया सब ही काम ॥
ओहं सोहं सबद ये, सब जीवां कै होय ।
तुलछी योही भजन है, तो नरक पड़े क्यूं सोय ॥
सास उसासां राम कह, ढीलो मति रह जाय ।
तुलसी अनजल पायके, पुष्या ल्योह भगाय ॥

चितावणी को अंग

चेत चेत नर चेत तूं, क्यूं भूलै जग मांहि ।
तुलछी कहै इक राम बिन, जम तोहि छोडे नांहि ॥
अवधि जायरे बावरे, ज्यूं विरखा को नीर ।
तुलछी हाथ पखालिये, करो रामसूं सीर ॥
लार न कोई चालसी, देह आपणी लग देख ।
तुलछी कहै नर झूठ संग, बिसरै राम अलेख ॥
राम कहो रे बावरे, हलमां कर कर खूब ।
तुलछी कहे राम बिन, जाय नरक में डूब ॥
पार उतारो वेग तुम, नहीं देह की ठीक ।
तुलछी पल में बिगडसी, ज्यों बालू की लीक ॥
बालू की सी भींत है, रे नर तेरी देह ।
तुलछी पल में भिजणसी, करो राम स्यूं नेह ॥
चौरासी में रुळेला, ज्यूं थाळी में मूंग ।
तुलछी कह इक राम बिन, होसी कीट पतंग ॥

तृष्णा को अंग

राम भजन आडी घणीं, तृष्णा बडी बलाय ।
तुलछी भारी देतणी, मोपे कही न जाय ॥
पग की ठोकर देय के, हाथां सूं गह खाय ।
तुलछी तृष्णा रांडड़ी, कोइ छोडी नाहीं जाय ॥
राम भजन में विघन यो, आसा तृष्णा देख ।
तुलछी नर भूखो रहै, खोजै जनम विशेख ॥
राम भजन सूं आंतरो, सो सब तृष्णा होय ।
तुलछी शुभ को नांव है, पर पावै नहीं कोय ॥
मंगणी ज्यूं सब होइ गया, तृष्णा चढ़ि कै बांस ।
तुलछी वे वहां नाचकै, मूवा बिन विसवास ॥
तृष्णा केरी लाय में, भस्म भयो संसार ।
तुलछी साधू ऊबरया, जल सन्तोष मंझार ॥
अनंत रूप तृष्णा धरया, लियो जगत कूं शोष ।
तुलछी साधू हरि सुमरि, उबरया ले सन्तोष ॥

चन्द्रायणा—साध को अंग

मुख हिरदै रहे राम, रैंण दिन सुमिर हैं ।
काम क्रोध मद लोभ, डिंम कूं डुमरि हैं ॥
माया मोह सूं फरक, सदा ही त्याग है ।
परिहां तुलछी सोही साध, ऐसो वैराग है ॥ १ ॥
राम राम मुख कहै, राम ही ग्यान रे ।
राम राम उपदेश, राम ही ध्यान रे ॥
राम राम अठ जाम, राम बिन कोई रे ।
परिहां तुलछी कहे वे संत राम का होई रे ॥ २ ॥
स्वाद वाद कूं जीत, भजै इक राम रे ।
रात दिवस इक सार, और नहीं काम रे ॥

वे संत मिलै परब्रह्म, सही आणंद सूं ।
परिहां तुलछी जैसे नदी, समावै सिन्धु सूं ॥३॥
पतिव्रता अति उजल, हजारी कापड़ो ।
नख शिख सेती जांण, दाग कोई ना पड़ो ।
विभचारिणी यों गिणूं, भाखज्यो स्याह रे ।
परिहां तुलछी ताकूं कोई लेह बिछाय रे ॥४॥

कुण्डल्या—साध दरसण को अंग

(१)

संता को दरसण करै है जाको बड भाग ।
थां प्राण्यां को लागि है राम नाम सूं राग ।
राम नाम सूं राग त्याग मोह जग को करि हैं ।
दया सील सन्तोष यह हिरदै में धरि हैं ।
तुलछी ई परताप सूं जम्म करै नहीं लाग ।
संता को दरसण करै है जाको बड भाग ॥

(२)

दान पुन्न तीरथ बरत किया न उर परकास ।
संत दरस फल अधिक यों हिरदै होय उजास ।
हिरदै होय उजास ग्यान बहु भारी आवै ।
राम भगति दिढ़ होइ तिमिर अग्यान नसावै ।
तुलछी इण दोन्यूं जगां हुवै जो ऊंची आस ।
दान पुन्न तीरथ बरत किया न उर परकास ॥

(३)

परथम साचा साध है य सब लच्छ ताके मांय ।
जाके साचा भाव सूं गिरसत दरसण जाय ।
गिरसत दरसण जाय, लाभ तब भारी देखो ।
पैंड पैंड असमेध जिग फल होय विशेखो ।

तुलछी झूठो एक होय जहां नफो कुछ नांहि ।
परथम साचा साध होय सब लच्छ ताके मांय ॥

आरती

ऐसी आरती करो कोई ग्यानी, भरम तजो गहो सारंग पानी ।टेक।
प्रथम आरती रसना लीजै, राम राम रट इम्रत पीजे ॥१॥
दूसरी आरती हिरदै करिये, ध्यान अखंडित नहचल धरिये ॥२॥
तीसरी आरती नाभि उतारो, रूंम ही रूंम होत झुँणकारो ॥३॥
चौथी आरती गिगन चढ़ावो, परस त्रिकुटी निज घर जावो ॥४॥
परम ज्योति जहां अनहद तूरा, मानूं अनन्तक ऊग्या सूरा ॥५॥
सतगुरु जी सूं इण बिध पाई, तुलछीदास यह आरती गाई ॥६॥

श्री नवलरामजी की अणभै वाणी

साखी—गुरुदेव को अंग

अनंत कोटि जन सिर तपै, रामचरण उर मांहि ।
आन भरोसो आन वस्त, नवलराम कै नांहि ॥
काम निवारण कीजीये, लीजै नाम निधान ।
नवला नवला नेह करि, परम गुरू को ध्यान ॥
परम गुरु परमातमां, प्रगटै रामचरण्ण ।
नवल नैन मन जोरि कर, रहिये सदा सरण्ण ॥
सतगुरु कै सरणै सदा, राम नाम का ध्यान ।
नवल महर संता तणी, वेगि उदय होय ग्यान ॥
ग्यान उदय होय पलक में, खलक खपन्ता जान ।
नवला सतगुरु धार सिर, जगसूं उलटी तान ॥
सास उसासां सुमरिये, अन्तर में इकसार ।
नवल सदा सरणै रहो, गुरु उतारै पार ॥
नवल करै या जीवकूं, सतगुरु सीव समान ।
पीव मिलावै पलक में, खलक दिसा सूं तान ॥

सुख सुमरण में जानिये, पुनि सतगुरु के संग ।
नवल सुलभ सरणैं रहो, मति रचो जगत के रंग ॥
जगत रंग सब काच है, साचा सतगरु राम ।
नवल निरति कर देखिए, और नहीं विसराम ॥
संसारी कै एक सा, सब ही धरम समान ।
कहा उत्तम कहा मधिमा, परमेसुर अरु आन ॥
परमेसुर अरु आन मत, सर भर गिणैं गिंवार ।
नवला निरभै राम है, आन मता सब छार ॥
तिरतां लागै नांहि कुछ, नवला निमखज एक ।
सतगुरु सबद बिचारि कै, गहो नांव की टेक ॥
नवल भगति अति कठिन है, जिण तिणसूं नहीं होय ।
भजन करै जन सूरिवां, तन धन आसा खोय ॥
ताप पड़ै जो आयकै, जाय धरा धन धाम ।
तन लग जातां राखिये, नवल राम का नाम ॥

चन्द्रायणा

नवल करे अरदास दयानिधि रामजी ।
सरणापति महाराज सरणि सुख धाम जी ॥
काम बाम धन धाम सूं आप उबारियो ।
परहां ये ही दयो वरदान आन सब टारियो ॥ १ ॥
सीस हमारे एक निरंजण राम है ।
सतगुरु जी को दरस परम सुख धाम है ॥
आन ठोर की दौर हमारी सब थकी ।
परिहां नवल रटि राम अमीं भर भर चखी ॥ २ ॥
आन धरम की आस कबहू नहीं कीजीये ।
राम नाम निरबाण प्रीति कर लीजीये ॥
सुख दानी समरथ सदा ही आप हैं ।
परिहां नवलराम दुख दान आन का जाप हैं ॥ ३ ॥

मेरा सिर पर राम निरंजण एक है।
दूजा मानूं नांहि हमारे टेक है॥
टेक बिना नहीं भलो जीव को होय रे।
परिहां नवलराम सत राम कह सब कोय रे॥ ४॥
मेरे याही टेक एक को दास रे।
राम निरंजण बिना न दूजी आस रे॥
भल कोपो सुर इन्द जिन्द लग त्याग है।
परिहां नवलराम बिन राम कहूँ नहीं राग है॥ ५॥

रेखता

राम रे राम रमतीत भरपूर है, दूरि क्यों जाय नर खाइ गोता।
बुझि गुरुदेव कूं सुझि तोकूं पडै, सूझि बिन सकल जग फिरै रोता॥
कोइ बहुकाम नर कामना हेतजूं, चेतचित हरि नाम ल्यावै।
आन ही आन बहु मानसूं पूजिकै, आप नर मान बहु दुःख पावै॥
देस परदेस अरु सुरग पाताल में, भरम अधीन भव दुख मांहि।
नवल निरबाण पद राम का नाम है, सुमरि अठ जाम ये दूर नांहि॥

पद

भलि भलि आज पधारे साधू राम नाम का दाता हो।
भेंचक भरम मिटायो जिव को उपजाइ उर साता हो।टेक।
अपनी सकति मेलि मो मांही एक सुणाइ बाता हो।
दे उपदेस केस गह काढ्या राख्या दोजिग जाता हो॥ १॥
विषय बवन सूं गवन मिटाया राम रसायण माता हो।
सरणें राखि उबार्‌या सतगुरु मेटि काळ की घाता हो॥ २॥
संसारी रग दूर निवार्‌या राम अभय रंग राता हो।
ये रंग धोया नांहि धुपै अब जुड़्या नामसूं नाता हो॥ ३॥
छाप हमारी रामसनेही सारी सृष्टि विख्याता हो।
सुकृत को फल पाइ सम्पूरण नवल प्रेम मन माता हो॥ ४॥

(नवल सागर से उद्धृत)

स्वरूपां बाई के पद

(१)

भगति बधारण काज आज जुग रामचरण महाराजा हो।
अधम जीव बहु पार किये हैं कहा रंक कहा राजा हो॥ टेर॥
आप लियां नरवेद करारो नहीं सुख हेत इलाजा हो।
संशय रोग लियां कोऊ आवै ताको करे इलाज हो॥ १॥
सुख बोध दे सुख उपजावै गावे गुण जग जाता हो।
राम सुधा रस पीकर छकिया औरां कूं ज पिलाता हो॥ २॥
नारी जूंण में अधम अधोगति ताकूँ दीन्ही साता हो।
दास स्वरूपां वलि वलि जावै रामचरण सुख दाता हो॥ ३॥

(२)

सुख दाता सतगुरुजी मेरा रामचरण अवतारी हो।
जनम सुधारण काज धर्‍यो तन पार किये नर नारी हो॥ टेर॥
अधम जीव जो पायन परिया सब की दया विचारी हो।
दुख द्वन्दरता मेट दिये सब सुख उपजाये भारी हो॥ १॥
चरण रेणु ले मस्तक धरिये काम कुवधि होइ न्यारी हो।
जे नर अबल सबल किये सतगुरु जग में जस विस्तारी हो॥ २॥
ये जग कठिन महा अति""कर सुख नहीं कहूं लगारी हो।
सुखदायक सब के हित वंच्छक रामचरण लच्छधारी हो॥ ३॥
तुम गुण सागर थाह न कोई को वरणे लच्छ सारी हो।
दास स्वरूपा शरण पड़ी है बार बार बलिहारी हो॥ ४॥

श्री जीवणदासजी महाराज की अणभै वाणी

साखी

करूं बंदन गुरु ब्रह्म कूं, आदि अंत मध्य संत।
जन जीवण कर जोड़िक, पल पल बार अनंत॥

पद

काई सोवे नींद घटाऊड़ा अगम घणी रे ।
नींद उड़ाय आलस तज रहिये काई सोवे नाम उणींदा रे ।
कमर कस विलस मत घटाऊड़ा पूछैला बात घणी रे ॥
छाडि संसार उलझ मती प्राणी ये गुरु सीख भणीं रे ।
सुणे गुरु ज्ञान चेत भज प्राणी काई सोवे गठड़ी अपणी रे ॥
ऊबट घाट चलणा है मन रे तीखी धार घणीं रे ।
जीवणदास इक राम सुमरिने सब दुख जाय .... ॥

आरती

आरती कीजै राम अखंडा, रच्यो थाट जिनसब ब्रह्मंडा । टेर ।
अखिल ब्रह्म सब अन्तरजामी, अभय अनामी सब घट नामी ॥
निगमागम कहुं पार न पावै, बुधि सन शेष शारदा गावै ॥
शिव और सनक सनन्दन ध्यावैं, सनत्कुमार सनातन गावैं ॥
ज्ञानमयी दीपक कर लीजै, जन जीवण हरि पद चित दीजै ॥

श्री मुक्तरामजी महाराज की अणभै वाणी

साखी—गुरुदेव को अंग

राम निरंजन सन्त जन, सतगुरु तुम आधार ।
जन मुक्तराम कर जोड़ के, वन्दे बारम्बार ॥
रामचरण जी राम है, भगवानदास अवतार ।
जन मुक्तराम ताकी शरण, पायो ग्यान विचार ॥
ब्रह्म पद में गरक है, नहीं जिनों के देह ।
पांच पचीसों तीन सों, रती न जाके नेह ॥
राम रतन धन पाईयो, सतगुरु सरणे आय ।
जनम जनम का मुक्तराम, टोटा गया विलाय ॥

राम रतन धन पाईयो, सतगुरु सरणे आय ।
जन मुक्तराम का,भय मिट्या, सांसा रह्या न काय ॥
व्याधि मिटै या जीव की, ले सतगुरु को ग्यान ।
मुक्ता सुमरे रामकूं, तो छूटै चारयों खाम ॥
सबद बतावे राम नाम, सिप सुमरे चितलाय ।
लख चोरासी जूंग का, मुक्ता दुख मिट जाय ॥
राम नाम की नाव कर, सतगुरु खेवट सार ।
जन मुक्तराम भव सिन्धु में, गुरु उतारै पार ॥
दोई मार जमदूत की, सतगुरु देत मिटाय ।
जन मुक्तराम वड भागसूं, सतगुरु मिलिहं आय ॥
केस पकड़ कर काढ़ियो, लीन्हों अपणी लार ।
जन मुक्तराम गुरुदेव जी, नाम दियो तत सार ॥
राम राम रसना रट्या, कट्या कोटि अपराध ।
सतगुरु सरणे मुक्तराम, पायो पद अगाध ॥
काम क्रोध तृष्णा बुझै, जब मन पावै विश्राम ।
जन मुक्तराम गुरु ग्यान तै, कहत राम ही राम ॥
तीन ताप सहजै मिटै, कटै करम का दाग ।
जन मुक्ता सरणे राम के, राम भजन चितलाग ॥
पास कटी जब मोह की, तब उपज्यो वैराग ।
सतगुरु का प्रताप सूं, कियो जगत को त्याग ॥
लाज हमारी राखज्यो, सतगुरु सिरजणहार ।
सरणा की प्रत पालज्यो, मैं गुनहगार लख वार ॥

बीनती को अंग

गुनहगार बहु जनम को, कींधा पाप अपार ।
जन मुक्त राम की बीनती, तुम कीज्यो राम उधार ॥
उधार करो या जीवको, तुमरो बिड़द संभाल ।
जन मुक्तराम की बीनती, तुम त्यारो रामदयाल ॥

वांह पकड़ कर राखियो, चरण कमल की छांह ।
जन मुक्ता कूं राखियो, भव डूबत गह वांह ॥
पासी काटो रामजी, तुम चरणां को दास ।
जन मुक्तो वीनती करै, काटो भव की पास ॥
पाप करम वहुता किया, जाको वार न पार ।
जन मुक्तो वीनती करै, तुम किस विध करो उधार ॥
दो जग जाता जीव कूं, तुम राखो दीनानाथ ।
जन मुक्तराम की वीनती, मोहि मेटो जम की लात ॥
रामदयाल कृपा करो अपणों विड़द संभाल ।
सरण तुम्हारी रामजी, मुक्त्यो दास कंगाल ॥
मो पापी कूं त्यारिहो विड़द आपको जोय ।
जन मुक्तराम को रामजी, चरण लगावो सोय ॥
मुक्तराम की वीनती, मैं अनाथ निरधार ।
भव सागर ते रामजी, आप उतारो पार ॥
हाथ संभावो रामजी, तुम हो दीनदयाल ।
मुक्तराम अति अधम की, आपही करो संभाल ॥
वारम्वार गुलाम की, सुण लीज्यो अरदास ।
जन मक्तो वीनती करै, काटो भव की पास ।
कोई न मेरे रामजी, तुम विन दूजा नाथ ।
मुक्तराम वीनती करै, तुम राखो दोजग जात ॥
तुम ही मेरे रामजी, तुम ही मेरे वाप ।
तुम ही मेरे ध्यान हो, तुम ही मेरे जाप ॥
आप उधारो रामजी, मैं गुनहगार लख वेर ।
भूल्यो हरि की वंदगी, दुनिया आगे जेर ॥
किस विध काज सुधारिहो, करम किया भरपूर ।
जन मुक्तराम की वीनती, किस विध पाऊं नूर ॥
दया दीन पर राखियो, सतगुरु सिरजन हार ।
जन मुक्ता की वीनती, गुनह गार लख वार ॥

दीन दयाल दया करो, मोहि अधम कूं त्यार ।
जन मुक्तराम की वीनती, तुम सुण लीज्यो करतार ॥
अवगुण सव ही वगसियो, मैं तुमरी सरणाय ।
जन मुक्तराम की वीनती, लीज्यो चरण लगाय ॥

परचा को अंग

राम राम रसना रट्या, मन में अधिक हुलास ।
कंठ हिरदा मधि होइ के, किया नाभि में वास ॥
नाभि कंवल सूं लांघिकर पिच्छम किया प्रकास ।
दसवें द्वारे मुक्तराम, जहां निरंजण वास ॥
ब्रह्म पद मिले मुक्तराम, सो वहुरिन जनमे आय ।
जैसे धूवां गिगन में, गिगन रूप होई जाय ॥
राम पीव जहां परसिया, सरया मनोरथ काम ।
मुक्तराम पिव सेज पर, सुप लूंटे अठ जाम ॥
पिव परस्या आनन्द भया, सरया मनोरथ काम ।
सून्य सिखर का महल में, सुरति सबद सुख धाम ॥
सुरति गिगन का महल में, बर परस्या केवल राम ।
काम कलपना वुझि गई, सरया मनोरथ काम ॥
सुरति सुन्दरि मुक्तराम, राम सबद भरतार ।
गिगन महल विच जाइकै, निज सुख लूंट्या सार ॥
पास निरंजन राम कै, जहां अखंडत जोत ।
मुक्तराम वा देस में, नहीं पाप पुन्य की छोत ॥
एक निरंजन रम रह्या, ऐसा अगम अगाध ।
मुक्तराम वा देस में, नहीं कोई बाद विवाद ॥
आंथै ऊगै सो नहीं, नहीं बादल छिप जाय ।
जन मुक्तराम वा ज्योति को, नास कदे नहीं थाय ॥
अमरापुर पद पहुंचिया, सुमरण लागा सोय ।
जन मुक्तराम संसार में, जनम धरै नहीं कोय ॥

सुरति सबद दोऊं मुक्तराम, हिल मिल खेले नित्त ।
जन्म मरण का दुःख मिट्या, कट्या चौरासी षत्त ॥
सुरति भँवर उलटाय कै, चली पिछम कूं आय ।
त्रिकुटी छाजै बैठकर, दसवें द्वारे थाय ॥
सील सिंगार तन ऊपरै, सुरति कन्या यह जान ।
चित्त चंवरी तन मन दिया, पति पायो भगवान ॥
राम बीन्द संग कर जुड़्यो, फेरा सास उसास ।
मुक्ता वर प्रापति भयो, बैठी पिव के पास ॥
गुरु बाप दियो दायजो, सम दम साच संतोष ।
मुक्ता बैठी पीव संग, निस दिन करिहं जोष ॥
पीहर जाती दौडि जब, पिव सुख पायो नांहि ।
पिव सुख पायो मुक्तराम, अब नहीं पीहर कूं जांहि ॥
पीहर सोही मुक्तराम, लख चौरासी जूंण ।
सुरति रही अब सासरै, मिट गई आवागूंण ॥
पीहर तणूं मिट गयो, अब आवण जांण ।
मुक्तराम वर पाइयो, बर पाया भगवान ॥

पीव पिछाण को अंग

आनन्द उपज्यो जीव में, जब पिव सूं भई पिछांण ।
मुक्तराम सुख उर मंहि, तजि सगाई आंण ॥
दौड़ मिटी तन मन्न की, हटी कामना पीव ।
मुक्तराम पिव जोवतां, सुख पायो मो जीव ॥
पीव पधारया हे सखी, कैसे परसों ताइ ।
मुक्ता आनन्द ऊपज्यो, वर आंगन साहिब आइ ॥
काज सुधारण आविया, बर अविनासी सोइ ।
कन्या कुंवारी सुरति है, आया बरवा मोइ ॥
तोरण जोवे बीन्द कूं, सुरति कन्या यह जान ।
मुक्तराम आनन्द अति, कब परणूं भगवान ॥

कन्या कुंवारी सुरति यह, सतगुरु जानो बाप ।
ज्ञान मोड़ सिर बांधियो, कर महंदी सुमरण जाप ॥
सुमरण महंदी कर दई, पीठी पण परतीत ।
सील साच कर चूड़लो, उर चंवरी तन मन प्रीत ॥
भगवान पीव जब बर बर्‌या, सर्‌या मनोरथ काज ।
जन मुक्तराम पिव ले चल्या, बहुरि बजाया वाज ॥
बाजा वजै महल बिच, जां पतनी पीव परसंत ।
जन मुक्तराम सुन महल की, आगै बात कहंत ॥

चन्द्रायणा—काल को अंग

चढ़ी काल की फौज जक्त जिव ऊपरै ।
विना राम रिछपाल कहो क्यों ऊबरै ॥
सब को लेवै मार काल बलवन्त रे ।
परिहां मुक्तराम जन बच्या ओट भगवंत रे ॥ १ ॥

सब कूं खासी काल विना भगवान रे ।
राजा राणा रंक कहा सुलतान रे ॥
तातै अब तूं चेत हेत कर राम सूं ।
परिहां मुक्ता अन्तकाल की बार छुड़ावे जम्म सूं ॥ २ ॥

काल महा बलवंत खलक के मांहि रे ।
राजा राणा राव सरब ले जांहि रे ॥
कोउ उबरै दास राम की ओट रे ।
परिहां मुक्ता विना भगति भगवान खाय जम चोट रे ॥ ३ ॥

काल जाल जम चोट मिटै मन खोट रे ।
ले सतगुरु को ज्ञान ध्यान हरि ओट रे ॥
ओट सबल की जाय निबल नहिं जोर रे ।
परिहां मुक्तराम अब गहो सबल की ओट रे ॥ ४ ॥

चिंतावणी को अंग

ऊंडी नींव दिराय करै महल मालिया।
चूनों कली ढलाय झरोखा जालियां॥
रेसम हंदी डोर ढोलियां सोवते।
परिहां मुक्ता राम भजन विन जाय नर रोवते॥ १॥

नख वेसर मोती लाल मुखातां बोर रे।
हार डोर सिंगार सीस पर खोल रे॥
खान पान सुख स्वाद नवला नेह रे।
परिहां मुक्ता राम नाम विन मार जम देह रे॥ २॥

नोवत नाद निसाण चलत है लार रे।
चढ़ खासैं सुखपाल होइ असवार रे॥
हस्ती घोड़ा रथ बैठते राज रे।
परिहां विना भगति भगवान सबे वेकाज रे॥ ३॥

रेसम हंदी सेज तास पर सोवणां।
वो लग ऊभा खड़ा जा दिस जोवणां॥
सहनायां करनाल कलावत गावणां।
परिहां यह सब ऊभा महल मसाण बसावणां॥ ४॥

जाय मसाणां वास किया चौगान में।
सुत वधु परिवार वाद धन धाम में॥
पाप पुण्य संग दोय चल्या नर लार रे।
परिहां विना भगती भगवान खाय जम मार रे॥ ५॥

जीव दुखी वहु होइ अन्त की बेर रे।
जम घालै गल पास ले जावे टेर रे॥
ता कारण तूं चेत हेत करि साध सूं।
परिहां मुक्तराम संग साध मिटाया व्याधि सूं॥ ६॥

पाप करत दिन रेण सुकृत कुछ नांहि रे।
झूठ कपट पाखंड सदा मन मांहि रे॥

मिनखा देही पाय कहो तैं क्या कियो ।
परिहां विना भगति भगवान ध्रिक ताको जियो ॥ ७ ॥
जंगल होसी वास खाक करि डार सी ।
विनां भजन भगवान पकड़ जम मारसी ॥
क्या राजा राणा रंक बादशाह भूपरे ।
परिहां विना भज्यां एक राम सहै दुख पूर रे ॥ ८ ॥

अग्यानी को अंग

जम द्वारै नर जाय राम नहिं गाइ है ।
भरम करम विध धरम आन मत ध्याइ है ॥
करत पाप बहु खोट आन की ओट रे ।
परिहां मुक्तराम विन भजन खाई जम चोट रे ॥ १ ॥
जम मारै सिर चोट ओट विन राम रे ।
राम करम किया भरपूर अष्ट ही जाम रे ॥
हावस हूवस करत फिर्यो घर धंध रे ।
परिहां मुक्तराम विन भजन पड़ै नरक अंध रे ॥ २ ॥
गोता खावै जीव सीव नहीं सुमरिया ।
गुण इन्द्री बहु करम जिन्हूँ नहीं दुमरिया ॥
जगत करम बहु भर्म उठाया अंध रे ।
परिहां मुक्तराम विन भजन पड़े जम फंद रे ॥ ३ ॥
राम जनां कूं देख मूढ़ मुख मोड़िया ।
सुत वनिता परिवार आन हित दोड़िया ॥
मिनख जनम कूं पाई राम नहिं जाणिया ।
परिहां मुक्तराम विन भजन जमूं ले ताणिया ॥ ४ ॥
मिनखा देही पाय नाम नित लेत है ।
अपना वित्त उनमान दुर्बल कूं देत है ॥

राम जनां अधिकार जनां सूं हेत रे ।
परिहां मुक्त राम वे जान क लावा लेत रे ॥ ५ ॥
नर देही को लाभ भजे नित राम कूं ।
उर सुकृत की बाण मोह नहीं दाम सूं ॥
बरते सहज सुभाय चाहि नहीं बाम कूं ।
परिहां मुक्तराम वे जान लहे सुख धाम कूं ॥ ६ ॥

दया को अंग

दयावंत दातार मुक्ति में वासरे ।
सब घट देखे राम को रे नहीं नासरे ॥
तजै जीव की घात सदा कुसलात रे ।
परिहां मुक्तराम दया हीन नर होय पल घातरे ॥१॥
घात करै पर जीव सीव नहीं जाणियो ।
निरदावै बन रहे मार ताहि आणियो ॥
मार करै ताहि मांस स्वाद कर खाय रे ।
परिहां लेखो लेसी सीव नरक गत जायरे ॥२॥
आप हरि रुघनाथ बालि बदलो दियो ।
किशन देव बन मांहि बालि हतन कियो ॥
धर ईश्वर अवतार क या भव मांहि रे ।
परिहां बदलो दियो साच भूठ यो नांहि रे ॥३॥
दया विचारो जीव सीव सब मांहि रे ।
नीली हर्‍यो फल फूल तोड़जे नांहि रे ॥
करो जीव प्रतिपाळ जाल जम की गलै ।
परिहां मुक्ता दया धरम उर धार ताप तन की टलै ॥४॥
पर जीवां कर घात मारि कै खात है ।
चढ़ै पाप सिर भार मार जम लात है ॥
तोड़े पान र फूल चढ़ावै जड़ कूं ।
परिहां मुक्ता सर जीवत करि हानि लगे कर्म कंड सूं ॥५॥

दोजग जावै अंध धंध नाना करै ।
आन मनावे देव ध्यान हरि ना धरै ॥
डरे नहीं मन मांय जीव हिंसा करै ।
परिहां मुक्ता बिना भज्यां भगवान जाय नरकां परै ॥६॥

भ्रम विध्वंस को अंग

भरम मांहि संसार भूलि गया राम कूं ।
पूजे पत्थर देव सेव जड़ धाम कूं ॥
सरजीवत कूं तोड़ि चढ़ावै जड़ कूं ।
परिहां बिन सतगुरु के ग्यान अकल नहि मूढ़ कूं ॥ १ ॥

पूजे अंधी लोई देवता गार का ।
कह धागो धात वार और जड़दार का ॥
तामें नहीं जीव सीव कहां पाव ही ।
परिहां मुक्ता भजन विना नर नारि वाद ही जावहीं ॥ २ ॥

खोवे आव सब बादक तीरथ भटकणां ।
जण जण को होई दास मन नहीं अटकणां ॥
भटकै देस विदेस चढ़े कहा हाथ रे ।
परिहां मुक्ता राम भजन विन नहीं कुछ साथ रे ॥ ३ ॥

भजन किया जन सोय लही सुख धाम जी ।
आन भरम तजि दूरि भज्यो इक राम जी ॥
राम विना सब और सकल धरम कूर है ।
परिहां मुक्ता राम भज राम सकल भरपूर है ॥ ४ ॥

रेखता— परचा को अंग

राम हि राम निज नाम रसना रट्या कट्या सब कर्म तन मन्न केरा ।
द्वितीय ध्यान निज नाम कंठ में जागिया भागिया भरम सब भूठ फेरा ॥

तृतीय ध्यान निज नाम हिरदै गयो भया जहाँ चांदणा तिमर न्हास्या ।
चतुर्थ ही ध्यान उर नाभि मधि जाइके अष्ट ही कंवळ मन भंवर परस्या ॥
भँवर जहाँ मन्न मस्ताक अति होयकै पिछम के घाट होई गिगन बैठा ।
गिगन के गोप अरु जोप मोजां करै सुरति मन भँवर होई सेव सैठा ॥
सुरति सवद मन भँवर होई परसिया दरसिया सुक्ख मिलि सीव सागो ।
मुक्त ही राम नह काम होई सुरति संग राम वर परस के दुःख भागो ॥
गंग जहां जमन अरु सुरसती मेल होई खोई है कर्म तन मन्न केरा ।
त्रिवेणी न्हाइ के मन निरमल भया गया अब ब्रह्म घर किया डेरा ॥
गिगन का गोप पर जोप मोजां करै धरै जहां ध्यान नहीं तार टूटे ।
मुक्त ही राम नर काम मिलि ब्रह्म स्यूं सुख आनन्द नित सुरति लूटे ॥

सवैया

(१)

नूर लह्यो परमातम को जब आतम ब्रह्म सबै दरसाया ।
सूक्ष्म स्थूल सबै सचराचर व्यापक नूर निरञ्जण राया ॥
ज्यूं रवि ज्योत प्रकाशक कुंभ में है घट मांहि ज्यूं दूरि रहाया ।
दास मुकत्त कहे इम टेर के ब्रह्म को रूप अरूप समाया ॥

(२)

राम निरंजन आप विराजत बाजत कोट अनंत जु बाजा ।
कोट अनंत जहां सूर तपै जहां क्रोड तेतीस सिरे सिरजाता ॥
कोटि अनंत जहां सन्त विराजत साधव ध्यान सदा सुख साजा ।
दास मुकन्त मुकत्ति कूं पावत ध्यावत राम सरै सब काजा ॥

सवैया विरह

चंद की चाह चकोर करै पुनि दीपक ज्योति चहे जु पतंगा ।
चात्रग मोर चहे घनघोर कुं स्वाति की बूंद कुं सीप चहे जुं ब्तंगा ॥
प्रीतम होय ज्यों परदेस पधारत नारी को सुक्ख कबहु होय अंगा ।
मुक्त ही राम विलाप करै नित आप बिना नहीं लागत रंगा ॥

श्री संग्रामदासजी महाराज के कुण्डलिये

(१)

रामचरण महाराज रा ए देखो निसांण ।
दशौं दिशा में रूप रह्या राम भजन रे पांण ।
राम भजन रे पांण कठिण कल जुग रे मांही ।
कहे दास संग्राम हलायां हलके नांहीं ।
असुर अनेकां पचमुवा कहत न को प्रवान ।
रामचरण महाराज का ए देखो निसांण ॥

(२)

रामचरण महाराज को कठिण त्याग वैराग ।
सूतो सिंह जगावणो उड पलीता आग ।
उड पलीता आग धार खांडा की बहणों ।
काजल का घर मांहि ऊजला कपड़ा रहणों ।
संग्रामदास जन राम का लागण दे नहीं दाग ।
रामचरण महाराज रो कठण त्याग वैराग ॥

(३)

कहे दास संग्राम गुरां की महिमा भारी ।
कींकर बरणी जाय जीव बुद्धि है म्हारी ।
धूजै है म्हारी घणी सुण सज्जन इण घाट ।
तो लौं किण रो ब्रूहं मैं सो हो अगुण को थाट ।
सो हो अगुण को थाट धणी निर्गुण औतारी ।
कहे दास संग्राम गुरां की महिमा भारी ॥

(४)

धिन मुरली महाराज जकां या वाणी बरणी ।
भवसागर को नाव मुकति की यह है निसरणी ।

है निसरणी मुकति की दाता दया विचार ।
सुण सुण ने होसी वणां संग्राम दास कहे पार ।
संग्राम दास कहे पार जहां लग है या धरणी ।
धन मुरली महाराज जकां या वाणी वरणी ॥

(५)

कहे दास संग्राम राम रसरा ल्यो गटका ।
मत चूको या समे च्यार दिन रा है चटका ।
ए चटका चूक्यां पछे मिलन वारं वार ।
लख चौराशी जूण में दुख रो वार न पार ॥
दुख रो वार न पार वणां मारोला भटका ।
कहे दास संग्राम राम रस रा ल्यो गटका ॥

(६)

कहे दास संग्राम मार मत रे मन भटका ।
मिनष कियो म्हाराज राम रस रा ल्यो गटका ।
गटका ल्योनी रात दिन ग्यान गोपड़े वैस ।
इण जेड़ी दूजी नहीं तीन लोक में ऐस ।
तीन लोक में ऐस जाय दिन दीयां चटका ।
कहे दास संग्राम मार मत रे मन भटका ॥

(७)

जनम जनम में कीयो करज है माथै करड़ो ।
मिनष कियो म्हाराज काटि दे क्यूं नहीं वरड़ो ।
यो वरड़ो करड़ो घणो कींकर कटै वताय ।
निसबासर संग्राम कहै राम धणी ने ध्याय ।
राम धणीन ध्याय बाळदे खांवद खरड़ो ।
जनम जनम में कीयो करज है माथै करड़ो ॥

(८)

कहे दास संग्राम म्हने यो इचरज आवै।
मिनष कियो म्हाराज भळे तूं कांई चाहै।
कांई चाहै है भळै यूं तो म्हने बताय।
राम राम कहे रात दिन तो जनम मरण मिट जाय।
जनम मरण मिट जाय वास अमरापुर पावे।
कहै दास संग्राम म्हने यो इचरज आवे॥

(६)

मिनषा तन दीन्हों तनै भौंदू भजरे पीव।
बैठो क्यों संग्राम कहे ऊंडी देने नींव।
ऊंडी देने नींव हिया फूटेड़ा गहला।
कर आगानी ठौड़ अठै कुंण रहवण देला।
चौराशी लख जूण में रुलियो फिर सी जीव।
मिनषा तन दीन्हों तनै भौंदू भजरे पीव॥

(१०)

कहै दास संग्राम ऊंट मत कर अरड़ाटा।
विना गुन्हे ही डंड लाट तो करड़ा लाटा।
करड़ा लाटा लाटतो कह्यो मानतो नांहि।
बड़ा बड़ा दुख देखसी जनम जनम के मांहि।
जनम जनम के मांहि करम कीन्हा है माठा।
कहै दास संग्राम ऊँट मत कर अरड़ाटा॥

(११)

कहै दास संग्राम भजन करतां होइ दौरा।
चौराशी लख जूंण भुगततां होड्यो सोरा।

सोरा होज्यो भुगततां धणी सहोला मार।
गधा होवोला ओडरा माथै लदसी भार।
माथै लदसी भार रेतरा भर भर बोरा।
कहै दास संग्राम भजन करतां होइ दौरा॥

(१२)

कहै दास संग्राम राम ने भूलूं कींकर।
भूल्यां भूंड़ी होय माजनो जावे बीखर।
बीखर जावे माजनों द्यो गधा री जूंण।
टांकी मोरां रे बिचै ऊपर लादे लूंण।
ऊपर लादे लूंण धणी कूं बी ...... जीडर।
कहै दास संग्राम राम ने भूलूं कींकर॥

(१३)

कहै दास संग्राम गजब ए मत कर गहला।
मुसै पराया माल बळद ह्वै ह्वै ने बहला।
बहला ह्वै ह्वै ने बळद धणी सहोला मार।
टूटै खांधे खांचही भूखां मरतो भार।
भूखां मरतो भार थने हूँ कहद्यूं पहला।
कहै दास सग्राम गजब ए मत कर गहला॥

(१४)

हिरणाकुश मुजरो कियो रावण कियो जुहार।
संग्राम दास कह देख ल्यो अजे खात हैं मार।
अजे खात हैं मार बड़ां को वैरन छूटै।
बीत गया जुग चार नकल कर करने कूटै।
केड़ा इतवारां अजें कह्या जात है लार।
हिरणा कुश मुजरो कियो रावण कियो जुहार॥

(१५)

मिनष मिनष सब सारसा जांणै लोक गिंवार ।
पापी पशु समान हैं भजनीक पुरुष औतार ।
भजनीक पुरुष औतार जका तो मुकति सिधासी ।
पापी पड़सी नरक मार जम दुवारे खासी ।
एतो फरक संग्राम कह सुण लीज्यो नर नार ।
मिनष मिनष सब सारसा जाणै लोक गिंवार ॥

(१६)

कहै दास संग्राम धणी चाहीजे पूठी ।
शिर समर्थ रा हाथ वांदरां लंका लूटी ।
लंका लूटी वांदरां सबल धणी रे पांण ।
अरजुन तो बोहीज हो वैरा वे हीज बाण ।
वेरा वे हीज बांण गोपियां काबां लूटी ।
कह दास संग्राम धणी चाही जे पूठी ॥

(१७)

आन निमत्त तो सहंस मण राम निमत कण एक ।
पंडवां रा जिग में हुई संग्राम दास कहै देख ।
संग्राम दास कहै देख जगत सगलो जीमायो ।
पांच ग्रास रे पांण शंख भजनीक बजायो ।
राजा परजा देवता लजत भयो सब भेष ।
आन निमत तो सहंस मण राम निमत कण एक ॥

(१८)

कह दास संग्राम करम गति जाइन जांणी ।
परणी सोलह सहंस गवीजे राधा राणी ।
राधा राणी गावजे सीता ने बनवास ।
सकल अवनि रा ईश ने कियो डूमरो दास ।

कियो डूमरो दास नीच घर भरियो पांणी ।
कहै दास संग्राम करम गति जाइ न जांणी ॥

(१६)

कहै दास संग्राम सुणों हो सज्जन भ्राता ।
दूजा किसी बिनाद बडा दुख दीठा माता ।
माता दुख दीठा जकै सुण्यां न जावे कान ।
बेटी राजा जनक की पति जिनके भगवान ।
पति जिनके भगवान और रिध सिध री दाता ।
कहै दास संग्राम सुणो हो सज्जन भ्राता ॥

(२०)

कहै दास संग्राम सुणो हो सज्जन मीता ।
यो शबद रटो दिन रात कह्यो लछमण ने सीता ॥
लछमण ने सीता कह्यो अरजुन ने भगवान ।
पारबती ने शिव कह्यो धरो रात दिन ध्यान ॥
धरो रात दिन ध्यान जाय है निश दिन बीता ।
कहै दास संग्राम सुणो हो सज्जन मीता ॥

(२१)

सुण हाकम संग्राम कह आंधो मत होई यार ।
दो दो नेतर सबन के तेरे चहिए च्यार ।
तेरे चहिए च्यार दोय देखण कूं बारै ।
दोय हिया के मांहि जकां सूं न्याव निहारै ।
जस अपजस रहसी अखै समै बार दिन चार ।
सुण हाकम संग्राम कहै आंधो मत होई यार ॥

(२२)

बकरियो वे वे करै करै हिरणियो डाड ।
भेडां तो भभाड़ा करै नहीं किसी के गाढ़ ॥
नहीं किसी के गाढ़ वड़ा पापी हितीयारा ।

कीकर बहै हाथ गरीबां ऊपर थारा।
बूमैलां बाबो थनै दे माथा में फाड़।
बकरियो वेवे करै करै हिरणियो डाड ॥

(२३)

भांग तमाखू छूंतरा चोड़े भाले खाय।
तोबा रे तोबा तनै हाय हाय रे हाय।
हाय हाय रे हाय खोय दी किरीया सारी।
साहिब रे दरबार मार भुगतेला भारी।
ऊंचे कुल आचार में लागी थारे लाय।
भांग तमखू छूंतरा चोडे भाले खाय ॥

(२४)

कहै दास संग्राम सुणो हो सज्जन मिंता।
सारी वात सुजान थने क्यूं व्यापै चिंता।
क्यूं व्यापे चिता थनै सुख सागर सूं सीर।
राम भजन विन दिन गया वे सालै है वीर।
वे सालै है वीर आइ जावे जब चिंता।
कहै दास संग्राम सुणो हो सज्जन मिंता ॥

(२५)

करणी ने करतूत को कह्यो न आवे पार।
संग्रांम दास कह मैं सुणी या सारां में सार।
या सारां में सार छाण ने पीवे पाणी।
गाढो गलणो धार करै जल में जीवाणी।
टोपो ही ढाले नहीं धरती विना बिचार।
करणी ने करतूत को कह्यो न आवे पार ॥

(२६)

जीवां रो जूंहर करे परभाते ही जाय।
कांई है इनमें नफो यूं तो म्हने बताय।

थूं तो म्हने बताय पड़े है टोटो भारी ।
गाढो गलणो राख बेवड़ो चोखो लोटो ।
चतुराई सूं छांण ने संग्राम दास कहै न्हाय ।
जीवां रो जूंहर करे परभाते ही जाय ॥

(२७)

अण गळ पांणी में पड़े परभाते ही जाय ।
मारे जीव असंख ही पिछै रोटियां खाय ।
पिछै रोटियां खाय-कुबध या कूंण सिखाई ।
नव लख जात सूं वैर पड़ै है सुण रे भाई ।
बाको लेखो बूझसी तब सुगतेला किण भाय ।
अण गल पाणी में पड़े परभाते ही जाय ॥

(२८)

साहिब के चोथो बरण छोटो बेटो जांण ।
हाथ लगावे कांम रे तो सारा करै बखांण ।
तो सारा करै बखाण पिता ने लागै प्यारो ।
मोटो करै न काम कूट ने कर दे न्यारो ।
तातैं छोटा होइ रहो मोटा पण में हांण ।
साहिब के चोथो बरण छोटो बेटो जांण ॥

(२९)

संस्कृत संग्राम कहै है साठी को कौर ।
तिरसां मरता यूं मरो बिन बरतन बिन डौर ।
बिन बरतन बिन डौर ग्यान जल ऊंडो मोळा ।
सत पुरुषां रा सबद खाय दरियाव हबोळा ।
राम भजन बिन गति नहीं भल च्यारों वेद ढंढौर ।
संस्कृत संग्राम कहै है साठी को कौर ॥

(३०)

बडौ मिनख बाजै थनै क्यूं ही कह्यौ न जाय ।
कियो जाबता वास्तै खोस खोस ने खाय ।

खोस खोस ने खाय जाव देणी है मरने ।
आयो है किण काम जाय है कांई करने ।
बूझैलो बावो थनै भुगतेला किण भाय ।
बडौ मिनख वाजै थनै क्यूं ही कह्यौ न जाय ॥

(३१)

कहै दास संग्राम घणौ बाजै है जाडौ ।
ओल्हे आसण करो गूदड़ो राखो गाढौ ।
गाढो राखो गूदड़ो लाग जाइला टाड ।
खोटी हो ला भजन सूं थांरो यो ही लाड ।
थां रो योही लाड पड़ेला भारी खाडौ ।
कहै दास संग्राम घणौ बाजै है जाडौ ॥

(३२)

पट सासां की एक पल घड़ी एक पल साठ ।
साठ घड़ी का पहर का संग्राम दास कहै आठ ।
संग्राम दास कहै आठ सांस सौ वरसां ताई ।
हूआ अरसी किरोड़ लाख चौवीस घटाई ।
रामभजन बिन खो दिया अकल विहूंणी टाट ।
पट सासां की एक पल घड़ी एक पल साठ ॥

(३३)

असो वरस की आयु में सोवत गई चालीस ।
बारा वरस बालापण गई बाकी आठ र बीस ।
बाकी आठ र बीस पछाड़ी वाह रे बूढौ ।
सोलह में संग्राम कहै तिरी ने भावे बूडौ ।
तातें भजिये राम कूं संत चरण धर सीस ।
असी वरस की आयु में सोवत गई चालीस ॥

(३४)

सती नार शूरा जणै वड भागण दातार ।
भगतिवान लिछमी जणै या सारां में सार ।

या सारां में सार एक पापां री पूरी।
काछ लिपटा चौर जणै गलकट गढ सूरी।
संग्रामदास साची कहै या में फेर न सार।
सती नार सूरा जणै वड़भागी दातार।

(३५)

मीरां जनमी मेड़ते परणाई चित्तौड़।
राम भजन परताप सों सकल सिष्टी शिर मौड़।
सकल सिष्टी शिर मौड़ जगत सारै ही जानी।
आगै हुई अनेक़ फिर वायां ने राणी।
ज्यां री तो संग्राम कह ठीक न कोई ठौड़।
मीरां जनमी मेड़ते परणाई चित्तौड़॥

(३६)

हरिचंद सत संग्राम कहै करड़ो घणो निराट।
कठिण हिया को सांभले छाती वजर कपाट।
छाती वजर कपाट नरप दुख दीठा भारी।
धर हड़ियो आकास लगी धर धूजण सारी।
सूरज वंस उजालियो मंहि पतेरे पाट।
हरिचंद सत संग्राम कहै करड़ो घणो निराट॥

(३७)

वाळूं वा रसना परी कवून सुमरे राम।
संग्राम दास किण कामरो मुख में आळो चाम॥
मुख में आळो चाम काट न्हांखो नी दूरी।
स्वाद वाद सनेह कपट करवा ने सूरी।
पकड़ी रहै न पापणी निशदिन वकै निकाम।
वाळूं वा रसना परी कवून सुमरै राम॥

(३८)

नर बंदर संग्राम कहै दोन्यूं एकण भाय।
यो माया मगन है यो खुशी गूलरां खाय।

यो खुशी गूलरा खाय अभागी अनरथ कीन्हो।
उण हीरो दियो वगाय इण हरि नाम न लीन्हो।
पूंछ नहीं या कसर है दीठौ दिल निरताय।
नर वंदर संग्राम कहै दोन्यूं एकण भाय॥

(३९)

राम भजन विन नर पशु खोड़ीला री खांण।
वारै सींगर पूंछ है ए मोडा वांडा जांण।
मोडा वांड़ा जाण वड़ा रुळियार कहावै।
घणी सहेला मार धान खड़ भेलो खावै।
साच कही संग्राम थे साहिब जी री आंण।
राम भजन विन नर पशु खोड़ीला री खांण॥

(४०)

कहैदास संग्राम सुणौ सज्जन वड़भागी।
गुरु कीजे भजनीक कनक कांमणि रा त्यागी।
त्यागी कांमणि कनक का जनम मरणदे खोय।
फिरै जगत में जाचता जासूं भलौ न होय।
जासूं भलौ न होय लगन माया सूं लागी।
कहै दास संग्राम सुणौ सज्जन वड़भागी॥

(४१)

सुण साजी संग्राम कहै है ऊको ऊ सेर।
देता लेतां पाव को क्यूं कर कीन्हो फेर।
क्यूं कर कीन्हो फेर कसर राखी नहीं काई।
तोबा बार हजार ऐसी तूं करै कमाई।
साहिब लेखो बूझसी जब लेसी ऊंधौ टेर।
सुण साहजी संग्राम कहै है ऊको ऊ सेर॥

(४२)

कहै दास संग्राम धणी है सिरजन हारो।

बीजाने कहै वले माजनो मूरख थांरो ।
मूरख थांरो माजनो खर शूकर सामान ।
अणी डरी ल्यूं जीभ री काटूं दोन्यों कान ।
काटूं दोनों कान इसो लागे है खारो ।
कहै दास संग्राम धणी है सिरजन हारो ॥

(४३)

आन देवरा दास सुणो सब ही नर नारी ।
हरि नाम ने छोड़ पूंछ पकड़ी अज्या री ।
अज्या री पकड़ी हमें क्यूं कर होवोला पार ।
बह जावौ भव सिंध में इण में फेर न सार ।
इण में फेर न सार करी थे भोलप भारी ।
आन देवरा दास सुणो सब ही नर नारी ॥

(४४)

आन देवरा दास घणौ दीखेलो भूंडो ।
पति सांमी दी पूठ कियो जारां दिस मूंडो ।
जारां दिस मूंडो कियो पति रे साम्ही मूंठ ।
जनम जनम करसी थनै संग्रामदास कहै ऊँट ।
संग्रामदास कहै ऊँट कूटसी चढ चढ ढूंढो ।
आन देवरा दास घणौ दीखैलो भूंडो ॥

(४५)

कहै दास संग्राम सुण हे धन री धणीयांणी ।
कर सुकरत भज राम धोय कर बहते पांणी ।
बहते पांणी धोय कर क्रिपा करी म्हाराज ।
करल्यो कारज जीव रो कियो जाय तो आज ।
कियो जाय तो आज काल्ह की नाइ न जाणी ।
कहै दास संग्राम सुण हे धन री धणीयांणी ॥

(४६)

कहै दास संग्राम धणी सुण रे माया रा।
कर सुकृत भज राम भला दिन आया थारा।
आया थारा दिन भला चूक मती या वार।
धन धरियो रह जाइला तन है जावे छार।
तन है जावे छार धोय कर वहती धारा।
कहै दास संग्राम धणी सुण रे माया रा॥

परिशिष्ट

[१]

राम सनेही

संवत् १८०० के लगभग सन्त रामचरण ने राम सनेहियों का पन्थ चलाया। इनकी वाणियां और पद हैं। इस पन्थ के तीसरे गुरु दूल्हा राम के दस हजार पद हैं और चार हजार दोहरे हैं। इनके उपासना भवन "रामद्वारा" कहलाते हैं। वहां केवल भजन गाते हैं और उपदेश देते हैं। इस पन्थ के रामद्वारे राजपूताने में ही हैं। शाहपुरे में ही इनका मुख्य स्थान है, परन्तु जयपुर उदयपुर आदि में भी रामद्वारे हैं। इस पन्थ में साधु ही साधु हैं। गृहस्थ शायद ही कोई हों।

— हिन्दुत्व; पृष्ठ ७३६; श्री रामदास गौड़।

[२]

शहर के बाहर कुण्ड दरवाजे के पास ही रामस्नेही साधुओं का "रामद्वारा" (मठ) है। यह रामस्नेही साधुओं के फिरके में एक प्रसिद्ध केन्द्र है। इस रामस्नेही सम्प्रदाय के संस्थापक महात्मा रामचरण नाम के साधु थे जो लगभग १५० वर्ष हुए राजा रामसिंह के समय में हुए थे। ये जाति के विजयवर्गी (बीजावरगी) बनिये थे और सं० १७७५ माघ सुदि १४ शनिवार (ई० सन् १७१९ ता० २३ जनवरी) को जयपुर राज्य के मालपुरा स्थान के पास सोडी में उत्पन्न हुए थे। सन् १८०८ (ई० सन् १७५१) में ये साधु सन्तदास के शिष्य कृपारामजी के चेले होकर शाहपुरा में जा बैठे और वहीं सं० १८५५ वैसाख वदि गुरुवार (ई० सन् १७९८ ता० ५ अप्रेल) को ये रामशरण हुए।

इस सम्प्रदाय की मुख्य गद्दी शाहपुरा में है। परन्तु इनकी शाखाएं राजपूताना, मालवा और भारत में कई जगह फैली हुई हैं। महन्त का उत्तराधिकारी शाहपुरा नरेश की मंजूरी से और प्रजा की राय से उसके चेलों में से ही चुना जाता है। रामस्नेही लोग मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं

करते और उनका धर्म विश्वास "राम" नाम रटना या माला फेरने में है। ये साधु अपनी दाढ़ी मूंछ व सिर सदा मुंडाये रहते हैं और ये प्रायः गेरुए वस्त्र पहनते हैं। इनमें से कई लोग तो लंगोटी के सिवाय कोई वस्त्र नहीं पहनते। ये भिक्षा वृत्ति से ही गुजारा करते हैं और विवाह नहीं करते।

शाहपुरा राजधानी में नहर सागर तथा उम्मेद सागर नाम के दो विशाल तालाब हैं और खास इमारतों में राजमहल, नगर निवास, उम्मेद निवास, सरदार निवास, वख्त विलास, आर्य समाज मन्दिर, राम द्वारा और जैन मन्दिर हैं।

—राजपूताने का इतिहास, पृष्ठ ५५४-५५५; श्री जगदीश सिंह गहलोत

[३]

शाहपुरे का रामस्नेही पन्थ रामचरण जी ने चलाया है। इनके अनुयायी निर्गुण परमेश्वर को राम के नाम से मानते हैं और उसी का ध्यान करते हैं। ये मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं रखते। रामस्नेही साधु रामद्वारों में रहते हैं और भिक्षा मांग कर अपनी उदर पूर्ति करते हैं। ये कपड़े नहीं पहनते, सिर्फ लंगोट बांधे रहते हैं और ऊपर से चादर ओढ़ लेते हैं। पहले कोई-कोई साधु नंगे रहते थे, जो परम हंस कहलाते थे। ये प्रायः तूम्बी, लंगोट, चादर, माला और पोथी के सिवा कोई दूसरी वस्तु अपने पास नहीं रखते और न किसी से रुपया-पैसा लेते हैं। ये विवाह नहीं करते। किसी उच्च वर्ण के लड़के को अपना चेला मूंड लेते हैं और जो चेला सब से पहले मूंडा जाता है उसीका गुरु की गद्दी का अधिकार होता है। बड़े चेले को छोटे चेले नमस्कार करते हैं और गुरुवत् समझते हैं। ये साधु रामद्वारों में रहते हैं, जहां कथा बांचते तथा भजन गाते हैं। यों तो सभी जातियों के लोग इन्हें पूज्य दृष्टि से देखते हैं, पर अग्रवालों तथा महेश्वरियों की भक्ति इनके प्रति विशेष है। ये रामस्नेही साधु शाहपुरा को अपना गुरुद्वारा समझते हैं जहां प्रत्येक वर्ष फाल्गुन सुदी १ से चैत्र वदी ६ तक मेला भरता है।

—राजस्थान भाषा और साहित्य; पृष्ठ ३०३ से ३०५;
डा० मोतीलाल मेनारिया

(४)

रामचरण जी की कविता बहुत सरल और स्वाभाविक है। इनकी भाषा प्रवाह-युक्त तथा विषयानुकूल है और उस पर राजस्थानी की पूर्ण छाप है। छन्दो-भंग इनकी कविता में कुछ विशेष दृष्टिगोचर होता है। इनके सिवाय विषय वस्तु की पुनरावृत्ति भी उसमें बहुत हुई है। लेकिन उसमें शक्ति और सचाई दोनों विद्यमान हैं और उसके इन्हीं दो गुणों ने इनके पन्थ को अभी तक जीवित रखा है।

— राजस्थान का पिंगल साहित्य; पृष्ठ २०४; डॉ० मोतीलाल मेनारिया।

[५]

इनके अनुसार सर्वश्रेष्ठ साधना निर्गुण राम का स्मरण है और ऐहिक सुख तथा ईश्वर प्राप्ति प्रेम के आधार पर ही संभव है। इनके अनुयायी अहिंसा के महत्त्व पर अधिक जोर देते हैं और उनकी कई एक बातें जैन धर्मानुयायियों के समान दीख पड़ती हैं। सन्त रामचरण ने लगभग दो दर्जन छोटे-बड़े ग्रन्थों की रचना की, जिसका एक बृहत् संग्रह 'अणभै वाणी' नाम से प्रकाशित है। इनकी रचनाओं के अन्तर्गत विशेष ध्यान गुरु-भक्ति, साधु-महिमा, सादे जीवन, सदाचरण व भक्ति पर दिया है। इनकी प्रवृत्ति किसी विषय का स्पष्ट विवरण देने की ओर अधिक जान पड़ती है और ये उसे पूरी शक्ति के साथ व्यक्त करते हैं। जान पड़ता है इन्होंने प्रत्येक बात का अध्ययन मनोयोगपूर्वक किया है और उसे स्वानुभूति के बल पर बतला रहे हैं। इनकी रचनाओं की भाषा प्रधानतः राजस्थानी है, किन्तु इनकी वर्णन शैली बहुत सरल और प्रसादपूर्ण है। इनमें आलंकारिक भाषा के प्रयोग प्रचुर मात्रा में नहीं मिलते और उनमें पहेलियों की भी भरमार है।

—सन्त काव्य; पृष्ठ ५०५–५०६; श्री परशुराम चतुर्वेदी

[६]

संत रामचरन का एक नाम केवल सन्तराम भी प्रसिद्ध है।······ मत— सन्त रामचरन ने सं० १८२५ में राम सनेही सम्प्रदाय की स्थापना

की थी। इन्हें अपने बचपन से ही देवी देवताओं की पूजा पसन्द न थी, जिस कारण इन्हें कभी-कभी लोग तंग भी किया करते थे। पीछे दीक्षित हो जाने तथा सत्संग करने एवं चिन्तन में कुछ दिनों तक अपना समय व्यतीत करने के उपरान्त इनके उक्त प्रकार के संस्कार और भी दृढ़ होते गए और क्रमशः इन्होंने अपने नवीन मत की स्थापना के समय तक इन बातों के सम्बन्ध में कुछ नियम स्थिर कर लिए। कहते हैं कि इनके ऊपर 'रामावत' वा 'रामानंदी सम्प्रदाय' का पूर्ण प्रभाव पड़ चुका था। किन्तु अपनी तपस्या के अनन्तर इनके विचारों में बहुत कुछ परिवर्तन आ गए।

इनके मतानुसार परमात्मा निराकार है। वे कहते हैं कि

'निस्प्रेही निर्वैरता निराकार निरधार।
सकल सृष्टि में रमि रह्यो ताको सुमिरन सार।
ताको सुमिरन सार राम सो वाणि भणीजै, इत्यादि।

वह सर्व शक्तिमान भी है और अकेला ही सृष्टि स्थिति एवं प्रलय का विधायक है। जगत उसके स्वभाव का प्रतीक है। उसका वास्तविक भेद किसी को भी ज्ञात नहीं। परन्तु इतना अनुमान किया जा सकता है कि जीवात्मा भी उसी का अंश रूप है तथा बिना उसकी इच्छा के कुछ भी करने में असमर्थ है। अतएव, राम जो भी करता है उसमें हम सबको प्रसन्न रहना चाहिए। .... इनके पन्थ वालों की मुख्य साधना उस निर्गुण राम का नाम स्मरण है और इसी को वे लोग मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ अथवा एकमात्र साधन मानते हैं। तिदिन प्रातःकाल, मध्याह्न एवं सायंकाल में उस राम की आराधना नियमपूर्वक किया करते हैं और कभी कभी उनके यहाँ नमाज की भांति ५ वार भी प्रार्थना की जाती है।

प्रेम साधना— सन्त रामचरण ने अपने मत में गुरु को बड़ा महत्व प्रदान किया था। ये अपने गुरु को स्वयं भगवान का ही प्रतिनिधि मानते रहे।

"राममयी गुरु जानिये, गुरु मँह जानू राम।
गुरु मूर्ति को ध्यान उर, रसना उचरे राम।।"

तदनुसार इनके अनुयायी सदा गुरु का ही ध्यान किया करते हैं और उसकी अनुपस्थिति में उसके नख, बाल अथवा वस्त्रादि को भी दंडवत् करते हैं। इस पंथ की स्त्रियां तो गुरु को अपने पति से भी बढ़कर पूज्य व प्रतिष्ठित समझा करती हैं। संत रामचरन ने प्रेम साधना को भी अपने यहाँ एक प्रमुख साधन माना था और उनका कहना था कि प्रेम की ही सहायता से हमें ईश्वर की प्राप्ति एवं सामाजिक सुख दोनों संभव हो सकते हैं। वास्तव में प्रेम को महत्व प्रदान करने के ही कारण इनके पंथ का नाम 'राम सनेही सम्प्रदाय' हो गया। ....

—उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा; पृष्ठ ६१५, ६१६; श्री परशुराम चतुर्वेदी।

[७]

—ये अपने गले में माला और ललाट पर श्वेत रंग का तिलक धारण करते हैं। इनके साधु लोग भगवा पहनते हैं, काठ के कमंडल से जल पीते हैं और मिट्टी के बर्तनों में भोजन करते हैं, इन्हें जीव हत्या से इतना परहेज है कि दीपक जला कर उसे प्रायः ढक दिया करते हैं ताकि कोई कीड़ा न मर जाए और चलते समय बड़ी सावधानी से पृथ्वी पर पैर रखते हैं। आधे आषाढ़ से आधे कातिक के समय तक ये अत्यन्त आवश्यक कार्य पड़ने पर ही घर से बाहर निकलते हैं, क्योंकि उस समय कीड़ों के कुचले जाने की आशंका रहा करती है। ये रात को न खाते हैं और न पानी पीते हैं। साधु वा बैरागी बनते ही ये लोग 'वंदीहो' कहलाते हैं और नंगे रहा करते हैं और कुछ मौनी होते हैं, जो वाक् संयम की साधना के कारण बहुत दिनों तक कुछ भी नहीं बोलते। गृहस्थ 'वंदीहो' वा 'मौनी' नहीं बन सकते। इस पंथ में किसी भी जाति के लोग दीक्षित हो सकते हैं, किन्तु इसके लिए उन्हें पहले महन्त के पास अपनी परीक्षा देनी पड़ती है और विरागी बनने के लिए कम से कम ४० दिनों तक उन्हें कई प्रकार की शिक्षा भी दी जाती है। पन्थ के संगठन के लिए १२ व्यक्तियों का एक समुदाय आरम्भ से ही चला आता है जिनमें से किसी के मरते ही किसी योग्य व्यक्ति द्वारा उस स्थान की पूर्ति कर दी जाती है। मुख्य महन्त के मरने पर तेरहवें दिन उसका उत्तराधिकारी शाहपुरे में एकत्र की

गई वैरागियों व गृहस्थों की सभा द्वारा योग्यता के आधार पर चुना जाता है और इसके उपलक्ष्य में वहां के 'राम मरी' नामक मन्दिर में सहभोज भी होता है। महंत सदा शाहपुरे रहता है और केवल आवश्यकता पड़ने पर ही एकाध महीने बाहर जाता है। इनमें से एक कोतवाल होता है जो अन्नादि को सुरक्षित रखता है और महन्त के कथनानुसार नित्य सिधात भी देता है। दूसरा कपड़ेदार होता है जिनके जिम्मे उसी प्रकार कपड़े का प्रबन्ध होता है। तीसरा साधुओं के चाल-चलन का निरीक्षण करता है; और चौथे पांचवें उन्हें पढ़ाते लिखाते हैं। छठे सातवें अन्य प्रबन्ध करते हैं। वृद्ध व्यक्तियों को ही शिक्षा के काम सौंपे जाते हैं, शेष पांच की पंचायत होती है। ये होली दिवाली आदि न मना कर फागुन के अन्तिम सप्ताह में शाहपुरा में एक फूल-डोल का उत्सव मनाते हैं, जिसमें दूर दूर के राम-सनेही आकर सम्मिलित होते हैं।······ इनके वैरागियों के लिए आदेश है कि खाने, पीने, सोने, बोलने आदि सभी कार्यों में समय का ध्यान रखें, शास्त्राध्ययन करें और निस्वार्थ होकर परोपकार करें। दूसरों के प्रति सद्व्यवहार करना आवश्यक है। नाच तमाशे न देखना व सवारी, जूते, आइने, आभूषण आदि शारीरिक भोग की वस्तुओं का परित्याग भी निर्धारित है। मद्यादि के निषेध के साथ-साथ दवा का बनाना तक इस पन्थ में त्याज्य है।

—सम्प्रदाय; पृष्ठ ९३: १०३; प्रो० बी० सी० राय।
[उत्तरी भारत की सन्त परम्परा से उद्धृत]

[८]

रामचरन—शाहपुरा (राजपूताने) के निवासी थे और राम सनेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे जिनका आविर्भाव १८वीं ईस्वी शताब्दी में हुआ था। उनकी विस्तृत रचनाएँ हैं जो मुझे अभी हाल ही में मिली हैं। उन्होंने कबीर के सिद्धान्तों को दुहराया है और उन्हें बड़ी श्रद्धा के साथ देखा है। इनके अनुयायियों और विशेषकर दूल्हाराम ने भी बहुत बानियां लिखी हैं।

—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय; पृष्ठ ५४१ डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
[डा० के०—कबीर····पृष्ठ १६५]